निबन्ध-आलोक

अज़हरअली फ़ारुक़ी, एम० ए०, एम० ओ० एल०
यूइँग क्रिश्चियन कालेज
इलाहाबाद

प्रकाशक
सहयोगी प्रकाशन
६, बहादुरगंज, जी०टी० रोड,
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण १९५८

मूल्य ३)

प्रकाशक—सुमेरनाथ तिवारी, एम० काम०, ओंकारनाथ पाण्डेय् विशारद
सहयोगी प्रकाशन, ६, बहादुरगंज
जी० टी० रोड, इलाहाबाद
मुद्रक—अरुणोदय मुद्रणालय, ६, बहादुरगंज, जी० टी० रोड,
इलाहाबाद

भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबन्धों द्वारा ही सबसे अधिक सम्भव है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

निबन्ध-रचना हमारे साहित्य का सबसे आधुनिक और अत्यन्त सुन्दर स्वरूप है ।

निबन्ध हमारे मनोभावों की प्रतिमूर्ति हैं ।

प्राक्कथन

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी

मेरे मित्र श्री अज़हर अली फ़ारूक़ी साहब ने माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों को निबंध लिखना सिखाने के उद्देश्य से इस पुस्तक की रचना की है। फ़ारूक़ी साहब उर्दू और हिंदी के अनुभवी अध्यापक हैं। उन्हें विद्यार्थियों की कठिनाइयों का प्रत्यक्ष अनुभव है, साथ ही वे भाषा-संबंधी बारीकियों के निपुण विवेचक हैं। स्वयं लेखक होने के कारण वे जहाँ एक ओर रचनात्मक प्रतिभा के महत्त्व के जानकार हैं वहीं भावावेग के कारण रचना में आ जाने वाली मात्रा-हीनता और विषय-वस्तु से अलग हट जाने की असावधानी को भी अच्छी तरह समझते हैं। नवीन प्रतिभाएँ प्रायः असंभव और अनौचित्य का शिकार हो जाती हैं। इन बातों को अनुभवी अध्यापक ही ठीक-ठीक जानता है। निबंध लिखने की कला भी साधना और अभ्यास की अपेक्षा रखती है। वह साधना और

अभ्यास ही वस्तुतः सीखने की बातें हैं। प्रतिभा या शक्ति तो भगवान की देन होती है। अध्यापक निरंतर अभ्यास द्वारा उन दोषों से विद्यार्थी को बचाता है जो मात्रा-वैषम्य के हेतु होते हैं आगे चलकर विद्यार्थी में यदि रचनात्मक प्रतिभा हुई तो वह उन दोषों से बचकर उत्तम निबंध लिख सकता है। फ़ारूक़ी साहब ने विवरणात्मक, वर्णनात्मक निबंध तथा रेखा-चित्रों के उदाहरण स्वयं प्रस्तुत किये हैं और अन्य श्रेणी के सूचनात्मक निबंध भी स्वयं लिखे हैं। साधारण से साधारण और शुष्क से शुष्क विषयों में रोचकता और आकर्षण उत्पन्न करना फ़ारूक़ी साहब के गम्भीर निरीक्षण और कटु अनुभव का परिणाम है। दशहरे का दल, यातायात के साधन, धोबी और कुछ व्याख्यात्मक निबन्ध इसके सजीव उदाहरण हैं। उर्दू की मँजी-शैली उनकी भाषा में स्पष्ट प्रकट हुई है। विद्यार्थियों को मुहावरेदार और प्रवाहपूर्ण भाषा के नमूने इन निबंधों में परिपूर्ण रूप से मिलेंगे, जिससे वे अच्छी भाषा लिखना सीख सकते हैं।

मुझे इस पुस्तक को पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई है। माध्यामिक स्तर के विद्यार्थियों की भाषा और भाव के निखार की शिक्षा आज अत्यन्त आवश्यक हो गई है। ये ही विद्यार्थी आगे चलकर उच्च शिक्षा के लिये विश्वविद्यालयों में आते हैं। माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों को अगर सुलेखन की शिक्षा नहीं मिली तो विश्वविद्यालयीय शिक्षा का भार सम्भालना उनके लिये कठिन हो जाता है। हर आदमी इस त्रुटि से चिन्तित दिखाई देता है। परन्तु इसका उचित उपचार यही है कि अनुभवी अध्यापक इस दिशा में निष्ठा के साथ प्रयत्नशील हो। फ़ारूक़ी साहब ने ऐसा ही प्रयत्न किया है। छात्र-गण इसका अध्ययन कर समुचित लाभ उठा सकते हैं। मेरी हार्दिक शुभ कामना है कि उनका प्रयत्न सफल हो।

—:*:—

दो शब्द

निबंध-रचना एक कला है । यह कहने की आवश्यकता नहीं । विशेषतः वर्णनात्मक निबन्ध लिखना एक कठिन कला है। जिसमें यौग्यता प्राप्त करने के लिये उसके सिद्धान्तों और टेक्नीक का पालन करने से अधिक अभ्यास की आवश्यकता है, विश्व की समस्त भाषाओं की भाँति हिन्दी भाषा में निबन्ध रचना को जन्म देने का उत्तरदायित्व पत्रकारों के सिर रहा है । बालमकुन्द गुप्त, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, महाबीर प्रसाद द्विवेदी, और अन्य निबन्धकारों ने इसे पत्रकारी द्वारा ही विकास शिखर तक पहुँचाने का प्रयास किया । अनुमान तो ऐसा था कि पत्रकारी और मासिक पत्र पत्रिकाओं की उन्नति के साथ-साथ निबन्ध कला के पग भी उन्नति की ओर बड़ी तीव्रता से बढ़ेंगे; परन्तु अनुभव कुछ और कहता है कि ऐसा नहीं हुआ । हिन्दी मासिक पत्रिकाओं ने बड़ी उन्नति की । पत्रिकाओं की छपाई, कागज, टाइटिल कवर और नाना प्रकार के दोरंगे, तिरंगे चित्र आदि, सभी अंगों में जो सौंदर्यता और नफ़ासत पैदा हुई है, वह स्वयं अद्वितीय है । इतनी बात ज़रूर है, कि इन पत्रिकाओं पर गल्पों, कहानियों, एकांकी नाटकों ने बुरी तरह आक्रमण कर दिया । गिनती के मासिक और सप्ताहिक पत्रों ने ही निबन्धों को किसी सीमा तक स्थान दिया, वह भी साहित्यिक ऐतिहासिक और आलोचनात्मक निबन्धों को । वर्णनात्मक और विवरणात्मक निबन्धों को तो दूध की मक्खी की भाँति निकाल दिया गया । इस प्रगतिशील युग में कहानियों पर कहानियाँ लिखी गयीं, सैकड़ों उपन्यास लिखे गये; आलोचना को तो मानो पुर्नजन्म

मिला । हास्य और व्यँग का एक ढेर लग गया; पर ऐसे निबन्धकार गिनती के भी नहीं पैदा किये, जिनके निबन्ध पढ़कर उनकी सहायता और सहारे से कोई व्यक्ति सुन्दर वर्णन अथवा विवरण लिख सके; या फिर उनकी रचनाएँ परीक्षार्थियों के लिये सहायक बन सकें । विचार तो ऐसा है, कि वर्णनात्मक और विवरणात्मक निबन्ध रचना दम तोड़ देती, यदि शिक्षा-बोर्ड और यूनीवर्सिटियाँ इसे शरण न दिये रहतीं ।

यही कारण है, कि यदि आप परीक्षार्थियों के अंग्रेजी और हिन्दी निबन्धों को एक दूसरे के सम्मुख रखें, तो आश्चर्य होगा कि अपनी मातृभाषा हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी में अच्छा और सुन्दर निबन्ध लिख सकते हैं और विचार प्रकट करने की पद्धिति अंग्रेजी भाषा में कहीं अधिक बढ़-चढ़ कर है, इसका मुख्य कारण यही है, कि अंग्रेजी भाषा में ऐसे विषयों पर पर्याप्त पुस्तकें और रचनाएँ हैं, जिनमें न केवल लिखित निबन्ध होते हैं, वरन् निबन्ध-रचना पर अच्छे से अच्छे संकेत भी प्राप्त हैं । इसके अतिरिक्त अंग्रेजी की पाठ्य-पुस्तकों में भी वर्णनात्मक और विवरणात्मक निबन्ध पाठ के रूप में मिलते हैं और हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकें ऐसे निबन्धों से वंचित सी रहती हैं । आपको शायद ही कोई ऐसी पाठ्य-पुस्तक मिले, जिसमें अंग्रेजी की भाँति कोई वर्णनात्मक निबंध पाठ के रूप में मिले । फिर मजा तो यह है, कि पाठ्य पुस्तकों की रूप-रेखा और नाम तो रंग बिरंगे मिलेंगे, पर भीतर एक आध पाठ को छोड़कर देखिये, तो बहुत कुछ सभी में समान होगा ; जो एक में है, थोड़े बहुत अन्तर से वही दूसरो में होगा, मानो एक ऐक्टर के विभिन्न रूप है, जहाँ केवल वेशभूषा बदल दी जाती है । परिणाम यह हुआ, कि हिन्दी निबंध रचना में विद्यार्थियों की योग्यता नीची ही होती जा रही है । जो स्तर आज से कुछ वर्ष पहले था, वह नीचा ही होता चला जा रहा है ।

इसी विचार को ध्यान में रखते हुये; हम यह छोटी सी पुस्तक प्रस्तुत कर रहे हैं, कि विद्यार्थियों के सामने निबन्धों के कुछ ऐसे नमूने और संकेत आ जायें, जो उनके लिये निबंध-रचना में सहायक बन सकें ।

हम और आप सभी जानते हैं, कि विषय स्वयँ कठिन नहीं होते वरन् कठिनाई यह होती है, कि हम ऐसे विषयों को किस भाँति पाठक के सामने रखें

कि निबंध एक मुख्य स्तर का बना रहे तथा पाठक को अपनी ओर आकर्षित कर ले। इस पुस्तक में जो निबन्ध नमूने के दिये गये हैं, उसका यह अर्थ नहीं कि विद्यार्थी इन्हें रट कर परीक्षा-पुस्तिकाओं में लिखने का प्रयास करें; वरन् ध्येय यह है, कि यदि किसी विषय पर लिखा हुआ निबंध ध्यान पूर्वक पढ़ा जाये और संकेतों पर भलीभाँति विचार किया जाय, और उसी ढंग पर निबंध लिखा जाय, तो उनके निबंध में भी एक प्रकार का आकर्षण और सौंदर्य पैदा हो सकता है।

अपने और अपनी निबंध-शैली के बारे में मुझे केवल इतना ही कहना है, कि हिन्दी की पत्रिकाओं में कुछ कहानी लिखने के अतरिक्त मैंने हिन्दी में कभी कुछ नहीं लिखा। इधर कुछ वर्षों से अपने कालेज में हिन्दी पढ़ाने का अवसर मिला और हिन्दी के विद्यार्थियों के सम्पर्क में आने से वही अनुभव हुआ, जो २५ वर्ष से उर्दू पढ़ाने से, और वह यह कि विद्यार्थी अपनी भाषा के व्याकरण की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। लिंग और वचन की ऐसी अशुद्धियाँ कर बैठते हैं, जो उन्हें न करना चाहिये। विराम और चन्द्र बिंदु की ओर ध्यान न देने से हिन्दी-लिपि भी उर्दू के समीप आ जाती है और यहाँ भी खुदा और जुदा वाली मसल हो जाती है। हँस और हंस, वहन और बहन आदि में जो अन्तर है, वह चन्द्र बिन्दु जैसे ही चिन्हों का खेल है। इस विचार को सामने रखकर मैंने सरल हिन्दी व्याकरण के नाम से एक पुस्तिका लिखी और जिसमें उन बातों पर जोर दिया, जिन पर व्याकरण ग्रंथकार ध्यान नहीं देते। ऐसी ही कुछ त्रुटियों को ध्यान में रखते हुये मैंने निबंधों का छोटा सा यह संग्रह प्रस्तुत किया और इस प्रकार हिन्दी क्षेत्र में पग रखने का यह दूसरा साहस है।

हो सकता है कि आपको इन निबंधों पर उर्दू-शैली की छाप दिखाई दे। कहावतें, मुहाविरे, आख्यान, और कुछ अंतर्कथाएँ भी उर्दू फारसी और अरबी भाषाओं की मिलें, इसके लिये केवल इतनी ही प्रार्थना है, कि ऐसा मैंने स्वयँ किया है और यह केवल इसलिये कि सभी भाषाओं में कुछ न कुछ काम की बातें मिलती हैं, फिर उनसे हम क्यों न लाभ उठायें; और इसीलिये मैंने ग्राम गीतों का भी सहारा लिया है। साहित्यिक निबंधों में भी जहाँ तक हो सका है उर्दू साहित्य की बातों से तुलना करने का प्रयास किया गया है। केवल इसलिये कि दीप से दीप जलता है और यह कि इन दीपों में कितनी समानता है।

हमें स्वीकार है कि इस पुस्तक में कुछ कारणों से निबंधों की संख्या अधिक न हो सकी; पर इसमें निबंधों की अपेक्षा उन संकेतों पर जोर दिया गया है, जिनकी सहायता से विद्यार्थी एक अच्छा निबंध लिखने के योग्य बन सकते हैं। वर्णनात्मक, विवरणात्मक, रेखा-चित्र और व्याख्यात्मक निबंध लेखन का अभ्यास इस पुस्तक का मुख्य ध्येय है।

कोई पुस्तक जो आपके हाथों तक पहुँचती है, वह कई राहें तय करके आती है। लेखन और विषय-वस्तु की राहें पार करने के पश्चात् प्रकाशन की मंजिल सामने आती है, जो बहुत सरल भी होती है और कठिन भी। हमारे लिये यह मंजिल अत्यंत कठिन बन जाती यदि हमारे मित्र श्रीयुत ओंकारनाथ पाण्डेय् और सुमेरनाथ तिवारी, एम० काम० इसके प्रकाशन में हमें सहारा न देते। जिसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

यह बातें करते-करते इस मंजिल के कुछ रोड़े और सामने आ जाते हैं। प्रूफ पढ़ना, लाना और ले जाना कितनी सरल सी बात है, पर कभी-कभी यही चीज़ एक समस्या बन जाती है। हमारे साथ तो यही हुआ। मेरी उँगली पक जाने के कारण यह काम मेरे भांजे नसीम ताहिर ने किया और इस प्रकार इस राह के दूसरे रोड़ों के सुलझाने में मैं अपने भांजे नसीम ताहिर को धन्यवाद देता हूँ।

पुस्तक आपके हाथ में है और हो सकता है कि इसमें कुछ त्रुटियाँ हों, जिनका हमें अनुमान है और इसीलिये हम आपके प्रत्येक ऐसे सुझाव और सलाह का स्वागत करने के लिये तैयार हैं, जिससे यह पुस्तक अच्छी से अच्छी बन सके और विद्यार्थी लाभ उठा सकें।

३० अप्रैल सन् १९५८
इलाहाबाद

अज़हरअली फ़ारूक़ी

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

निबन्ध-कला

वर्णनात्मक, विवरणात्मक निबन्ध एवं रेखा-चित्र

विषय पृष्ठ

औद्योगिक, राजनीतिक तथा कृषि सम्बन्धी निबन्ध

व्याख्यात्मक निबन्ध

साहित्यिक तथा आलोचनात्मक निबन्ध

निबंध-कला

मेरी हाबी



सलिल और कालिया की कृपा से

१

कविता, कहानी रचना, नाटक-लेखन और अन्य कलाओं की भाँति निबंध-रचना भी एक कला है। दूसरी कलाओं की भाँति इसके भी कुछ नियम, सिद्धांत और आवश्यकतायें हैं। जो निबंधकार अपने निबंधों में उनका ध्यान रखते हैं, वे सफल होते हैं, यद्यपि चतुर कलाकार कलात्मक नियमों की चेष्टा किये बिना भी अपनी कला में सौंदर्य और आकर्षण पैदा कर लेते हैं। वे अपनी प्रतिभा और प्राकृतिक सूझ-बूझ की सहायता से उनका पालन किये बिना ही अपना निबंध सफल बना लेते हैं; पर ऐसा बहुत कम होता है; इसलिये साधारणतः हमें निबंध-रचना के उन नियमों का पालन करना ही उचित होगा, जो एक निबंध को निबंध का रूप और सम्मान प्रदान करने में सहायक होते हैं।

इन नियमों और निबंध की आवश्यकताओं के महत्त्व का अनुमान आप स्वयं इस प्रकार कर सकते हैं, कि एक ही विषय पर लिखे गये बहुत से निबंधों में से कुछ निबंध सुन्दर और हृदयाकर्षक होने के अतिरिक्त प्रभावोत्पादक भी होते हैं और कुछ इसके बिलकुल विपरीत। कारण यही है कि जो निबंधकार अपने निबंध की भूमिका, व्यवस्था और उपसंहार पर उचित ध्यान रखते हैं, उनके निबंध सुन्दर और सफल होते हैं, और जो बिना सोचे समझे लिख डालते हैं, उनके निबंध न तो सुन्दर ही होते हैं और न सफल। अतः हमारे लिये आवश्यक है, कि हम उन बातों का पूरा-पूरा ध्यान रखें, जो एक सफल निबंध के लिये अनिवार्य हैं।

साधारणतः एक निबंध में दो मुख्य तत्त्व होते हैं—**विचार** और **भाषा-शैली**। विचारों का ढाँचा सामान्यतः तीन भागों में विभाजित किया जाता है :—

(१) **भूमिका**—सब से पहली कठिनाई जो एक निबंधकार के सामने आती है, वह विषय का आरंभ करना है। प्रायः विद्यार्थी इस संकोच में पड़ जाते हैं, कि वे अपना निबंध किस प्रकार आरंभ करें और विषय का परिचय किस प्रकार करायें। सच पूछिये तो यही चीज ऐसी है जो पाठक को निबंध पढ़ने की ओर आकर्षित करती है और वह वाध्य हो जाता है, कि पूरा निबंध पढ़ डाले। अँग्रेजी की एक कहावत है, "**श्रेष्ठ आरंभ आधे कार्य की समाप्ति है**।" इसे इस प्रकार समझिये कि यदि राज, दीवार बनाने में पहली ईंट टेढ़ी रख दे, तो सारी दीवार टेढ़ी हो जायेगी।

विषय परिचय कराने का यह अर्थ नहीं कि आप अपने विषय की कोई तार्किक परिभाषा दें, बल्कि मतलब यह है कि विषय का परिचय ऐसे आकर्षक ढंग से और प्रभावोत्पादक शब्दों में करायें कि पाठक पूरा निबंध पढ़ने के लिये आकुल हो जाय और जान लें कि बात क्या है। "**हमारी मसहरी**", "**भौं**" "**चारपाई**" आदि निबंधों की भूमिकाओं का आकर्षण और प्रभावोत्पादकता उल्लेखनीय है।

'**भौं**' के ये वाक्य पढ़िये।

"यद्यपि हमारा धन, बल, भाषा इत्यादि सभी निर्जीव हैं, तो भी यदि पराई भँवे चढ़ाना छोड़ दें, दृढ़ता से कटिबद्ध हो कर वीरता से भँवें तान कर देशहित में सन्नद्ध हो जाँय···तो परमेश्वर अवश्य हमारे उद्योग का फल दे···"

"**चार पाई**" की कुछ पंक्तियाँ पढ़िये—

"चारपाई और धार्मिक ढोंग तो हमारा ओढ़ना और बिछौना है। हम उसी पर पैदा होते हैं, यहीं से जेल जाते हैं, कौंसिल या मृत्युलोक का रास्ता लेते हैं। चारपाई हमारी घुट्टी में पड़ी है। हम इसी पर जुलाब का काढ़ा पीते हैं और इस के परिणाम भुगतते हैं···"

यह रोचकता और आकर्षण पैदा करने के लिये कई साधनों से काम लिया जाता है और उनमें प्रगल्भ भाषा का प्रयोग बहुत सामान्य है।

इसके अतिरिक्त भूमिका में इस ओर भी ध्यान देना आवश्यक है, कि भूमिका अपने वर्ण्य-विषय से प्रत्यक्षतः सम्बन्धित हो। जहाँ तक हो सके भूमिका संक्षिप्त होनी चाहिये। इस संम्बध में डा० ब्लेयर ने अपने विचार इन शब्दों में प्रकट किए हैं, **"किसी साधारण भवन के लिये एक बड़ा शानदार फाटक बनाने से अधिक कोई भद्दी बात नहीं हो सकती।"**

इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लेखक सामान्यतः निम्नलिखित साधनों का उपयोग करता है—

किसी **आख्यान** या **कहावत** से आरंभ करना।

ऐसा करने से निबंध में एक प्रकार की रोचकता उत्पन्न हो जाती है और पाठक का ध्यान उस ओर आकर्षित हो जाता है—

"वह कौन सा मनुष्य है, जिसने महा प्रतापी महाराज भोज का नाम न सुना हो।

"**सबेरे जो आँख खुली मेरी**" की भूमिका देखिये—

"गीदड़ की मोत आती है, तो वह शहर की ओर भागता है; हमारी जो शामत आयी तो लाला जी से कह बैठे।"

कभी-कभी '**कथन-विशेष**' या **कविता** पंक्ति से निबंध का आरम्भ होता है। भूमिका में किसी **सामान्य वर्णन** द्वारा भी विषय-वस्तु पर प्रकाश डाला जाता है।

(२) विषय वस्तु :—

इसके पश्चात् विषय-वस्तु का क्रम आता है और देखा जाता है, कि निबंधकार ने अपने विचार किस प्रकार सुगठित किये हैं। इसी बात को अँग्रेजी में **आउट-लाइन** बनाना कहते हैं। किसी विषय के सम्बन्ध में नाना प्रकार के विचार आते हैं, पर उन विचारों को क्रम से उचित स्थान पर सुगठित रूप देना निबंधकार की कला-शक्ति पर निर्भर है।

प्रत्येक महत्त्व पूर्ण विचार एक पैराग्राफ में रखना चाहिये। इस महत्त्वपूर्ण विचार से संबंधित गौण विचार भी इसी पैराग्राफ में रखे जा सकते हैं। विभिन्न पैराग्राफ विभिन्न विचारों का प्रदर्शन करते हैं, और विषय-वस्तु समझने में पाठक की सहायता करते हैं।

(३) उपसंहार :

निबंध की अंतिम कड़ी उपसंहार है, जिसमें लेखक किसी विषय पर अपना मत तो प्रकट कर सकता है, पर उपदेश देना उचित नहीं। किसी बात पर टीका-टिप्पणी करने में भी इस बात पर ध्यान रखना चाहिये।

सच पूछिये तो उपसंहार निबंध का वह स्तर है, जहाँ निबंधकार पाठक को प्रसार की चर्म सीमा से उतार कर लाना चाहता है। ऐसा करने में उसे प्रयाप्त धैर्य्य, और स्वाभाविक संतुलन की आवश्यकता पड़ती है। जिस प्रकार भूमिका और प्रस्तावना का आकर्षण पाठक में निबंध पढ़ने की जिज्ञासा उत्पन्न करता है, उसी भाँति उपसंहार की रोचकता पाठक को प्रभावित करने में बड़ी सहायता देती है; इसलिये उपसंहार और प्रसार में एक सुन्दर सम्बन्ध होना चाहिये, जिससे पाठक की जिज्ञासा संतुष्ट हो सके, और उस पर प्रभाव पड़ सके। उपसंहार को पूर्णरूप से सुसज्जित करना निबंध की पूर्णता का प्रतीक है।

२

सामान्यतः निबंध इन प्रकार विभाजित किये जाते हैं :—

(१) वर्णनात्मक—जिनमें किसी वस्तु, स्थान, पशु, इमारत, वृक्ष इत्यादि का वर्णन किया जाता है।

(२) विवरणात्मक—जिनमें ऐसी वस्तुओं का विवरण दिया जावे, जो समय के साथ-साथ घटती रही हों या हो चुकी हों।

(३) विचारात्मक—जिनमें किसी समस्या या विचार पर पक्ष या विपक्ष में मत प्रकट किया जाता है।

(४) व्याख्यात्मक—जिनमें किसी कथन, पद्य-पंक्ति अथवा कहावत की व्याख्या की जाती है।

वर्णनात्मक और विवरणात्मक विषयों का विवरण देना जितना सरल समझा जाता है, वास्तव में उतना सरल नहीं है। मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि ऐसे निबंध लिखना बड़ा कठिन है। ऐसी रोचकता, मनोरंजकता और आकर्षण का रंग रूप चढ़ाना अत्यंत कठिन है, जिसे पढ़कर पाठक फड़क उठें और बरबस खिंच जाँय। यह गुण भाषा-शैली पर तो बहुत कुछ निर्भर है ही; पर इसमें स्वयं अपने निरीक्षण का बहुत बड़ा हाथ है। उदाहरण के लिए एक साधारण सा विषय ले लीजिये 'गो' या 'गाय'। यदि आप बच्चों की भाँति इस प्रकार लिख देते हैं,

"गाय एक पशु है, जिसकी चार टाँगे, दो सींग, एक पूँछ और दो बड़ी-बड़ी आखें होती हैं। दूध देती है, लोग इसे पालते हैं............।"

तो आप स्वयं सोचिये क्या आप कोई ऐसा आकर्षण पैदा कर सके हैं, जो पाठक को प्रभावित कर सके। अपना तो विचार है कि वह हँस देगा। अब अपने निरीक्षण को और आगे बढ़ाइये और देखिये कि इस पशु का महत्त्व विश्व में कहाँ नहीं! सभी प्रदेशों में इसका महत्त्व है। अब इस महत्ता की तुलना अपने प्रदेश से कीजिये। अपने विचारों और उससे अधिक जनता के विचारों को परखिये तो आपको मालूम हो जायेगा, कि अन्य प्रदेशों की भाँति हमारे प्रदेश में भी इसकी महत्ता है; पर इस महत्ता में धार्मिक विश्वास का जो सौंदर्य है उसने एक विलक्षणता पैदा कर दी है। अतः यदि अन्य प्रदेशों में इसकी महत्ता है, तो हमारे यहाँ इसका सम्मान। अब, यदि आप अपने इस निरीक्षण की सहायता से इस प्रकार आरंभ करें, तो एक प्रकार की रोचकता पैदा हो सकती है,

"दूध देने वाला यह पशु कहाँ नहीं पाया जाता लगभग विश्व के कोने कोने में। अन्य प्रदेशों में यदि इसका महत्त्व पशु के रूप में है तो हमारे प्रदेश में इसका सम्मान है माता के रूप में—"गो" माता।"

अब और आगे बढ़िये। भौगोलिक-ज्ञान के सहारे इसको दूसरे प्रदेशों की गायों के सामने रखिये तो आपको ज्ञात होगा कि उनका स्वाथ्थ अपने देश की गायों की अपेक्षा कितना अच्छा होता है।

आपने अपने यहाँ के नगरों में, बाजारों और सड़कों पर फिरती हुई गायें और आपस में टक्कर लेते हुये साँड़ भी देखे ही होगें।

अपने इस अनुभव और निरीक्षण की सहायता से आप दो तीन पंक्तियाँ इस प्रकार लिख सकते हैं—

अन्य देशों में गायें बाड़ों और घरों में दिखायी देती हैं या फिर चरागाहों और जंगलों में, पर हमारे देश में गायें बाड़ों से अधिक सड़कों और चौराहों पर फिरती दिखायी देती हैं। काशी नगर तो

बहुत पहले से ही इसके लिये प्रसिद्ध रहा है; यहाँ तक कि एक कहावत का प्रचलन हो गया,

राँड़, साँड़ सीढ़ी, सन्यासी
इनसे बचे, सो सेवे काशो।

पर आज तो प्रत्येक नगर काशी बन रहा है।

सुनता हूँ दूसरे देशों की गायें बड़ी मोटी ताजी और सुन्दर होती हैं, पर हमारे यहाँ की गाये दुर्बल और पतली और दुर्बल होना भी चाहिये, वे माता जो ठहरीं और मातायें चिंताओं से घिरी रहने के कारण ही जाती हैं दुर्बल और कमजोर।

आपने देखा होगा कि मेलों के अलावा कभी-कभी यों भी द्वार-द्वार साधु का रूप धारण किये कुछ व्यक्ति बौनी गायें लिये फिरते हैं। लोग उन्हें पैसे और अन्न दान देते हैं। ऐसी गाय को हमारे अवध में 'सुरागाय' और बैल को 'नादिया' कहते हैं और उसे पवित्र समझते हैं। कुछ साधुओं की रोटी का साधन तो केवल ऐसी गायें ही हैं। अब अपने इस निरीक्षण का सहारा लेकर इस प्रचलित कथन पर व्यंगात्मक रूप में लिख सकते हैं। कथन इस प्रकार है "इंग्लैंड में गाय मनुष्य को पालती हैं, और भारत में मनुष्य गाय को पालता है।"

न जाने कैसे कह दिया किसी अँग्रेज ने कि भारत में मनुष्य गाय को पालता है। शायद उसने हमारे मेलों की सैर नहीं की, जहाँ उसे साधु के रूप में न जाने कितने ऐसे भिखारी मिल जाते, जो केवल सुरा गाय के सहारे पल रहे हैं। वह गाय जिस पर ताँबे और चाँदी के टुकड़े निछावर किये जाते हैं।

अब आपको ज्ञात हो गया होगा कि आपका गम्भीर निरीक्षण किस प्रकार निबंध में रोचकता पैदा कर सकता है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये, 'किसी फुटबाल-मैच का विवरण'। आप इस विवरण को पढ़िये, जहाँ गम्भीर निरीक्षण का अभाव है, फिर इसी के साथ-साथ दूसरा वर्णन पढ़िये, जहाँ निरीक्षण द्वारा रोचकता पैदा की गयी है और अनुमान कीजिये दोनों में कितना अन्तर हो गया है।

"......मैंने जिस मैच को देखा, वह फुटबॉल इंटरस्कूल टूर्नामेन्ट का अंतिम मैच था। यह सितम्बर में हुआ इसमें हमारा स्कूल और वैप टेस्ट मिशन हाई-स्कूल खेले थे। मैच आरंभ होने का समय रविवार को चार बजे का था। [शनिवार को प्रधानाध्यापक जी ने मैच की सूचना दी और इच्छा प्रकट की कि प्रत्येक विद्यार्थी मैच देखने के लिए उपस्थित हो। मैं छात्रावास में रहता था। वहाँ से खेल का मैदान लगभग २०० गज दूर होगा। अतः मुझे वहाँ जाने में कोई कठिनाई नहीं हुई, लेकिन घर पर रहने वाले कई विद्यार्थियों को कठिनाई थी। उनके घर खेल के मैदान से तीन या चार मील दूर थे बेचारों को प्रधानाध्यापक के भय से विवश होकर आना पड़ा......]"

क्या आप इस विवरण में किसी ऐसी रोचकता का अनुभव करते हैं, जो पाठक को अपनी ओर आकर्षित कर ले। इसके अतिरिक्त ब्रैकेट में लिखी हुयी पंक्तियाँ— "शनिवार जाना···पड़ा" व्यर्थ सी जान पड़ती हैं। आज जब सिनेमा और टूरनामेंट हमारे जीवन का सांस्कृतिक अंग बन चुके हैं, कोई न किसी को वाध्य करता है और न प्रोत्साहन ही देता है; लोग स्वयं खिंचे चले जाते हैं। यदि ऐसा है और आप इसे मानते हैं, तो हम कह सकते हैं, ऐसो भूमिका में गम्भीर निरीक्षण का अभाव है। फिर केवल इतना लिख देना 'यह सितम्बर मास में हुआ' इस बात पर प्रकाश डालता है, कि यह विवरण केवल कल्पित है, चाहे वास्तव में ऐसा न हो। इस शंका को दूर करने के लिये आपको तारीख (तिथि) देना, उतना आवश्यक है, जितना समय देना नहीं। ऐसे मैचों का समय तो चार और पाँच के बीच माना हुआ है। अब यदि आप इस संकेत के आधार पर निबंध इस प्रकार आरंभ करें, तो अधिक उचित होगा।

आज तो सिनेमा और टूरनामेंट हमारे सांस्कृतिक जीवन के एक अंग बन चुके हैं; प्रत्येक वर्ष न जाने कितने टूरनामेंट होते रहते हैं। हमने जो फुट बॉल मैच देखा और जिसका वर्णन करने जा रहे हैं, ऐसी ही सांस्कृतिक शृंखला की एक कड़ी है। यह मैच डा० घोष फुटबाल टूरनामेंट के सम्बन्ध में अगस्त की १३ तारीख को माडर्न हाई-स्कूल के ग्राउण्ड पर साढ़े चार बजे आरम्भ हुआ।

यह मैच टूरनामेंट का फाइनल (अन्तिम) मैच था।' जो जार्ज-टाउन क्लब और ऐग्री कल्चर इंस्टीट्यूट, नैनी के बीच हुआ···"

अब आगे बढ़िये और देखिये कि यह पैरा भी ऐसा नहीं, जो पाठक को अपनी ओर आकर्षित करले।

"३॥ बजे सेक्रेटरी के साथ पैदल ही खेल देखने चल दिये। उनके पहुँचने के पहले ही बपटिस्ट मिशन स्कूल की टीम आ पहुँची थी। दर्शकगण इकट्ठे हो रहे थे।"

ऐसे अवसर पर पाठक की उत्सुकता और अभिरुचि बढ़ाने के लिये, यहाँ पर दर्शकों का विस्तृत विवरण दे देना उचित होगा, जिसे पढ़कर पाठक आगे का हाल जानने के लिये उत्सुक हो जायँ। आप जानते हैं कि तीर्थ स्थानों पर दर्शनों के लिये बड़ी भीड़ रहती है। इसी निरीक्षण के आधार पर आप एक उपमा का सहारा लेकर अपना निबंध पढ़ने के लिये पाठक की अभिरुचि बढ़ाइये और इस प्रकार लिखिये—

हम समय से पहले खेल के मैदान पर पहुँच गये और समझ रहे थे, कि सन्नाटा होगा, पर क्या देखते हैं कि दर्शकों की एक भीड़ लगी है। ऐसा ज्ञात होता था कि माडर्न स्कूल एक साथ तीर्थ स्थान और ज्यारतगाह दोनों बन गया है, जहाँ दर्शनों के लिये लोग झुण्ड के झुण्ड चले आ रहे हैं। बच्चे, जवान, बूढ़े सभी तो जमा हो रहे हैं। पढ़े लिखे भी और अनपढ़ गवाँर भी! यद्यपि पैंट और बुशर्शट पहनने वाले संख्या में अधिक थे, पर तहबंद और खटपटी पहनने वाले भी कुछ कम न थे। दाढ़ी और पट्टे वाले भी मौजूद थे और माथे पर चंदन लगाये भी कम न थे! बीड़ी और बक्स बनाने वाले कारीगर और दस्तकार भी!

ऐसा कुछ लिख देने से निश्चय ही, पाठक की उत्सुकता बढ़ेगी! अब पहला निबंध पढ़िये।

"ठीक ३॥ बजे रेफ्री भी आ गये, उन्होंने सीटी बजायी। दोनों टीमों के कैप्टन टास करने के लिये रेफ्री के पास आ गये······"

यहाँ भी गम्भीर निरीक्षण का अभाव तो है ही। साथ ही साथ फिर वही खराबी कि विवरण वास्तविकता से दूर होता जा रहा है, क्यों ? इसलिये कि असम्भव है, जहाँ दस पाँच नवयुक एकत्र हों, वहाँ चोहलें न हों अवाजे तबाजे न हों। दर्शक जमा हों और शोर-गुल न हो। देखिये यही बात यदि आप इस प्रकार स्पष्ट करें, तो विश्वास है कि निबंध अधिक गम्भीर और वास्तविकता के समीप हो जायगा।

नव युवकों की चोहलों, विद्यार्थियों की दिल्लगियों, दर्शकों के शोर गुल और बच्चों की चीख पुकार के बीच रेफ्री महोदय ने सीटी बजायी और सब सचेत हो गये ! खेलाड़ियों के मैदान में उतरने के साथ-साथ शोर गुल दबते-दबते बिल्कुल दब गया। 'टास' ने जार्जटाउन क्लब का साथ दिया और क्लब के सेन्टर फार्वर्ड की पहली किक के साथ साथ खेल आरम्भ हुआ।"

खेल के बारे में यदि आप इतना ही लिख देते हैं "खेल होता रहा, किकें लगती रहीं, और अंत में एक ओर गोल हो गया और घर लौटे..."तो ऐसा विवरण अपूर्ण तो है ही, साथ ही साथ यह बात भी है, कि यह सब कुछ तो आप बिना देखे भी लिख सकते हैं। इसलिये आप कम से कम इन बातों को ध्यान में रखिये और इन पर कुछ न कुछ अवश्य लिखिये।

खेल का विस्तृत विवरण—किस खेलाड़ी ने किक मारी, वह किसे गेंद देना चाहता था और किसने उसे झपट लिया ! दर्शकों की पार्टियों के साथ सहानुभूति। ऊँची किक पर दर्शकों का शोर-गुल, आधे समय पर स्वयं' खेलाड़ियों का वादविवाद लंगड़ाना, मित्रों की टाँग मलना, लीमू, संतरा खाना, लेमन की बोतलों का तड़ातड़ खुलना इत्यादि ऐसी बातें हैं, जिनपर प्रकाश डालने से निबंध में जान पड़ सकती है। पाठक के मनोरंजन के लिये सामग्री एकत्र हो सकती है !

इसी प्रकार खेल की ऊँच, नीच, कभी गेंद एक पार्टी की ओर और कभी दूसरी की ओर। दर्शकों की सहानिभूति...पर प्रकाश डालने से आपका निबंध वास्तविकता के समीप होता जायगा और पाठक को आकर्षित भी कर लेगा।

खेल समाप्त होने पर पार्टियों से अधिक दर्शकों की टीका-टिप्पणी, रेफ्री पर कटाक्ष,

व्यंग का वर्णन दे देना निबंध को रोचक और वास्तविक बनाने में सहायक होता है। इसी विषय पर पूरा निबंध आगे पढ़िये।

एक और उदाहरण लीजिये। आपको "कौआ" पर निबंध लिखना है। यदि आप इस प्रकार लिख देते हैं,

"कौआ काले रंग का एक पक्षी है यह बड़ा सयाना होता है बड़ा गँदा है और इसका कंठ बड़ा कठोर होता है—काँय। काँय !! लगाये रहता है······।"

आप स्वयं सोचिये क्या आपने पाठक को कोई ऐसी बात बतायी जो उसे स्वयं न मालूम हो और आपके निबंध की ओर आकर्षित कर दे। यदि आप गम्भीर निरीक्षण और थोड़ी जानकारी से काम लें तो उसकी सहायता से कुछ अद्भुत बातें दे सकते हैं। सोचिये जब आप छोटे से बालक थे, तो स्वयं मुँह धोने की बात छोड़िये, माता के अनुग्रह पर भी मुहँ धुलाने के लिये तैयार न होते थे, तो वे क्या कहती थीं। अच्छा अपनी बात छोड़िये, अपने परिवार के दूसरे बच्चों के लिये तो यह कहते सुना ही होगा :—

"काची काची कौवा खाय,
दूध-भात भैया खाय।"

आइये अब इस निरीक्षण के सहारे हम अपने निबंध को आरम्भ करें।

"काँ ! काँ काँ !!" स्वर कठोर सही, पर यह सुनते ही हमें अपने जीवन के वे क्षण याद आ जाते हैं, जब हम 'काची, काची कौआ खाय, दूध-भात भैया खाय' के सहारे अपना मुँह धुला लेते थे। कौआ बालपन से हमारा साथी न सही परिचित तो है ही। वह काला जरूर होता है, पर उनसे तो कहीं अच्छा है, जो तन के उजले और मन के काले होते हैं।···"

आइये अब दूसरा निरीक्षण काम में लायें। आपने देखा होगा, देहातों में जहाँ कौए की काँ-काँ सुनाई दी, तुरंत माँ, बहनों के मुख से निकल जाता है 'उड़ि जा रे कागा, तुझे दूध भात खिलाऊँ बीरन भैया आते होंगे।' अंध विश्वास सही, सामाजिक त्रुटि सही; पर ऐसा होता है। अब अपना निबंध इस प्रकार आरम्भ कीजिये।

'काँ' काँ ! सुनाई नहीं दिया कि माता जी की कल्पना उन्हें कहाँ से कहाँ ले गई बोल पड़ीं 'उड़ि जा रे कागा, तुझे दूध भात खिलाऊँ वीरन भैया का ला संदेश'···मामा जी के आगमन की आशा बँधाने वाला यह काला काला पंक्षी हम से अपरचित नहीं ! तन का काला और मन का उज्ज्वल, तभी तो माता जी को इसकी काँय-काँय पर भरोसा है···"

विचार तो ऐसा है कि निबंध की यह भूमिका पाठकों के हृदय में उत्सुकता के साथ-साथ नवीनता भी पैदा कर देगी। इससे अधिक आकर्षण पैदा करने के लिये, निरीक्षण और अध्ययन दोनों का सहारा लीजिये। कुछ तो उर्दू शायरी से, जहाँ कबूतर चिट्ठी पत्री ले जाने का काम करता है, या फिर 'प्रेमी' (आशिक) के आहो नाले। ग्राम गीतों में यह काम कौआ करता है।

अब दो बातों के सहारे अपना निबंध इस प्रकार आरम्भ कर सकते हैं, जो बिना किसी संकोच के आकर्षक और मनोरंजक दोनों ही होगा और आशा तो ऐसी है, कि पाठक पढ़ कर चौंक जाय।

"उर्दू शायर के आहो नाले चाहे पहुँचे या नामाबर कबूतर के बाजू काटने के लिये चाहे कैंचियाँ ही क्यों न लगी रहें; पर कागा संदेश पहुँचाने में इतना चतुर समझा जाता है और उस पर इतना विश्वास है कि एक भोली भाली विरह की मारी ग्रामीण युवती कौआ देखकर अपनी एक जटिल समस्या सुलझा लेती है, जब वह सोचती है कि

केहि के हाथ चिट्ठी लिखि भेजौं
केहि के हाथ संदेस ;

"और तुरंत ही उसकी समझ में आ जाता है कि "कागा हाथ चिट्ठी लिखि भेजौं" यह है काला कौआ एक निःस्सहाय अबला का सहारा···"

३

वर्णनात्मक निबंधों की एक शाखा **रेखा-चित्र** लिखना है, और तमाम वर्णनात्माक विषयों की अपेक्षा रेखा-चित्र बनाना बहुत कठिन है। किसी का रेखा-चित्र उतारते समय आपको उपन्यास सम्बंधी चरित्र-चित्रण के सर्वांगीय पक्षों पर तो दृष्टि रखनी ही पड़ेगी, इसके साथ-साथ आपका स्वंय निरीक्षण बड़ी सीमा तक आपकी सहायता करेगा।

जिस प्रकार एक कहानी कार किसी व्यक्ति के चरित्र-चित्रण में उसकी सूरत-शकल और अंगों की बनावट से सहायता लेता है, उसी प्रकार रेखा-चित्रकार को इन से सहायता लेनी पड़ती है। इसके साथ-साथ उसका स्वंय गम्भीर निरीक्षण चित्र बनाने में रंग भरने का काम करता है। यह सब कुछ करने के लिये शब्दों का चुनाव अत्यंत आवश्यक है।

रेखा-चित्र के पात्रों के नाम भी बड़े उपयोगी बन जाते हैं और इसे यों समझ लीजिये कि पात्र काला-कलूटा है और नाम सुन्दरलाल है। रेखा-चित्र बनाने वाले के लिये इतना संकेत और सामग्री काफी है। वह इसी की सहायता से व्यंग को गुल्कारी भी कर सकता है।

कथोपकथन भी रेखा-चित्र में बड़े सहायक हैं; पर रेखा-चित्रों में इनसे काम कम लिया जाता है।

रेखा-चित्र बनाने में सबसे अधिक उपयोगी व्यक्ति की चाल-ढाल, उठना-बैठना, बात चीत का ढँग और वेश-भूषा है।

यद्यपि रेखा-चित्र लेखन के कोई जँचे तुले सिद्धांत आधारित करना तो कठिन हैं, तो भी आप उर्पयुक्त बातों द्वारा ऐसे चित्र बना सकते हैं।

आइये एक ऐसे नव युवक, का रेखा-चित्र बनाने का प्रयास करें, जिसके बारे में आप बहुत कुछ जानते हैं। साधारणतः यह समझ लीजिये कि नवयुवक एक विद्यार्थी है, एक क्लास में तीन साल से असफल हो रहा है, मध्यम-श्रेणी के खाते पीते परिवार का एक व्यक्ति है, अच्छे कपड़े पहनने का शौकीन है, प्रति दिन कपड़े बदलने की प्रतिभा जोरों पर है, जूतों पर पालिश करने का जैसे खब्त है, मोजे और रूमाल बदल-बदल कर रखना, और दूसरों को दिखाना उसकी प्रकृति है।

आता जाता कुछ नहीं, पर ढोंगी एक नम्बर का है, अपने को बड़ा योग्य समझता है। भसक-भसक कर बैठना, और खिस खिस करके चलना, बार-बार नाक से सुड़ सुड़ करना उसका स्वभाव बन गया है' अपना भरोसा कम, दूसरों के इशारों पर नकल का सहारा अधिक। नाम "न" अक्षर से आरम्भ होता है।

सबसे पहले आप "न" से फायदा उठाइये। रेखा-चित्र का शीर्षक इसी की सहायता से बनाइये। "नीमहकीम" सभी लोग जानते हैं, इसी के सहारे और जो जो बातें ज्ञात हैं उसके आधार पर "नीम साहब" बनाइये।

नीम साहब

"नीम हकीम खतरये जान" सुना था; नीम मुल्ला पढ़ना था; अब एक नीम साहब साथी मिले। नाम तनिक ऊट-पटाँग सा है; पर किया क्या जाये बहुमत ने इसे पास किया है, और इस बहुमत में जनता की आवाज़ है, जिसे दबा देना बड़ा कठिन है।

वैसे तो उनका नाम बड़ा प्यारा है, मानो स्वर्ग और नर्क गले मिल रहे हों पर हम सब नीम-साहब ही कहते हैं।

आप जब इनसे मिलेंगे तो आपको अंदाजा होगा कि मियाँ ज़ाहिदार बेग ऐसा बन-संवर कर क्या निकलते होंगे, जैसा कुछ हमारे नीमसाहब। कील काँटे से चौकस, कपड़ों से सिजिल, बालों की प्लेटें दुरुस्त, जिन्हें वह कम से कम एक घंटे में बनाते हैं

और आइने के हर कोण से नापने के पश्चात् छोड़ते हैं। टाई की नाट बनाने में वह कम समय नहीं लगाते; फिर सूट पर सूट और टाइयों पर टाइयाँ बदलने की प्रवृत्ति इस बुरी तरह सवार रहती है, कि उनकी रंगा रँगी ही देखकर उन्हें साहब समझने पर मजबूर हो जायेंगे; और यह समझ कर कहीं आप अँग्रेज़ी बोल बैठे, तो पहले तो वह बौखला से जायेंगे, और जवाब न देंगे। यदि भाग्यवश उत्तर दे दिया, तो आपको विश्वास हो जायेगा, कि साहब का बैरा या खनसामाँ भी उनसे अच्छी अँग्रेज़ी बोल सकता है। रहा लिखने का सवाल तो बाल, हाल, कालेज, सिनेमा जैसे साधारण और सरल शब्द लिखना भी नहीं आते। उनकी साहिबी केवल चिकने-चुपड़े बालों और चमचमाते जूते तक ही रह जाती है, बाकी शून्य।

जब यह पहले-पहल हम लोगों से मिले-जुले, और गुनगुनाना आरम्भ किया, कभी ऐन-गैन १ करने लगे,और रेज़ २ भी करते रहे, तो हम समझे कि एक शायर दोस्त बन गया, पर थोड़े ही समय में उनका यह रुआब भी हट गया और यह बिल्कुल कोरे ही निकले। रहा सहा यह भ्रम भी समाप्त हो गया।

एक रात को हम तीन दोस्त यानी दो हम और एक नीमसाहब एक कमरे में सो रहे थे, कि हमारी चारपाइयाँ हिलने लगीं और सहसा आँख खुल गयी। एक स्वर निकला—धड़ धड़ धड़, चुर चुर चुर मानो धरती फट रही हो। मैं कुछ कहने वाला ही था कि हमारे दूसरे दोस्त ने आँखें फाड़ दीं और बोले कुछ अनुमान हुआ और हम जैसे भौंचक्का हो गये हों मौन साधे पड़े रहे। वह समझे मैं सो रहा था। सवेरे उठने पर मुझसे कहने लगे कुछ खबर है रात भूचाल आया था; और अपने इस दृढ़ विश्वास पर अख़बार के पन्ने उलटने लगे, कि कहीं पर यह खबर अवश्य दी गयी होगी; पर थोड़ी देर बाद यह भेद खुला, कि हमारी चारपाइयों के झटके न तो भूकम्प के थे और न भूचाल के, वरन् हमारे नीम साहब की करवट बदलने की एक अदा।

---

१ उर्दू भाषा का एक मुहाविरा है, जिसके मानी हैं 'ऐसी बातें करना, जिससे योग्यता प्रकट हो।'

२ छोटा मुर्गा जब पहले पहल कुक्ड़ूँ कूँ के बोल निकालना चाहता है और निकाल नहीं पाता, तो उसे रेज़ करना कहते हैं।

इस पर हमारे दूसरे साथी एक दूसरे कमरे में चले गये। मैंने बहुत कुछ समझाया कि भाई चारपाई खराब है उन बेचारे का क्या दोष। इस पर वह कहने लगे मान लिया चारपाई खराब है तो क्या कुर्सी भी खराब है, जहाँ नीम साहब बैठे बस मालूम हुआ कोई दीवार गिर पड़ी धड़ाम से। कैसी बातें करते हो बैठने का एक ढंग होता है; फिर आप को इतनी चिंता क्यों है। मैं कोई दूर तो जा नहीं रहा हूँ। आप जब चाहें पूँछ सकते हैं नीम साहब की बातें।

दूसरे दिन मैंने पूछा बताइये क्या-क्या किया नीम साहब ने। उन्होंने तुरंत गिनाना शुरु किया और कहने लगे अरे भाई मैं तो इसी मकान में रहता हूँ आप टोले मुहल्ले के लोगों से पूछ लीजिये वे भी बता देंगे, यानी यह कि 'सटासट, सटासट' तौलिया उठायी मुँह पोछने के लिये; 'शप्प और तनिक लम्बे आकार के साथ 'शाप्प' चाय पी; 'चटपट सटपट' जूता उठाया पालिश करने के लिये; 'खिसिर फिसिर···'उठे बनियाइन या कमीज ढूँढ़ने; 'सरर, सरसार,'सरर सरर जूता साफ किया जा रहा है। मैंने हँसते हुये उत्तर दिया 'भाई ! मान लिया आप इसी कमरे में हैं, और सब कुछ जानते हैं।'

हमारे एक पड़ोसी, जो रेलवे विभाग में पैटमैन थे, और अब रिटायार्ड होने के बाद इस हालत को पहुँच चुके हैं, कि न मुँह में दाँत न पेट में आँत, पोस्टकार्ड पढ़ाने आये। हमारे नीम साहब मुँह धो रहे थे, सिर हिल रहा था; बाल झटके खा रहे थे, झड़ा झड़ और लोटा बोल रहा था कटा कट, कटा कट। बाल ऊपर नीचे हो रहे थे, जिन्हें देखकर ऐसा अनुमान होता था कि मुगलये डांस करते समय क्या फेंक सकेंगे अपने पट्टे। इसी बीच बड़े मियाँ ने एक विचार और प्रकट किया। पोस्टकार्ड सुनते जा रहे थे और आँखें गड़ी थीं नीम साहब पर, भयभीत से और डरे हुये बैठे रहे; आखिर चुपके से कहने लगे "क्या भैया को कोई रोग है" ? मैंने कहा नहीं तो ! इस पर उन्होंने बड़ी गम्भीरता से अपना विचार प्रकट किया बार-बार बाल झटक रहे हैं, आगे पीछे दायें-बाँयें, मैं तो समझा हँसनी खेलनी (चुड़ैल) का कोई फेर है या हवा का। मैं तो जैसे डर गया।" मेंने मुसकराते हुये कहा 'आप डरें नहीं हमारे नीम साहब कुल्ला दातून करते समय ऐसे ही झटके देते हैं। ईश्वर न करे इनको न तो कोई खलल है और न किसी का फेर..." वह भी मुसकराने लगे और

नीम साहब लोटे को व्यायाम करा रहे थे कटाकट सटासट और मुँह पर पानी पड़ रहा था फटाफट, फटाफट...''

एक दिन की बात सुनिये हम सब ने खाना खाया और पढ़ने पढ़ाने की ऐसी बातें होने लगीं मानों शर्त बदी जा रही है। हार न मानना तो उनकी आदत है; इसलिये पढ़ने के लिये डट गये। कुछ देर पुस्तक सामने रखी और पन्ने उलटने लगे। मेरे मुख से निकल गया बस! पढ़ चुके। अब क्या था हमारे नीम साहब ने गले में मफलर लपेटा, दो चार नाक ने सुड़ुक्के भरे मानों नजले की घोषणा कर रहे हों; फिर संभले, एक पुस्तक उठायी, टाइटल पढ़ा या न जाने केवल देखा; दूसरी उठायी, कुछ रिमार्क पास किये; हमें सम्बोधित किया गया और जब उनके सम्बोधन का कोई स्वागत न हुआ, तो बड़ी हसरत से कहने लगे 'अच्छा! तो पढ़ना है। एक बार सीना ताना, चेहरे पर हाथ फेरा, किताब को बड़े जोरों में थप थपाया, पटापट, पटापट मानों शाबाशी दे रहे हों। अच्छा तो हाँ, पन्ना उलट गया, कुछ ही छण बाद 'और हाँ' यह कहकर तीसरा पन्ना उलट दिया' यह तो कोई आवश्यक नहीं,' और फिर अमेरिकन टोन में अंग्रेजी की टाँग तोड़ते हुये ''नोट बेरी ईम-पोर्टेन्ट···''और कुछ क्षणों में आपकी नाक बोल रही थी 'सुर सुर सुर' मैंने कहा 'सो गये यार?' आप कुर्सी से कूद कर धड़ाम से पलँग पर पहुँच गये और कहने लगे 'वाह भाई वाह! पढ़ना है, सो कैसे गये, मफलर सँभाला, नाक सुड़सुड़ाई, खाँसे, लिहाफ ओढ़ा, दीवार से टेक लगाई मानों अखाड़े में उतरने का पूरा सामान कर लिया। पुस्तक फेंक दी, दूसरी उठायी, 'अच्छा हाँ! यह ठीक है'।

कुछ क्षणों पश्चात् खुर-खुर का स्वर सुनाई दिया। लालटेन जल रही है और आप कार्टून बने खर्राटे भर रहे हैं। इतने में हमारे दूसरे साथी आ गये और हमारे कान में फुसफुसाने लगे, अच्छा! बताओ क्या कहेंगे नीम साहब! मैंने उत्तर दिया यह भी कोई सोचने की बात है यही कहेंगे कि रात भर पढ़ते रहे।

वास्तव में जब वह सबेरे उठे तो रसोई घर में कह रहे थे सुनते हो खाँ साहब रात चार बजे तक पढ़ता रहा हूँ और खाँ साहब ने स्वाद कर दिया हाँ! मैं कोई ढाई बजे उठा था, तो लालटेन जल रही थी' खाँ साहब यदि इस समय सात बजे देखते तो भी लालटेन जल रही थी।

४

विचारात्मक निबंधों में निरीक्षण से अधिक अध्ययन और जानकारी उपयोगी होती है। ऐसे निबंधों की सफलता विस्तृत अध्ययन और जानकारी पर निर्भर रहती है। कारण यह है, कि ऐसे विषयों पर लिखते समय निबंधकार उतना स्वतंत्र नहीं रहता, जितना वर्णनात्मक और विवरणात्मक विषयों पर लिखते समय। यहाँ निबंधकार का वह व्यक्तित्व भी नहीं रह जाता जो वर्णनात्मक निबंधों में होता है। वह जिस पर लिख रहा है और जिन विचारों को प्रकट कर रहा है, उसकी पुष्टि में उसे विभिन्न शिक्षकों, तार्किकों, दार्शिनिकों, इतिहासकारों, कवियों, लेखकों आदि का आश्रय लेना पड़ता है और यह वह उस समय तक नहीं कर सकता जब तक उसका अध्ययन विस्तृत न हो। यही नहीं यहाँ उसके विचारों में सत्यता और वास्तविकता ही मूल तत्त्व है। यदि वह लिखता है कि दयालुता नहीं करना चाहिये तो उसका प्रमाण भी देना होगा। वर्णनात्मक निबंधों की भाँति यहाँ उसकी कल्पना नितांत स्वतंत्र नहीं रह जाती। तात्पर्य यह है कि वह जो कुछ कहना चाहता है, चाहे वह स्वयं उसकी कल्पना ही क्यों न हो, तर्कानुसार होनी चाहिये और ऐसा वह उसी समय कर सकता है जब उसका ज्ञान अधिक हो।

साधारण सा उदाहरण लीजिये यदि वह फुट-बाल का खेल या कबड्डी पर ही लिखना चाहता है, तो वह फुट-बाल फील्ड की लम्बाई और चौड़ाई के आँकड़े अपने मन से नहीं दे सकता, इसके लिये पूरी जानकारी की आवश्यकता है। वह यह नहीं

लिख सकता कि फुट-बाल फील्ड बड़ा लम्बा-चौड़ा होता है। ग्यारह या बारह खेलाड़ी होते हैं वरन् उसे इस प्रकार लिखना होगा :

"फुट-बाल का खेल हमारे देश में अँग्रेजी शासन के साथ आया। यह खेल पश्चिमी देशों का है। इसमें ११ खेलाड़ी एक-एक ओर होते हैं। इसके फील्ड का क्षेत्र १०० × ६० गज़ होता है..."

इसके साथ-साथ हाकी और फुट-बाल के खेलों की विभिन्नता पर भी प्रकाश डालना होगा, जैसे फुट-बाल में आधे फील्ड से कहीं पर से बाल गोल पोस्टों के बीच पहुँचा दीजिये तो गोल हो जायेगा, पर "हाकी" के खेल में ऐसा नहीं है 'रिंग' के बाहर से मारने पर गोल नहीं होता। खेल के नियमों पर भी प्रकाश डालना पड़ेगा। 'हैंड' आफ साइड आदि का परिचय भी कराना होगा। यह सब कुछ जानकारी पर निर्भर है, यही नहीं इस सम्बन्ध में रगबी का भी नाम लेना पड़ेगा और ओलम्पिक खेलों का भी।

ऐसा ही 'कबड्डी' के सम्बंध में होगा। कबड्डी की गणना भारतीय-ओलम्पिक खेलों में है या नहीं और यदि है तो कब से ? विभिन्न प्रश्नों के उत्तर देनें होंगे जो जानकारी पर निर्भर हैं।

एक दूसरा विषय लीजिये "उपन्यास पढ़ना" इसके पढ़ने से लाभ और हानि लिखने से पहले आधुनिक-उपन्यासों की तुलना मध्य-कालीन-कथाओं से करनी होगी। उपन्यास विकास, उपन्यासकारों की आलोचनात्मक अभिरुचि, व्यक्ति के आभ्यांतरिक और सामाजिक जीवन प्रवाह पकड़ने की चेष्टा, उपन्यास के तत्त्वों के सम्बंध में कुछ कठिनाइयाँ, सामाजिक, ऐतिहासिक उपन्यास, उपन्यास सम्बंधी आधुनिक मान्यतायें, जासूसी उपन्यास, चरित्र पर प्रभाव आदि जैसे प्रश्नों के उत्तर देना आवश्यक हैं, और यह सब कुछ गम्भीर अध्ययन पर निर्भर है।

इसमें संदेह नहीं निबंधकार अपना मत तो दे सकता है, पर बिना आंकुश का हाथी नहीं बन सकता; अर्थात वह अपने विचार बिना प्रमाण और तर्क के नहीं प्रकट कर सकता। यदि वह ऐसा करता है, तो निबंध का स्तर बहुत नीचा रहेगा।

विचारात्मक निबंधों की एक शाखा व्याख्यात्मक निबंध हैं। यहाँ भी गम्भीर और विस्तृत अध्ययन के बिना निबंध सफल नहीं बन सकता। व्याख्यात्मक निबंधों का क्षेत्र सीमित होने पर भी इन पर लिखने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। इस क्षेत्र में कहावतें, लोकोक्तियाँ, महान व्यक्तियों के कथन, कवियों और दार्शनिकों के विचार आदि आते हैं। वर्णनात्मक और विवरणात्मक विषयों पर आप जो विचार प्रकट करते हैं, वे स्वयं आपके निरीक्षण और अनुभव की एक मात्र अभिव्यक्ति होते हैं और ऐसा करने से ही आपका निबंध यथार्थता लेकर पाठक के सामने आता है और उसे यथार्थवाद के क्षेत्र में पहुँचा देता है। व्याख्यात्मक विषय, चाहे वे कहावतें हों या कवियों के कथन या कुछ और, एक प्रकार से सामूहिक अनुभवों की अभिव्यक्ति का फल होते हैं और उनमें व्यक्तिगत प्रभाव या तो बिलकुल ही नहीं होता या कम होता है। इसलिये उन पर कुछ कहने के लिये आप को भी दूसरे के अनुभवों और उससे अधिक दूसरे की प्रतिभाओं का सहारा लेना ही पड़ेगा।

अन्य विचारात्मक विषयों की भाँति, यहाँ भी यह सहारा दार्शनिक एवं तार्किक अंतर्कथायें और आख्यायिकाएँ होंगी। इतिहास और धार्मिक ग्रंथों के पन्ने भी उलटने होंगे; और तो और आप अंध विश्वासों को भी नहीं छोड़ सकते और कभी-कभी तो यह दुर्बल सहारा ही आपके कथन की ऐसी पुष्टि कर देगा, जहाँ तर्क और दर्शन का बल काम न आ सकेगा।

ऐसे विषयों को प्रभावशाली बनाने में आपको अन्य भाषाओं के साहित्य का भी अध्ययन करना पड़ेगा। आपका जितना विस्तृत अध्ययन होगा, आप अपने विचारात्मक-निबंधों का स्तर उतना ही ऊँचा उठा सकेंगे। शायद यही सब बातें सोचकर साधारणतः ऐसा कहा जाता है, कि विचारात्मक विषयों पर लिखना वर्णनात्मक विषयों की अपेक्षा अधिक कठिन है। सच पूछिये तो बात ऐसी नहीं है और जो लोग ऐसी बात कहते हैं, उन्हें या तो वर्णनात्मक विषयों के ऊँचे स्तर का ज्ञान नहीं और या फिर उन्होंने उन कठिनाइयों पर गम्भीरता-पूर्वक ध्यान नहीं दिया जो वर्णन करने में पैदा होती हैं; या फिर ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे लोगों ने वर्णनों का माप बहुत ही

नीचे स्तर का निर्धारित कर रखा है।

आइये इसी बात को अब एक उदाहरण द्वारा समझने की चेष्टा की जाय। "साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप..." पर अपने विचार प्रकट करना है। ऐसे तो इस पर प्रत्येक विद्यार्थी कुछ न कुछ अवश्य लिख ही लेगा बल्कि कुछ मध्य-श्रेणी तक पहुँच जाँयेगे। सच के गुणों और झूठ के अवगुणों पर चार छः पन्ने भर देना कोन सो बड़ी बात है। चाहे आप इस प्रकार ही क्यों न लिख दें, फिर भी कुछ न कुछ हो जायगा।

"इसमें संदेह नहीं कि साँच (सच) बड़ी तपस्या है और झूठ बड़ा पाप है। सत्य की सुरसरी में मज्जन करने से मनुष्य पवित्र हो जाता है। उसके हृदय की कलुषता जाती रहती है। आत्मा को शान्ति मिलती है। तपस्वी कभी-कभी अपने पद से गिर जाता है, पर सत्यवादी कभी पदच्युत नहीं होता। सत्य बोलने से आत्मा उच्चता की ओर अग्रसर होती है और सत्य स्वरूप भगवान में लय हो जाती है। तप की भाँति सत्य बोलने से चरित्र का निर्माण होता है। नियंत्रण की भावना दृढ़ होती है। चित्त वृत्तियों का निरोध होता है..."

यद्यपि ऐसा कुछ लिख देने से कथन का तत्त्व स्पष्ट न हो सका। निबंध सत्य के गुण-गान और झूठ की निंदा तक ही सीमित रह गया और उस स्तर तक न पहुँच सका, जहाँ यह एक उच्चकोटि का निबंध बन सकता; फिर भी आप यह तो समझ ही गये होंगे कि दूसरों के अनुभवों के सहारे आप जितना चाहें, बढ़ सकते हैं परन्तु यह ज्ञान आपको गहरा अध्ययन ही प्रदान कर सकता है। आप बड़ी सरलता से कुछ न कुछ लिख कर पाठक पर कुछ प्रभाव छोड़ सकते हैं। इसके विपरीत यदि आपको पीपल के वृक्ष, गाय या कौआ का वर्णन करना हो तो वहाँ आप दूसरे के अनुभवों से अधिक स्यंव आपको अपने निरीक्षण का सहारा लेना होगा। तभी आपका निबंध पाठक को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है।

आइये दिये हुये कथन के सम्बंध में उपर्युक्त बातों की सहायता लेकर कुछ लिखने का प्रयास करें।

यह तो आप जानते ही हैं, कि संसार के सारे मत और धर्म मानव-हित

पर केन्द्रित हैं । प्रत्येक ऐसी बात जो मानव-हित के विपरीत होगी, उसे पाप या इसी प्रकार की कोई वस्तु समझा जा सकता है । इस पर धार्मिक व्यक्ति ही नहीं वरन् नीति के उपासक भी विश्वास रखते हैं, चाहे वह कोई धर्म न भी मानते हों । आप यह भी कह सकते हैं, कि ऐसे सत्य की सीमा पाप की सीमा से मिल जायगी, जिससे जनसमूह की हानि हो और मानव का अहित हो या ऐसा झूठ, जिससे जनसमूह का हित हो तप के क्षेत्र में आ सकेगा । इस विश्वास में मतभेद हो सकता है, पर इसे आप एक उदाहरण द्वारा समझ लीजिये ।

एक डाक्टर यह जानते हुये कि मृत्यु-शैया पर पड़ा रोगी बच नहीं सकता । लेकिन उसको या उसके पारिवारिक सम्बन्धियों को यह आशा दिलाता है कि रोगी अच्छा हो जायगा । क्या यह खुला हुआ झूठ नहीं पर उसे कोई मत झूठ बोलने के अपराध में नहीं पकड़ता और न उसे पापी ही कहा जाता है । क्यों ? केवल इसी-लिये कि वह निराशा की भयंकर मूर्ति उनके सामने रखकर, उनकी शान्ति भ्रष्ट करना नहीं चाहता । ऐसी ही दशाओं को सामने रखकर ईरानी भाषा के विख्यात नैतिक कवि शैख 'सादी' को कहना पड़ा होगा "जिस सत्य से मानव शान्ति को धक्का लगे, उससे तो वह झूठ अच्छा है जिससे मानव-कल्याण हो"

अब इस थोड़े से अध्ययन के बल पर निबंध इस प्रकार आरम्भ कीजिये और आशा है कि इसका स्तर पहले वाले निबंध की अपेक्षा ऊँचा हो जायेगा ।

"उपर्युक्त सूक्ति का अर्थ तो नितांत स्पष्ट है, कि झूठ की गणना पाप में होती है और सत्य को एक तपस्या समझना चाहिये । यदि हम इसके साथ एक 'क्यों' जोड़ दें, तो इस क्यों का उत्तर है तो एक समस्या, पर ऐसी नहीं, जो इतनी जटिल हो, कि जिसे सुलझाया न जा सके ।

बात यह है कि हम झूठ को इसलिये पाप समझते हैं कि झूठ बोलने वाला अपने व्यक्तिगत-हित के लिये दूसरों का अहित करना चाहता है। ऐसी भावनायें मनुष्यता के स्तर को बहुत नीचा कर देती हैं। हम सत्य की प्रशंसा इसलिये करते हैं कि झूठ एक निदंनीय अवगुण है। इसके साथ यह भी स्पष्ट है कि तप और तपस्या अपने हित के लिये की जाती है। फिर ऐसा गुण, जिससे अपने हित के साथ दूसरों का भी हित हो, उसे क्यों न तप' (तपस्या) समझा जाय। ऐसा ज्ञात होता है कि कवि ने इसी भावना को सामने रखकर ऐसा कहा है। जब समस्त धर्म मानव हित ही को अपना आदर्श बनाते हैं। ईरानी भाषा का विश्व विख्यात कवि शेख 'सादी' तो इस भावना से यहाँ तक प्रभावित है कि वह ऐसे झूठ को उस सत्य से अच्छा समझता है, जिससे मानव-हित हो।

सत्यवादी हरिशचंद्र की प्रशंसा इसीलिये की जाती है कि उन्होंने अपने हित के लिये झूठ बोलकर मानवता का स्तर नीचा नहीं किया और अपने हित को मानव हित पर बलि कर दिया।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये—

"दु:ख में सुमिरन सब करे सुख में करै न कोय"

हो सकता है कि यह कथन शत प्रतिशत ठीक न हो और आप को कुछ व्यक्ति ऐसे मिल जाँय, जो सुख में भी भगवान का नाम ले लेते हों; पर अधिकांश इसके विपरीत ही मिलेंगे। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को मनुष्य-मात्र की प्रकृति का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है और मनुष्य की स्वाभाविक त्रुटियों की जानकारी है, जिसका प्रदर्शन इस कथन में किया गया है।

"कथन का अर्थ तो नितांत स्पष्ट है कि मनुष्य दु:ख में परमात्मा को याद करता है और सुख में उसे भूल जाता है। हो सकता है कि यह कथन शत प्रति शत, सत्य न हो; पर मनुष्य-मात्र की प्रकृति का मनोवैज्ञानिक अध्ययन बताता है कि मनुष्य विलासता का दास है। उसकी यह भावना अन्य भावनाओं को इतना दबा देती है कि वह परमात्मा को भी भूल बैठता है।

क्या हम और आप स्वंय नहीं देखते हैं कि बच्चे जब तक खेल-कूद में व्यस्त रहते हैं अपनी-अपनी माताओं को भूले रहते हैं; पर जहाँ तनिक सी भी ठेस लगी माता

को पुकारने लगते हैं और उसी के लिये रोते चिल्लाते हैं। प्रौढ़ हो जाने पर भी मनुष्य में इस स्वभाव का प्रभाव अधिक मात्रा में शेष रहता है, और वह सुख में ईश्वर को भूल जाता है।''

आगे सामग्री एकत्र करने के लिये अन्य भाषाओं के साहित्यकारों, ऐतिहासिक घटनाओं आदि से सहायता लीजिये। यहाँ भी अपने निरीक्षण और अनुभवों को बिलकुल न त्याग बैठिये, उनसे भी सहायता लीजिये।

इस थोड़े से वर्णन से यह बात भली-भाँति स्पष्ट हो जाती है कि विचारात्मक निबंधों में चाहे वे किसी प्रकार के हों अध्ययन और जानकारी की बड़ी आवश्यकता है। कारण यह है कि विषय और दृष्टिकोण के अनुसार विवेचन में पूर्णता लाने का यथा सम्भव प्रयत्न किया जाता है। यह बात तर्क और इसी प्रकार के अन्य साधनों द्वारा ही पैदा की जा सकती है। निबंधकार स्वयं अपनी अनुभूतियों को इतना उपयोगी नहीं पाता, जितना दूसरों के आदर्शों और अनुभवों को। इसका यह अर्थ नहीं है कि निबंधकार का व्यक्तिगत अनुभव और निरीक्षण व्यर्थ है। उससे भी काम लिया जाता है और वह भी उपयोगी है, पर उतना नहीं जितना वर्णनों और विवरणों में।

साहित्यिक और आलोचनात्मक निबंधों में आप नितांत ही अध्ययन के सहारे चल सकते हैं। दूसरों की कही हुई बातों के अनुकूल या प्रतिकूल आप अपना मत भले ही दे सकते हैं; पर उनके विचारों को बिल्कुल उपेक्षित नहीं कर सकते।

—०—

५

अपने विचारों को आप किस प्रकार व्यवस्थित करें, इसका थोड़ा बहुत ज्ञान तो आपको हो गया है। इस अध्याय में हम इस बात पर प्रकाश डालना चाहते हैं कि आप अपने विचारों को किस प्रकार और किस अनुक्रम में पाठक के सामने रखें। क्या भाषा-शैली का भी इस सम्बंध में कोई स्थान है? इस प्रश्न का उत्तर सभी शिक्षा-शास्त्री 'हाँ' में देते हैं, और सच बात तो यह है कि विचारो और भावों की कमी तो साधारण और बाजारी लोगों के पास भी नहीं रहती! जो चीज विचार को विचार बनाती है, वह है निबंधकार की भाषा-शैली। शैली ही निबंध को प्रभावशाली और सुस्पष्ट बनाती है।

विद्यार्थी इस बात पर ध्यान नहीं देते और जो कुछ सोचते हैं, उसे मन माने ढंग से लिख डालते हैं। फल यह होता है कि उनके सारे विचार और भाव अर्थ-हीन और निरर्थक हो जाते हैं।

वर्णनात्मक निबंधों की अपेक्षा, विचारात्मक निबंधो में, जहाँ विचारों का स्थान बहुत ऊँचा है, वहाँ भी सुव्यवस्थित एवं प्रभावशाली बनाना बहुत कुछ शैली पर निर्भर है। शैली को सौंदर्य प्रदान करने में भाषा का ही प्रधान हाथ है।

हिन्दी में भाषा के कई रूप प्रचलित हैं, और इस दृष्टिकोण से भाषा का प्रश्न एक समस्या है। पुराने साहित्य की बात छोड़िये, आधुनिक लेखकों में जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द आदि की भाषा शैलियाँ ही लीजिये, तो अनुभव होगा कि 'प्रसाद' की भाषा

सर्वसाधारण की भाषा नहीं है। उसमें ऐसी कृत्रिमता है, जो पाठकों को खटक सकती है। आप इस बात को इस प्रकार समझिये कि जो बात—

'शुष्क काष्ठ तिष्ट त्यग्रे' में है वही बात, 'नीरस तरु रिह विलसति पुरतः' में भी है, पर पहले वाक्य में उस प्रभाव का अभाव है, जो दूसरे वाक्य में है।

अच्छी शैली बनाने के लिये लक्षणा, व्यंजना, अभिव्यंजना आदि सभी शक्तियों से लाभ उठाना पड़ता है। ऐसे तो प्रत्येक लेखक की अपनी-अपनी अलग-अलग शैली होती है, किन्तु सामान्यतः हिन्दी भाषा में दो प्रकार की शैलियाँ विशेष प्रचलित हैं—(१) साधारण बोलचाल की शुद्ध भाषा, जैसी कुछ प्रेमचन्द की कहानियों और प्रतापनारायण मिश्र के निबंधों में मिलती है। उर्दू में ऐसी शैली के नमूने सरसैयद अहमद खाँ, या फिर पतरस बुख़ारी के निबंधों में मिलते हैं। (२) अलंकृत संस्कृत प्रधान-शैली, जिसके नमूने हमें प्रसाद जी के नाटकों में मिलते हैं।

अब प्रश्न यह है कि आप अपने निबंधो में किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करें। इसके उत्तर में कोई नियमित नियम तो नहीं बताया जा सकता पर यह कहना अनुचित न होगा कि भाषा का स्वरूप बहुत कुछ विषय पर भी निर्भर रहता है। वर्णन निर्जीव और चेतन का हुआ करता है, और उसमें कभी-कभी प्राकृतिक चित्र भी आ जाते हैं। विवरणों में घटनाओं का वर्णन होता है। वर्णनों में स्थायी गुणों का चित्रण किया जाता है। विवरणों में गतशील घटनाओं का चल-चित्र रहता है।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ऐसे निबंधों में वर्णन वह काम करता है, जो नाटको के अभिनय में रंग-मंच पर पर्दे करते हैं। ऐसी दशा में वर्णनात्मक और विवरणनात्मक निबंधो के लिये सामान्य बोल-चाल की सरल, किन्तु शुद्ध भाषा का व्यवहार ही अधिक अच्छा होगा, और आप अपने निरीक्षण को ऐसे समुचित रूप में पाठक के सामने रख सकेंगे, कि वह प्रभावित हो सके। यदि आप अलंकृत संस्कृत प्रधान शैली का उपयोग करेंगे, तो संभव है कि कृत्रिमता के कारण आपके वर्णनों और विवरणों की गति में शैथिल्यता पैदा हो जाय। उस प्रभाव और कौतूहल का नितान्त अभाव हो जायगा, जो आप अपने निबंध में पैदा करना चाहते हैं। इस प्रकार आप

अपनी वर्णन शक्ति और कहने की चातुरी का प्रदर्शन भी भली भाँति नहीं कर सकते।

विचारात्मक और विशेषकर साहित्यिक तथा व्याख्यात्मक निबधों में, जहाँ आप बिलकुल स्वतंत्र नहीं हैं और अपने निरीक्षण के अतिरिक्त आपका निबंध दूसरों के कथन और विचारों पर बहुत कुछ निर्भर रहता है वहाँ आप अलंकृत संस्कृत प्रधान-भाषा का व्यवहार भी कर सकते हैं, और यदि आप समर्थ हों, तो सरल चलती भाषा का भी व्यवहार कर सकते हैं। आप जैसी भी भाषा लिखें इन बातों पर ध्यान देना अति आवश्यक है—

व्यकारण और सुलेख की अशुद्धियाँ न हों। उपयुक्त शब्दों का प्रयोग होना चाहिये। पद मैत्री, सुसंगठित वाक्य-विन्यास, अविच्छिन्न-प्रवाह अच्छी शैली के लिये अत्यंत आवश्यक बातें हैं।

हमारी भाषा के विचारात्मक निबंधों में समास-प्रधान और व्यास-प्रधान दोनों ही प्रकार की शैलियाँ मिलतीं हैं समास-प्रधान शैली में जो बातें कही जाती हैं, उन पर 'गागर में सागर' भरने वाली कहावत लागू होती है। व्यास-प्रधान-शैली में इसके विपरीत जो कुछ कहा जाता है, विस्तार पूर्वक होता है। विचारात्मक निबधों में आपको दोनों के बीच की शैली अपनानी चाहिये। न तो इतनी संक्षिप्त हो कि पाठक की समझ ही में कुछ न आये और न इतनी विस्तार पूर्ण ही हो कि पाठक पढ़ते-पढ़ते ऊब जायें। ऐसे निबंधों की भाषा परिमार्जित होनी चाहिये तथा शैली सीधी सादी और सरल। काव्य के उपकरणों की गुँजाइश बहुत ही कम है।

—o—

६

भाषा में व्याकरण का क्या स्थान है, और उसका क्या महत्त्व है इसपर प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं। व्याकरण सीखना केवल उन लोगों के लिये अनिवार्य नहीं है जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है, वरन् उन लोगों के लिये भी उतनी ही अनिवार्य है, जिनकी मातृभाषा हिंदी है। कारण यह है कि हिंदी भाषा के अनेकों क्षेत्र हैं, और बोलियाँ प्रथक-प्रथक होने के कारण बड़ी विभिन्नता पायी जाती है। इससे इन्कार करने की कोई गुंजायश बाकी नहीं रह जाती कि व्याकरण सिद्धांतों पर ध्यान रखना हमारे लिये अति आवश्यक है।

इस सम्बंध में सब से पहले हम "लिंग" के बारे में कुछ विचार प्रकट करेंगे।

संज्ञाओं के लिंग नियम

(१) व्याकरण का एक सामान्य नियम है कि इकारान्त संज्ञायें स्त्री लिंग होती हैं, पर निम्नांकित संज्ञाएँ इस नियम से पृथक हैं, और इनका पुल्लिंग प्रयोग अधिक शुद्ध है जैसे:—दही, हाथी, मोती

(२) अरबी का शब्द 'तावीज़' जिसे साधारण बोली में 'तवीज' कहते हैं पुल्लिंग है।

(३) इसी प्रकार निम्नांकित शब्द स्त्रीलिंग बोले जाते हैं; पर अधिक शुद्ध पुल्लिग-प्रयोग है:—

बाग, पु[illegible], तोंद, [illegible], तकिया, दर्द, सींग, खेल, गेंद, गीत, चा[illegible]लन, बदंरगाह, बेत, [illegible]रना, बिच्छू, नोटिस, दस्तख़त या दसखत (हस्ताक्षर)।

(४) उर्दू भाषा भाषियों और साहित्यकारों विशेषतः कवियों ने इस सम्बन्ध में बड़ा प्रयास किया है; पर हमारी हिंदी भाषा में ऐसा नहीं हुआ है और जो व्यक्ति जैसा चाहता है मनमाना प्रयोग करता है। भाषा में समानता लाने के लिए हमें इसका प्रयास करना चाहिये।

क्रियाओं के लिंग नियम

इस सम्बन्ध में स्थानीय भाषा-शैली प्रभाव के कारण बड़ी भूलें होती हैं, और हम व्याकरण-नियमों का खंडन करने लगते हैं। इसलिये हमें याद रखना चाहिये:—

(१) अकर्मक क्रियाओं में क्रिया का लिंग कर्त्ता अनुसार होता है। यदि कर्त्ता पुल्लिग है, तो क्रिया पुल्लिग और यदि कर्त्ता स्त्री-लिंग है, तो क्रिया स्त्रीलिंग; जैसे बालक आया, कन्या आयी, फल गिरा, पत्ती गिरी।

(२) कर्त्ता के साथ 'ने' रहने पर सकर्मक क्रिया में क्रिया का लिंग कर्मानुसार होगा, जैसे—जयशंकर ने असरूद खाया, प्रभाकर ने रोटी खायी, सावित्री ने संतरा खाया, शशिकला ने ओढनी ओढ़ी और जम्पर पहना।

(३) सकर्मक क्रिया के कर्मवाच्य में, जहाँ कर्त्ता छिपा होता है, क्रिया का लिंग कर्मानुसार होता है, जैसे—पत्र लिख गया, पुस्तक पढ़ी गयी, अमरूद खाया गया तरकारियाँ तोड़ी गयीं।

(४) यदि सकर्मक क्रिया में कर्म के बाद 'को' का प्रयोग करे, तो क्रिया सदा पुल्लिग होगी जैसे उसने रोटी को खाया, किताब को पढ़ा। यद्यपि 'को' का प्रयोग भद्दा सा है।

संज्ञा का वचन

कुछ संज्ञाएँ एक बचन होने पर भी बहुवचन मानी जाती हैं, यद्यपि साधारणतः उन्हें एक बचन में ही बोला जाता है :—

दाम	इसके दाम क्या हैं ?
दर्शन	देवी के दर्शन हो गये ।
करतूत	उसके करतूत
कपड़ा (सिला हुआ)	कपड़े बदल डालो
हस्ताक्षर	हस्ताक्षर कर दिये

सर्वनाम

'आप' तुम के स्थान पर व्यक्ति वाचक सर्वनाम के रूप में प्रयोग किया जाता है, पर इसके साथ क्रिया बहुबचन की लगायी जाती है, जैसे—

आप बैठें या बैठिये	आप बैठो	ठीक नहीं
आप खायेंगे ?	आप खाओगे ?	,, ,,
अब आप पढ़ेंगे ।	अब आप पढ़ोगे	,, ,,

'जो' के साथ 'कि' का प्रयोग जहाँ तक हो सके नहीं करना चाहिए, और यदि लिखना ही है तो 'कि' लिखिये । "की" गलत है । इसी प्रकार "जब" के साथ ।

संख्या विशेषण

(१) संख्या बोधक विशेषण में एक, दो, तीन चार से क्रमबोधक-विशेषण क्रमशः पहला, दूसरा, तीसरा और चौथा बिना नियम बना लिये गये हैं । शेष संख्याओं के आगे 'वाँ' लगा देने से क्रमबोधक-विशेषण बन जाता है, जैसे पाँचवाँ, दसवाँ, ग्यारवाँ, हजरावाँ इत्यादि । छः से नियमानुसार छठवाँ होना चाहिये, पर छठा बोलना, और लिखना अधिक शुद्ध है ।

(२) किसी एक संख्या को पूर्णरूप से प्रयोग करना हो या उसपर जोर देना हो, तो उस संख्या के आगे 'ओं' लगाकर समुच्चयबोधक संख्या विशेषण बनाते हैं, जैसे पाँचों लड़कियों से कह दो, हजारों बार मना किया गया ।

(३) बीस से बीसों और बीसियों दोनों ही बनाये जाते हैं; पर बीसों अधिक शुद्ध है ।

(४) निश्चय बोधक संख्यावाचक विशेषण से अनिश्चय बोधक संख्यावाचक बनाने के लिये इससे पहले 'कोई' लगाना चाहिये, जैसे कोई दस लड़कियाँ वहाँ थीं, कोई हजार आदमी वहाँ होंगे ।

संख्या के पश्चात् 'एक' लगाकर अनिश्चय बोधक संख्या वाचक विशेषण बनाना ग़लत है, जैसे दस एक लड़कियाँ, हज़ार एक आदमी।

(५) हर और हरेक (प्रत्येक) एक वचन संख्या वाचक विशेषण है, इसलिये इसके बाद आने वाली संज्ञा (विशेष्य) भी एक बचन होनी चाहिये, जैसे हर स्कूल में, हरेक देश में, अतः हरेक स्कूलों में, हरेक देशों में बोलना और लिखना दोनों ही गलत हैं। ऐसी दशा में जब स्कूलों या देशों आदि कहना हो, तो इनसे पहले सारे या कुल और समस्त का प्रयोग करना चहिये, जैसे, सारे स्कूलों में, सब देशों में, कुल कालेजों में···।

कर्त्ता की विभक्ति—सकर्मक क्रियाओं के सामान्य भूत, संदिग्ध भूत और अन्य भूत कालों में 'ने' का प्रयोग आवश्यक है, जैसे मैंने पढ़ा, जयशंकर ने लिखा।

निम्नांकित क्रियायें इस नियम से अलग हैं। इनमें "ने" का प्रयोग नहीं होता है:—

बोलना	मैं बोला	मुन्नी बोली।
भूलना	सुशील भूला	शीला भूली।
लाना	वह लाई	वह पुस्तक लाया।
शरमाना	बह शरमायी	मोहन शरमाया

जब सकर्मक क्रिया का प्रयोग किसी संयुक्त क्रिया के साथ हो, ऐसी दशा में यदि संयुक्त क्रिया सकर्मक है, तो 'ने' का प्रयोग उसी भाँति होगा, जैसा अभी बताया जा चुका है, और यदि संयुक्त क्रिया अकर्मक हैं, तो 'ने' का प्रयोग नहीं होगा, जैसे

मैंने पढ़ा।	संयुक्त क्रियारहित
मैंने पढ़ लिया है।	संयुक्त क्रिया सहित
मैं पढ़ चुका।	संयुक्त अकर्मक क्रिया

संयुक्त क्रिया लग जाने से, यदि कोई अकर्मक क्रिया सकर्मक बन गयी है, तो ने

का प्रयोग अवश्य होगा, जैसे सोना के साथ, देना, लग जाने से सकर्मक क्रिया बन गयी, तो यह इस प्रकार प्रयोग में आयेगा, जैसे उसने मुझे सोने दिया ।

जीतना, समझना, सीखना, हारना, पुकारना, बदलना, बकना से बनी हुई क्रियाओं के साथ कभी ने का प्रयोग होता है, और कभी नहीं । इसलिये इनका प्रयोग दोनों प्रकार से ठीक है ।

चुकना, लेना, देना, सकना, जाना, पड़ना, रहना, डालना ऐसी सहायक क्रियायें हैं ।

ऐसे वाक्यों में जहाँ सामान्य क्रिया के साथ कोई अपूर्ण क्रिया—है, हैं, था, थां थे, थीं, प्रयोग करना हो, वहाँ कर्त्ता के साथ "ने" का प्रयोग न करना चाहिये, वरन् यदि कर्त्ता सर्वनाम है, तो कर्त्ता-वाचक सर्वनाम के स्थान पर कर्म-वाचक सर्वनाम का, और, यदि कर्त्ता जातिवाचक या व्यक्ति वाचक संज्ञा हैं, तो 'ने' के स्थान पर को का प्रयोग करना चाहिये, जैसा कुछ निम्नांकित वाक्यों में है । दाहिनी ओर के वाक्य अशुद्ध हैं:—

उसको या उसे पुस्तक पढ़ना है ।	उसने पुस्तक पढ़ना है ।
उनको बातचीत करनी थी ।	उन्हो ने बातचीत करनी थी ।
लवकुमार को स्टेशन जाना है ।	लवकुमार ने स्टेशन जाना है ।
मुझको बहुत से काम करना है ।	मैंने बहुत से काम करने हैं ।

'को' विभक्ति का रूप—(१) सर्कमक क्रिया भूतकाल में यदि कर्म के आगे 'को' लगा दिया जाये, तो क्रिया का लिगं नहीं बदलता और पुल्लिगं ही रहता है, जैसे उसने नाँरगी को खाया, मैंने सब बातों को कह दिया ।

(२) कभी-कभी को' का निरर्थक प्रयोग कर दिया जाता है, जैसे क्या आप दिल्ली को जा रहे हैं ? शंकर पाठशाला को जा रहा है, पुस्तक को पढ़ो ।

(३) कहना से बनी हुयी क्रियाओं के साथ 'को' का प्रयोग गलत है । यह फारसी भाषा का नियम है, जैसे लवकुमार को कहो, मैं महमूद को कहता हूँ, सुशील को

कहा गया था। ऐसे स्थानों पर 'को' के स्थान पर 'से' का प्रयोग करना चाहिए लवकुमार से कहो, मैं महमूद से कहता हूँ, सुशील से कहा गया था।

'कि' और 'की'—विद्यार्थी "कि" और "की" के प्रयोग में बड़ी गलती करते हैं। बड़ी साधारण सी बात है कि 'की' का प्रयोग संज्ञा और सर्वनाम के साथ होता है, जहाँ सम्बंध कारक बनता है, जैसे मोहन की पुस्तक, शीला की पेंसिल; उनकी पुस्तकें 'कि' सदा क्रिया के बाद प्रयोग में आती है, जैसे उसने कहा कि वह जायेगा।

बहुधा देखा गया है कि विद्यार्थी जो के साथ 'की' का तो गलत प्रयोग करते ही हैं, इसके साथ 'के' भी लिखते हैं यह भी गलत है।

जो और जिन के बाद जब 'की' 'का', 'पर' आ जाता है, तब "जो" के रूप इस प्रकार हो जाते हैं :—

जिसने	जिन्हों ने
जिसको	जिनको, जिन्हे
जिसका	जिनका
जिस के	जिन के
जिस की	जिन की
जिस पर	जिन पर

'जो' के बाद 'कि' का प्रयोग अधिक शुद्ध नहीं है। यह फारसी भाषा की नकल है, जैसे आँ कि (जोकि)।

बहुत जोर देने या ताकीद करने के लिये कभी-कभी जो का दो बार प्रयोग किया जाता है, जैसे **'जो जो'** बातें कही गयी हैं, उन्हें याद रखो; जिन जिन बच्चों ने कापियाँ दे दी हैं, उनकी छुट्टी है।

ही और नहीं जब "ही" का प्रयोग दो बार करना होऔर साथ ही साथ किन्हीं दो बातों की निषेध भी करना है, तो जिस बात पर जोर देना है, इस के बाद 'ही' लगाना चाहिये, और इस बात से पहले 'न' रखना चाहिये। 'ही' से पहले **न** लगाना गलत है; जैसे किसी के बारे में यह बतलाना है, कि वह दो बातों में से एक भी नहीं करता तो ऐसे लिखेंगे **'न'** वह पढ़ता ही है, और न खेलता ही है; न वह स्वयं ही काम करता है, न दूसरे ही को करने देता है। इन वाक्यों को इस प्रकार बोलना या लिखना दोनों गलत हैं; "न ही वह पढ़ता है, न ही वह खेलता है, **न** ही वह स्वयं काम करता है, **न** ही दूसरे को करने देता है।"

७

लिपि और वर्तनी की अशुद्धिआँ कई कारणों से हो जाती हैं; जिनमें से एक प्रमुख कारण तो अशुद्ध उच्चारण है। हम कुछ शब्द ऐसे देते हैं, जो अशुद्ध उच्चारण के कारण ही गलत लिखे जाते हैं :—

(१) 'उ' के स्थान पर 'ऊ'—उर्दू बोलने वालों का विशेष स्वभाव है, कि वे 'उ' के स्थान पर 'ऊ' बोलते और लिखते हैं जैसे—

साधु साधू प्रभु प्रभू शंभु शम्भू

(२) 'स' के स्थान पर 'श' और इसका उल्टा भी, जैसे—

प्रसाद प्रशाद दशहरा दसहरा प्रशंसा प्रसंशा

(३) 'य' के स्थान पर 'ऐ' की मात्रा:

विजै विजय जैशंकर जयशंकर नैन नयन

(४) 'इ' के स्थान पर 'ई'

शान्ति	शान्ती
ऋषि	ऋषी
मुनि	मुनी
कवि	कवी

(५) ऐसे शब्दों की एक विस्तृत सूची बन सकती है, जो केवल अशुद्ध उच्चारण के कारण गलत लिखे जाते हैं:—

शुद्ध	अशुद्ध
ब्रजभाषा	बृजभाषा
ब्रजनाथ	बृजनाथ
ब्रजलाल	बृजलाल
मातृ भाषा	मात्रि, मात्र भाषा
प्रथा	पृथा
प्रकृति	पराकृत
व्यवहार	ब्योहार, वेवहार
अध्ययन	अध्यन
कौशल्या	कौशिल्या
कलियुग	कलजुग, कलयुग
ईर्षा	ईर्षा
शिवचरण	शिउचरन
कृष्ण	क्रिश्न
कालेज	कालिज
राज्य	राज
राज-पाट	राज्य पाट
राजकीय	राजकी
स्वभाव	सुभाउ

चन्द्रबिंदु—जब हम आधा **न** के स्थान पर केवल एक बिंदु रखकर काम चलाने लगे हैं और 'हँस' इस प्रकार लिखते हैं, इसलिये अब हमारे लिये चन्द्रबिंदु लगाना अति आवश्यक और अनिवार्य्य हो जाता है कि हम हंस और हँस में अंतर कर सकें। नहीं तो उर्दू के खुदा और जुदा वाली कहावत यहाँ भी लागू हो जायगी। यों भी हमें चन्द्रबिंदु का प्रयोग अवश्य करना चाहिये, पर ऐसे शब्दों पर लगाना बहुत ही आवश्यक है, जहाँ इस प्रकार का धोखा हो जाने का भय हो।

उर्दू लिपि में अभ्यास रखने वालों को इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि वे जहाँ दो अक्षर ठेठ हिन्दी के आ जाते हैं, उनमें से एक को साधारण बना लेते हैं, पर

हिन्दी-लिपि में ऐसा नहीं होता । हम ऐसे कुछ शब्द उदाहरण के लिये देते हैं :—

उर्दू लिपि	हिन्दी लिपि	उर्दू लिपि	हिन्दी लिपि
भीक	भीख	भिकारी	भिखारी
छाज	छाझ	ठाट	ठाठ
धोका	धोखा	टेट	ठेठ

कुछ ऐसे शब्दों की वर्तनी का भी ध्यान रखना चाहिये, जो हैं तो ठेठ हिन्दी, पर उर्दू बोलने वाले उनका उच्चारण दूसरे रूप से करते हैं, इसलिये उर्दू के विद्यर्थी हिन्दी लिखते समय भ्रम में पड़ सकते हैं :—

उर्दू	हिन्दी	उर्दू	हिन्दो
आँचल	अंचल	ओढ़नी	उढ़नी
बियाह	विवाह	दूल्हा	दुलहा
मामता	ममता	दूल्हन	दुलहिन
खँडर	खड़हर	होंट	ओंठ
सुहाना	सुहावना	सुनहरी	सुनहली

कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनमें आधा र का उच्चारण है, पर हिन्दी में पूरा-पूरा लिखा जाता है :—

गर्दन	गरदन	बर्तन	बरतन
गर्मी	गरमी	सर्दी	सरदी
सर्द	शरद	बर्सात	बरसात

कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जिनमें साधारणतः पूरा र बोला जाता, है पर आधा र ऊपर लगाया जाता है :—

बरस	वर्ष	करम	कर्म
मरम	मर्म	करता	कर्त्ता

व और ब- विद्यार्थी व—और ब में कोई भेद नहीं करते । बात बड़ी साधारण सी जान पड़ती है; पर कभी-कभी ऐसा कर देने से बड़ा मनोरंजक अंतर पड़ जाता है;

जैसे वाह्य और वाह्य को ले लीजिये और देखिये कितना अंतर पड़ जायेगा । वाह्य का अर्थ है ढोने के योग्य, और बाह्य का अर्थ है बाहरी । वहन-ढोना और बहन आप जानते ही हैं ।

हिन्दी में कुछ शब्द कई ढंग से लिखे जाते हैं आप दूसरा रूप अपनाइये :—

अर्द्ध	अर्ध	धर्म्म	धर्म
गई	*गयी	कौवा	कौआ

उर्दू के वे शब्द जिनके अंत में 'ड' होता है, हिन्दी में प्रायः ड के स्थान पर ड़ लिखते हैं :—

राँड	राँड़	साँड	साँड़
भाँड	भाँड़	खाँड	खाँड़

सामान्य भूत काल का स्त्रीलिंग, जिसके अंत में ई लिखी जाती है, आप यी लिखिये ।

वर्णनात्मक, विवरणात्मक

निबन्ध

एवं

रेखा-चित्र

गरमियों की छुट्टियाँ

"छुट्टियों को भली-भाँति बिताना बुद्धिमान व्यक्ति ही जानते हैं"

छुट्टियाँ किस प्रकार बिताना चाहिये ? इसका उत्तर देना तो एक जटिल समस्या है; पर मैंने छुट्टियाँ किस प्रकार बिताईं उस पर प्रकाश डालने से पहले, यह बता देना अनुचित न होगा, कि प्रत्येक व्यक्ति अपने वातावरण, स्थिति और रुचि के अनुसार छुट्टियाँ बिताया करते हैं; और यह एक ऐसी स्पष्ट और मानी हुई बात है, जिसको अस्वीकार करने की कोई सम्भावना ही नहीं।

कालेज बंद हुआ, और हम जिस वातावरण में पहुँचे, उसका विवरण कर देना एक मनोरंजक ही होगा। हमारी जन्म भूमि ऐसे तो कोई छोटी जगह नहीं है, एक बड़ा कसबा है, जहाँ म्यूनिसपल्टी भी है; पर सदस्यों से इस बात की आशा करना, कि वे टहलने के लिये कोई पार्क बनवा दें, या बालकों, अथवा नवयुवकों के लिये कोई व्यायामशाल बनवा दें, व्यर्थ है। हम जिस ऋतु में वहाँ पहुँचते हैं, तो सड़कें दाँत निकाल देती हैं, जो कंकरों के रूप में उन ठेकेदारों के विरोध में एजीटेशन करती दिखाई देती हैं, जिन्होंने कंकरों पर मिट्टी डाल कर लेप-पोत कर दी, अब गरमियों की आँधियों ने उनकी चाल को बिलकुल स्पष्ट कर दिया। मजा तो यह है कि सड़कें इस योग्य भी नहीं रहतीं, कि कोई भला आदमी बिना खतरा

अनुभव किये उन पर चल फिर सके। अब हमारे लिये केवल एक बाज़ार रह जाता है, जहाँ कोई घूमने-फिरने के लिये जा सके, सो इसके लिये हमारे कसबे के रीति-रिवाजों का यह हुक्म है, कि शरीफ, जमीदारों के लड़के बाज़ारों में नहीं जा सकते, यह ओछेपन की बात है, असभ्यता है और सबसे बड़ी बात यह है कि शान में बट्टा लगता है, और इस प्रकार यह दरवाजा भी बंद हो जाता है।

ऐसे वातावरण और ऐसी दशा में हमारी छुट्टियाँ कुछ इस प्रकार बीतना चाहिये जिस पर यह कहावत चरितार्थ होती हो।

सुबह होती है, शाम होती है,
उम्र यों ही तमाम होती है।

पर यह न भूलना चाहिये कि सुबह से शाम करने के लिये हमें कई मंजिलें तै करनी पड़ती थीं; अर्थात् सुबह हुई, हम उठे, जिसमें किसी दूसरे की शक्ति का अंश अधिक होता था यानी हम उठाये जाते थे। कुल्ला, दातून और स्नान करने के बाद कुछ जलपान करके, अपनी प्राकृतिक रुचि से बाध्य होकर कहानियों का कोई संग्रह लेकर बैठ जाता; प्रेम पच्चीसी हो, या गिरती दीवारें, उसने कहा, हो या वोलगा से गंगा; जब खेत जागे, हो या माँ हमें पढ़ने से काम। इस बीच में यदि हमारे कोई मित्र आ पहुँचे, तो फिल्मों पर वाद-विवाद, निरर्थक बहसें, आलोचनायें छिड़ जातीं; और जब इससे उकता गये, तो कैरम लेकर बैठ गये। जीतने और हराने की शर्तें लगतीं, चैलेंज, अलटी-मेटम, चुनौती या इस प्रकार के जो शब्द इसके लिये उचित हो सकते, सभी कुछ कह जाते। खेलने में न जाने कितने प्रकार की अन्य बातें भी होतीं, और नतीजा कुछ न निकलता अगर हमारे दोस्त हार गये, तो वह अपनी हार मानने के लिये तैयार न होते और यदि कहीं पाँसा इधर उलट पड़ा, तो हम काहे को हार मानने लगे। हो सकता है कि यह गुण हमें अपने पूर्वजों से तरके में मिला हो वे भी जब किसी समस्या को सुलझाना चाहते हैं तो वाद-विवाद तो होता ही है, कभी-कभी तो वह तू-तू -मैं-मैं होती है, कि असुर भी हँस पड़ते हैं पर हार मानना, समझौता हो जाना असम्भव सा हो जाता है।

दोपहर का खाना खाया, और बिस्तरा पकड़ा; सोने से पहले न जाने क्या-क्या मंसूबे बाँधते, और थोड़ी देर के लिये शेख चिल्ली से भी आगे बढ़ जाने की कोशिश करते-करते सो जाते। पाँच बजे तक दुनिया की कोई सुधि-बुधि न रहती, और जब चौंकते तो माता जी की आवाज़ कान से टकराती होती "बेटा! उठ बैठो और जल्दी से हाथ मुँह धो डालो शर्बत गरम हो जावेगा। आज्ञा पालन कहिये, या अपना स्वार्थ; इसकी पूर्ती करके जाल, बल्ले दबा कर हम उस जगह पहुँचते, जहाँ हम सबने साझे की हाँडी कहिये या चन्दे का क्लब तैयार किया था, और बैडमेंटन खेलते रहते; बाद में फिर खाने और सोने की बात। यह सोना दोपहर के सोने से बहुत कुछ विभिन्न और मनोरञ्जक होता; यानी सोने से पहले हमारे मामा का नौकर मत्तू हमें कहानियाँ सुनाता, वह कहानियाँ, जहाँ राजा होते और रानियाँ, परियों का झुरमुट, उड़नखटोलों की बहारें! बेचारा शाहज़ादा लाल परी के चंगुल में फँसा अपने माता-पिता की जुदाई में बेचैन होता; अंत में वह लाल परी से विवाह करके बड़ी धूम-धाम से घर लौटता। हमारे मत्तू साहब कभी-कभी तो ऐसी बातें कह जाते, कि टैगोर का अब्दुल मात.खाता दिखाई देता। हमको स्वयं अपनी सूझ-बूझ और बुद्धि पर गर्व होने पर भी मत्तू के गल्प कथन का जादू हम पर चल जाता, और जब वह कहता कि "शाहजादा बेचारा निश्चिन्त सो रहा था, कि उड़न-खटोला उतरा और परी अपने साथ उड़ा ले गयी तो हमारे हाथों के तोते उड़ जाते, और हम इसे बिल्कुल सच समझ कर, उससे पूछ बैठते, "ऐं मत्तू फिर क्या हुआ?"

अन्ततोगत्वा हमारी छुट्टियों का एक बड़ा भाग बहुत कुछ इसी प्रकार व्यतीत हुआ, जिसपर 'खाओ पिओ और मौज उड़ाओ" वाली कहावत ठीक बैठती है।

छुट्टियों का अन्तिम भाग, पहले भाग की भाँति स्वतन्त्रता और निरंकुशता का तो नहीं है, पर है बड़ा मनोरञ्जक। कारण यह हुआ, कि अब हमारे पिता जी एक लम्बे सफ़र से वापस आ गये, आगत-स्वागत के पश्चात् प्रथम यह किया गया, कि इतने दिनों में क्या-क्या पढ़ डाला? उनके स्वयं टीचर होने के नाते मकान भी स्कूल ही बना रहता है और एक प्रकार से वे पिता कम और अध्यापक अधिक दिखाई

देते हैं। रात को विराजमान हुये और मिलिट्री कमान्ड जारी हो गया, कि सुबह से पढ़ना शुरू कर दो।

अब हमारे कार्य-क्रम में परिवर्तन हुआ, और हमारा वह समय, जो कहानियाँ पढ़ने में बीतता था, बोर्ड के प्रास्पेक्टस की पूर्ती में बीतने लगा, अर्थात् हिन्दी से अँग्रेजी में अनुवाद करना, कम से कम दो पन्ने, अँग्रेजी व्याकरण में शब्द निरुक्ति, पद-व्यख्या का अभ्यास करना, डाइरेक्ट को इनडारेक्ट में बदलना, यानी सीधी-सादी बात को टेढ़ा-मेंढ़ा कर देना, और तोड़-फोड़ करते रहना। यह समय स्कूल के अँग्रेजी पीरियड से कहीं अधिक नीरस बीतता।

कैरम खेलने वाला समय भी कभी-कभी इसी की भेंट हो जाता, और गलतियाँ ठीक करने में बीत जाता। इसमें सन्देह नहीं कि जल-पान और खाना पहले से बहुत अच्छा और स्वादिष्ट मिलता, पर हम तो उपासक थे :—

मिले खुश्क रोटी जो आज़ाद रहकर।
तो है खौफ़ जिल्लत के हलुये से बिहतर॥

हमारी तानाशाही और स्वतन्त्रता जैसे पाबंदियों की जन्जीरों में फँस गई हो; हमारे आने-जाने पर कन्ट्रोल लग गया हो; अब हमें अपने दोस्तों के वहाँ ज़ाने और उनको हमारे यहाँ आने में एक अजीब झिझक सी लगने लगी।

इस समय का वह भाग बड़ा दिलचस्प और मनोरञ्जक है, जहाँ उन्होंने हमारे सिपुर्द यह काम किया कि हम घर की नौकरानी के एक लड़के और लड़की को पढ़ायें यह वह सोशल सर्विस थी, जो दिलचस्प भी थी और दुख दायक भी जिसमें प्रगतिशीलता भी है, और कुरीतियों के विरोध में खुला चैलेञ्ज, सरकारी कागज़ी स्कीमों की पूर्ति की कोशिश भी और जन सेवा भी; पर सच पूछिये तो थी बड़ी टेढ़ी खीर। लड़की काम-काज से जब छुट्टी पाती, अपना बसता लेकर हमारे पास आ बैठती। इसमें शक नहीं कि उस समय हमें अपनी शान बहुत ऊँची दिखाई देती, लेकिन देखिये आगे चल कर यह शान ऊँची उठती है, या गिरती है? हमने पूछा कमला कमल का रंग कैसा होता है?" उसने तुरन्त उत्तर दिया "हमारा नाम" मैंने पूछा यानी? उसने जबाब

दिया "लाल" हमने एक पेन्सिल दिखाते हुये पूछा "ऐसा" कहने लगी कह तो दिया हमारा नाम हम चुप हो गये और समझ गये कि इसका दूसरा जवाब ही क्या हो सकता है, "लाल," "कमला का नाम।" अब हमारा चुप रहना इस बात का प्रमाण बन गया कि हम अपने पद से पदच्युत हो रहे हैं। और अन्त में हमें कहना पड़ा कि कहो कमल का रंग लाल होता है, वह हँसने लगी और मुझे यह आभास हो गया कि हमारा प्रभाव उस पर नहीं पड़ रहा है उसके एक टीप उड़ाई और कह दिया चलो नहीं पढ़ाता हूँ।

संक्षेप में यह समझिए कि हमारी छुट्टियाँ कुछ इस भाँति व्यतीत हुई जिस पर यह कहावत लागू हो सकती है "आम के आम गुठलों के दाम" अर्थात् स्वयं भी पढ़ा और पढ़ाया भी। खेले और सोये भी; काम भी किया और विश्राम भी।

—✿—

रेल द्वारा एक यात्रा

*"रेल गाड़ियों ने यात्रा को सफलता का
एक मात्र साधन बना दिया है।"*

—हा थार्न

"यात्रा नर्क समान है।"

—अरब

"हजरते खिज्र टिकट मुझ को दिलादे"

—अकबर

"रहनुमाई के लिए है मुझे इंजन काफी"

—अकबर इलाहाबादी

रेल द्वारा एक यात्रा, वह भी तीसरे दर्जे में; और मजा तो यह कि उस युग में जब प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्रता के नशे में चूर, मुझे भी संयोगवश हरदोई से देहरादून तक यात्रा करनी पड़ी। घुटी-घुटी सी संध्या, हवा बन्द, पसीना रुकने का नाम न ले, मई का महीना। ऐसी घुटन की दशा में पूरे डेढ़ घंटे इंतिजार के बाद 'देहरा एक्सप्रेस' का इंजन फुफकारता हुआ, 'एक भयानक चीख के साथ प्लेटफार्म पर आ रुका।

एक भगदड़ मच गई मानों कहीं कोई बलवा हो गया हो, प्रत्येक व्यक्ति, जिधर जिस के सींग समाये, भागने का प्रयत्न करने लगा। गाड़ी के डिब्बे खचाखच भरे पड़े थे। एक हलका सा बक्स, और होल्डाल में बँधा बिछौना, बेचारा कुली अपने सिर पर लादे-लादे प्लेटफार्म के एक कोने से दूसरे कोने तक दौड़ा, और उसके पीछे पीछे हम; पर जिस डिब्बे के सामने वह खड़ा होता, लोग इस बुरी तरह दुतकारते कि शायद भले आदमी शैतान के साथ भी ऐसा न करते हों। बेचारा कुली निराश सा हो गया और मैं भी। जब गार्ड सीटी बजाने के साथ हरी झन्डी दिखाने लगा और गाड़ी खिसकने लगी, तो कुछ हमने और उससे अधिक कुली ने साहस करके हमें एक डिब्बे में ढकेल ही तो दिया और अभी हम संभलने भी न पाये थे कि कुली ने ऊपर विस्तर और बक्स डाल दिया और पैसे लेकर चम्पत हुआ।

भीतर आये तो देखा तीन सीटों पर केवल पाँच आदमी बैठे हैं और चौथी सीट पर गड-मड बहुत सा सामान पड़ा था। लगभग ५० मनुष्य खड़े थे एक सीट पर दो आदमियों के बैठने की कुछ अदा इस प्रकार थी कि एक महाशय पैर फैलाये सिग्रेट का दम लगा रहे हैं और दूसरे सज्जन सीट पर बैठे-बैठे अपने पैर उनके पैरों से मिला रहे हैं और बोले खाने का अभ्यास कर रहे हैं। दूसरी सीट पर एक महाशय जी लेटे हैं और लेटने से जो जगह बच रही है उसपर उनका बक्स, बिछौना, सुराही और एक झबिया रखी है जिससे लोटा, दतून और थोड़ी सी मिट्टी झाँक रही थी यद्यपि इन सब को अँगौछे से छुपाने का प्रयत्न किया गया था। जब कोई उनकी ओर बढ़ता और सामान नीचे रखने की प्रार्थना करता तो अहिंसावादी होने के नाते झगड़ने पर तैयार न होते और बड़े रोब से कहते भाई देखो इसमें सामान है और इसमें खाने-पीने की चीजें हैं और मैंने जो पीठ लगा ली है तो आप समझिये कि मैं तीन चार दिन से बराबर यात्रा कर रहा हूँ बढ़ने वाला जहाँ का तहाँ रुक जाता है। तीसरी सीट पर एक श्रीमती जी अधलेटी सी पड़ी थीं कहने को तो एक थीं पर डील डौल में किसी तरह दो से कम न थीं, और उसके साथ घर की सारी गृहस्थी उसी सीट पर रखी थी इस गृहस्थी में एक मियाँ मिट्ठू पिंजड़े से झाँक रहे थे एक खिड़की से दूसरी खिड़की तक २५,३० स्त्री पुरुष खड़े थे।

खड़े रहने वाले लोगों पर न जाने कैसा रोब छा गया था कि कुछ बोलते तक भी न थे, ऐसा मालूम होता था कि उन्हें खड़े रहने पर ही संतोष है अन्त में अधेड़ अवस्था के एक सरदार जी ने श्रीमती जी के थलथलाते कूलों और फूले-फूले चेहरे को घूरते-घूरते बात चीत शुरू की। बड़ा अच्छा तोता है पहाड़ी मालूम होता है।

हाँ सुग्गा है बड़े मज़े से बोलता है यह कह कर श्रीमती जी उसे पुचकारने लगीं। एक नवयुवक उधर बढ़ने लगा सरदार जी ने सहसा घूर कर कहा "दखते नहीं हो जनाना है खड़े रहो ना" और स्वयं आगे बढ़ कर तोते का पिंजड़ा हाथ में ले लिया श्रीमती जी ने कुछ, सामान उठा कर सीट के नीचे रख दिया कुछ खिसकीं, अब सरदार जी और आगे बढ़े और एक क्षण में सीट पर जम गये।

दूसरी ओर से यह स्वर सुनाई दिये "देखता नाहीं हमरा ज्वर आता है उधि के जावो न।"

"गोड़वा समेट ला ना हम हूँ बैठिं जाइब"

"हमरा तोकलीफ होई, नाँहि सोमेटेगा।"

"समेटना पड़ेगा"

"जदि लेटना माँगता तो इन्टर सेकेन्ड का टिकट कटाया होता"

इतना कहना था कि वह नवयुक शीट पर जम ही गया। बंगाली बाबू ने मनुष्यता का चोला उतार फेंका और धक्का देने का प्रयास किया। आज का नव-जवान, सींकिया पहलवान दुबला-पतला एक ही धक्के से खड़े हुए एक देहाती से जा लगा, और उसकी लाठी ऊपर के वर्थ पर रखे हुए घड़े से टकरायी, मिट्टी का घडा टूट गया। रात्र बह कर बंगाली बाबू, स्वयं नवयुवक और अन्य व्यक्तियों के सिरों पर गिरने लगी। अब क्या था पैर सिमटने लगे, खड़े लोग शीट पर बैठने लगे और इस प्रकार एक ओर कोने में मुझे भी थोड़ी सी जगह मिल गई।

गाड़ी धक-धक करती चली जा रही थी, शाहजहाँपुर का स्टेशन आया। कुछ लोग उतरे, मगर चढ़े उनसे अधिक और एक बार फिर वही तू-तू, मैं-मैं मच गई। इंजन सिटी देता, चलता और रुकता, गाड़ी उडाता चला जाता रहा, बरेली, राम पुर, मुराबाद के स्टेशन आए और छूटे, हर स्टेशन पर वही पुरानी तू-तू, मैं-मैं जगह नहीं, आगे बढ़ो, पैर समेटो, उठ कर बैठो इत्यादि जैसे वाक्य बराबर दुहराये जाते रहे, कभी-कभी खर्राटे भी सुनाई देने लगे, कोई बैटे-बैठे खर्राटे भर रहा है, कोई घुटने टेके कोई खड़े-खड़े ही ऊँघ रहा है और इसी हालत में कभी-कभी एक का सिर दूसरे से टकरा जाता। और कभी-कभी एक दूसरे पर गिर जाते। मैंने देखा श्रीमती जी का सिर कभी सरदार जी की चौड़ी-चकली छाती से टकरा जाता और कभी सिर श्रीमती जी के कंधे से जा लगता, पर आँख खुलने पर दोनों एक दूसरे को देख कर चुप हो जाते। न श्रीमती जी को आशंका होती कि गैर मर्द है न सरदार जी सोचते कि जनाना है उधर ही रहो। सरदार जी बातों-बातों में यह पहले ही मालूम कर चुके थे कि श्रीमती जी को देहरादून जाना है जहाँ तक स्वयं उन्हें भी।

यह वह थर्ड क्लास है जहाँ बाहर से अधिक भीतर ही बड़े मंनोरञ्जक, साथ ही साथ लज्जित करने वाले दृश्य सामने आते हैं। गाँजे और चरस के दम, गाली-गलौज

की बौछारें, मानवताहीन चित्र, नैतिकता के गिरे हुए नमूने, यह सब देखकर न जाने क्यों राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की स्मृति हो आती है। इसलिए कि ये गाड़ियाँ उस भारत में चल रही हैं जिसे वह स्वर्ग बनाना चाहते थे, ऐसा स्वर्ग, जहाँ इन्सान बसते हों, जिनकी छाती में हृदय हो पत्थर न हो, जो दूसरों के कष्ट का अनुमान कर सकें; किन्तु यहाँ तो यह दशा है कि यदि एक व्यक्ति बैठ गया, तो उसे यह कभी स्वीकार नहीं कि दूसरा बैठ जाय। हम यही सब कुछ सोच रहे थे और गाड़ी चली जा रही थी। स्टेशन पर स्टेशन आते और छुटते चले जाते। हरिद्वार का स्टेशन आया। यात्रियों से ज्यादा पन्डे दिखाई दिए, धर्म के ठीकेदार, स्वार्थी, चाँदी के टुकड़ों के गिर्द घूमने वाले यात्रियों के पथ-प्रदर्शक-आपस में एक-एक यात्री पर अनेकों प्रकार की तू-तू मैं-मैं और तकरारें करते थे। यात्री उतरा नहीं कि एक मुसीबत में घिर गया।

सरदार जी ने श्रीमती से कहा अब देहरादून करीब है। वह मुस्कुराईं, कुछ बात-चीत हुई। सरदार जी को उनके सामान की वह चिन्ता थी कि मानो स्वयं उन्हीं को हो। बड़ी व्यवस्था कर रहे थे। दो कुली बुला लेंगे, यों उठवा देगें, आप निश्चिन्त रहें कोई चिन्ता न करें, मैं तो मौजूद हूँ; आखिर स्टेशन आ गया। गाड़ी रुकी, लोग उतरने लगे। श्रीमती थल थलाती हुई उतरीं। सरदार जी के हाथ में पिंजड़ा और गठरी थी। प्लेट फार्म पर एक लम्बा-तड़ंगा; मोटा-ताजा, गवाँर जैसे अनगढ़ लट्ठ खड़ा हो, जिसे देख कर उन्होंने सरदार जी के हाथ से पिंजड़ा छीन लिया और गठरी भी। उस मर्द ने सामान कुली पर लदाया और चल दिया। और उसके पीछे-पीछे श्रीमती जी भी। न बात की न मुस्कुराईं और न पिछे ही मुड़कर देखा, किन्तु हम लोगों ने अनुमान लगाया जैसे उनके दिल की धड़कने कुछ बढ़ गई हों और वह एक बार फिर ऐसी ही यात्रा की खोज में हो।

हमारा कालेज

[यूइँग क्रिश्चियन कालेज, इलाहाबाद]

किसी से यह न पूछो कि वह कालेज में रहा है, वरन् यह देखो कि कालेज ने उसको कहाँ तक प्रभावित किया है"

—चापरिन

जनता की शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध करना, राज्य का प्रथम कर्त्तव्य है।"

—नेपोलियन

कालेजों स्कूलों की बजती है; हरसूँ तोमड़ी
चार दूनी आठ हैं, और फ्वाक्स मानी लोमड़ी
हम ऐसी कुल किताबें क़ाबिले ज़ब्ती समझते हैं,
कि जिनको पढ़के लड़के बाप को ख़ब्ती समझते हैं।

—अकबर इलाहाबादी

हमारा कालेज न केवल भारतवर्ष में वरन् विदेशी प्रदेशों में विशेष ख्याति रखता है, इसकी गणना "विद्या केन्द्रों" की प्रथम श्रेणी में की जाती है।

त्याग और बलिदान की उन धार्मिक भावनाओं द्वारा इस कॉलेज की स्थापना हुई जो ईसाई मिशनरियों का एक विशेष गुण रहा है। ' डाक्टर आर्थर हेनरी यूइंग" ने सन् १९०२ में इस कॉलेज की स्थापना की। प्रारम्भिक प्रयासों के समान इस कालेज की प्रारम्भिक दशा साधारण सी ही रही, अर्थात् विद्यार्थियों की संख्या कम, आध्यापकों की संख्या अधिक ! धीरे-धीरे इस संख्या में भी वृद्धि होती गई। जो थोड़े ही समय में साधारण डिग्री कॉलेजों के स्तर तक आ गई और इस कॉलेज की गणना, पठन-पाठन और नीति-शिक्षा की दृष्टि से विशेष प्रकार के कालेजों में की जाने लगी।

सन् १९१९-२० की शिक्षा योजना के अनुसार यह कॉलेज केवल इन्टरमीडियेट कॉलिज रह गया और सन् १९५१ तक समय-फेर की ऊँच-नीच देखता रहा। और अन्त में फिर डिग्री कॉलेज हो गया, जिसका सम्बन्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय से है यमुना पुल के निकट, यमुना नदी के तट पर इस कॉलेज की शानदार इमारत है। स्थित स्थान इतना आकर्षक है कि प्रत्येक देखने वालों को अपनी ओर आकर्षित कर ही लेता है इसकी शानदार इमारत से अधिक आकर्षक और महत्त्वपूर्ण वह "वृद्ध, विशाल बट-वृक्ष" है जो कालेज के मैदान में किसी महाऋषी के तुल्य अपनी बृहद जटायें फैलाये तपस्या में लीन दिखाई पड़ता है। और जैसे कह रहा हो मैंने बहुत से ऐतिहासिक परिवर्तन देखे हैं और खासकर सन् १८५७ के आन्दोलन में भाग लेने वालों का दण्ड, उनकी तड़पती हुई लाशें और उनका मौन रुदन; और आज ५० वर्ष से देख रहा हूँ उन नवयुवकों के जीवन के परिवर्तन जो अवकाश-क्षणों में हमारी छाया में शरण लेते हैं।

कालेज की इमारत के तीन मुख्य खण्ड हैं:—

(१) कला खण्ड (२) भौतिक खण्ड और (३) रसायन खण्ड। कला खण्ड की इमारत कालेज की विशेष इमारत है जो गाथिक आर्कीटेक्चर का प्रगतिशील नमूना प्रस्तुत करती है, और उसमें लगा हुआ बड़ा सा क्लाक हमें बताता है, कि

"गया वक्त फिर हाथ आता नहीं"; अथवा "समय चूक पुनि का पछ-ताहीं...... ।"

क्लाक के सम्बन्ध में कुछ रोमांचित घटनायें प्रसिद्ध हैं जिनमें सब से अधिक प्रसिद्ध यह बात है कि यदि उसकी सुई पर कौवा बैठ जाय तो नौ के साढ़े नौ बज जाते हैं।

भौतिक और रसायन खण्ड "अँग्रेजी आर्कीटेक्चर" के नमूने हैं। भौतिक-खण्ड परिवार की इकलौती सन्तान के समान अकेला सारी सम्पत्ति का मालिक, स्वतन्त्रता से जहाँ तक चाहे पैर फैलाने का अधिकार रखता है; और रसायन खण्ड को यह गौरव तो प्राप्त नहीं वरन् "जियो और जीने दो" का...रसायन के साथ-साथ जीव-विज्ञान और पशु विज्ञान विभाग साझेदार हैं और कन्धे से कन्धा मिलाकर बड़ी शान्ति और सन्तोष के साथ अपने-अपने कार्यों में व्यस्त रहते हैं। इमारतों की इस शृंखला की पूर्ति पूर्व की ओर सन् १६०३ क्षात्रावास से, और पच्छिम की ओर प्रधानाचार्य्य के बंगले से होती है। १६०३ क्षात्रावास अब ईस्ट-हाल के नाम से प्रसिद्ध है और उत्तर माध्यमिक शिक्षा कार्य्य यहीं होता है। रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिये चपरासियों और फर्रासों के क्वार्टर तैयार हैं। दो और क्षात्रावास पेड़ों की आड़ से छुप-छुपकर आप को देख रहे होंगे।' 'प्रिस्टन' और 'फ्लाडल्फिया।'

कालेज की इमारतों का एक सिलसिला यमुना रोड के दूसरी ओर भी है, जहाँ दो क्षात्रावास और प्राध्यापकों के बँगलेनुमा क्वार्टरों की इमारतें हैं। इनमें न तो कोई ऐसी असाधारण बात है और न विशेष आकर्षण।

कालेज के विशेष गुणों में प्रथम कार्य सह-शिक्षा का आता है। यहाँ बालक और बालिकायें एक साथ पढ़ती हैं, और बराबर से समितियों और सुसाइटियों में भाग लेती हैं।

कालेज की विभिन्न समितियों और उनके कार्यों को भी इसकी विशेषताओं में स्थान देना चाहिये। शायद ही कोई ऐसा विषय हो, जिसकी छत्र-छाया में एक समिति न हो। एक अँग्रेज प्रोफ़ेसर दो वर्ष तक इन सब पर गहरी दृष्टि डालने के पश्चात् एक सुझाव दिया था, कि कुछ समितियों को छोड़ कर इन सब सुसाइटियों का प्रयास केवल उद्घाटनों और वार्षिक-चाय के अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

खेल-कूद का प्रबंध प्रत्येक पाठशाला की एक विशेषता है। सामान्य कालेजों और स्कूलों में खेल-कूद के संचालक अध्यापक को 'गेम-मास्टर' कहते हैं, और पी० टी० कराने वाले अध्यापक को ड्रिल मास्टर; पर हमारे कालेज में इसे "डाइरेक्टर आफ़ फ़िज़िकल एजूकेशन" कहते हैं। इस प्रकार इसमें वह विशेष शान पैदा हो जाती है, जो पाठशालाओं और कालेजों में होनी चाहिये।

फ़ुटबाल, हाकी, बालीबाल, क्रिकेट कहाँ नहीं खेला जाता, पर अमेरिका के राष्ट्रीय-खेल 'बास्केट-बाल' और एक दूसरे खेल 'टेब्ल टेनिस' ने इस योजना में एक शान पैदा कर दी है, जो दूसरे कालेजों में शायद ही हो।

कालेज-असेम्बली इस कालेज की ऐसी विशेषता है, जिससे समझदार और तीव्र-बुद्धि वाले विद्यार्थी बहुत कुछ सीख सकते हैं। विश्व के वास्तुकला, स्थापत्यकला भ्रमणकार, राजनिति में निपुण, विभिन्न भाषाओं के ज्ञाता, साहित्यकार, अथवा अन्य कलाओं के विशेषज्ञ कवि इत्यदि समय-समय पर पधारा करते हैं, और अपने भाषणों द्वारा सामान्य ज्ञान बढ़ाने का अवसर देते हैं। यद्यपि शिथिल बुद्धि रखने वाले विद्यार्थी केवल "आटोग्रॉफ' में फँस कर रह जाते हैं, और बहुतेरे विद्यार्थी तो इसे अवकाश समझ बैठते हैं।

प्रिफ़ेक्ट, मानीटर, कैप्टेन, प्रेसिडेंट इत्यादि अपने-अपने स्थान पर स्वयं एक विषय हैं, जिन पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है।

सैनिक-शिक्षा-विभाग प्रादेशिक ख्याति रखता है और वार्षिक प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान पाता रहता है।

प्राध्यापक केवल बड़ी-बड़ी सनदें ही नहीं रखते और न केवल अध्यापन कार्य ही को अपना कर्त्तव्य समझते हैं वरन् प्रत्येक विभाग की समितियों और अन्य कार्यों में विद्यर्थियों को सुझाव दे कर उन्हें प्रोत्साहन देते रहते हैं तथा साथ-साथ विद्यार्थियों के आचार-व्यवहार को भी दृष्टि में रखते हैं।

संक्षेप में आप यों समझ लिजिए की हमारा कालेज, कालेज के प्रत्येक गुणों से परिपूर्ण तथा सम्पन्न है और इसी कारण इसे वह ख्यति प्राप्त है जो अन्य विद्या-केन्द्रो को नहीं। विशेषता इस बात से और बढ़ गई है कि विद्यार्थी, जीवन को प्रगतिशील बनाने वाली आवश्यक कलाओं से भिज्ञ होने के साथ-साथ राजनीतिक प्रतिभाओं से भी परिचित हो जाता है।

वर्षा का एक मनोरंजक दिन

दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई । पढ़हिं वेद जनु बटु समुदाई ॥

घन घमंड नभ गरजत घोरा । प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥

बुन्द अघात सहैं गिरि कैसे । खल के बचन सन्त सहैं जैसे ॥

—तुलसी दास

ओलाई का पूरा महिना और अगस्त का अधिक भाग यों ही बीत गया। न बादल आये और न वर्षा ही हुई। सभी चिंतित से दिखाई देने लगे, और बेचारे देहाती जिनका जीवन ही वर्षा पर निर्भर है, अत्यंत दुःखी और परेशान से दिखाई देने लगे। रात के सन्नाटे में अबोध बालकों और बालिकाओं के मुख से यह स्वर सुनाई देने लगे :—

सावाँ की रोटी द्वि मुरियाँ
बरसो मोरे राम जिये दुनियाँ

और जिस समय तालियों के साथ यह बोल सुनाई देते, तो ऐसा प्रतीत होता कि अबोध बालिकाओं की सारी श्रद्धा और भक्ति इन्हीं बोलों में उतर आई है,

मेघा भैइया पानी दो,
सेर सवैइया पानी दो।
मेघा भैइया पानी दो॥

जब मेंघा भैया की बज्र की छाती पसीजती न दिखाई दी और अबोध बालक तथा हताश हो गये। तो नवयुवकों और किशोरो ने कमर कसी और मेघा भैया के कठोर बालिकायें हृदय को द्रवित करने के

लिये तपती धरती और चिल-चिलाती धूप में लोटना शुरु किया। बज्र की छाती पसीजी, और शीतल समीर ने काले-काले बादलों द्वारा सन्देश दिया। सचमुच हमें वह दिन बड़ा ही मनोरंजक प्रतीत हुआ आनन्द की लहरें हमारे रोम-रोम में बह चलीं। एक क्षण में पानी बरसने लगा और हमारे आनन्द की सीमा न रही। हम सब लड़के अपने-अपने कमरों से निकल पड़े, और छात्रावास का बरामदा मानो काउन्सिल चेम्बर बन गया, और योजनायें बनने लगीं। अभी कुछ तय न हो पाया था कि हमारे छात्रावास के "नीमू" कहिये या "गोप जी" निकल पड़े और लगे पानी में नहाने। उनका निकलना था कि कुछ और लड़के भी बाहर निकले। हाउस प्रीफेक्ट ऐसे तो बड़े रोब की लेते रहते हैं, पर हम सब ने सुना कि वे भी गुन-गुना रहे थे।

रिम-झिम, रिम-झिम पनिया बरसे,
काहे नैन अब दर्शन को तरसे।

प्रीफेक्ट हो या एन० सी० ओ०, चीफ मिनिस्टर हो या बटालियन सार्जेन्ट, आखिर लड़का ही होता है, हमारे प्रीफेक्ट महाशय भी निकल ही पड़े। हम सब ने हँसी ठट्ठा से उनका स्वागत् किया। यदि कोई दूसरा मौका होता तो शायद पारा चढ़ जाता, पर प्रकृति की इस रिम-झिम ने उन्हें भी मस्त कर दिया। एक कोने से यह बोल सुनाई दिये,

पनियाँ बरसे, बिजुली चमके,
छाई घटा घनघोर।

एक दूसरे महाशय ने उस पर संगीत की परछाइयाँ डालनी चाही और एक साँस में आसावरी, मल्हार, विहाग और न जाने किस-किस राग पर चढ़ाया, झूम-झूम कर खुद ही आनन्द लेने लगे। चाहते तो सभी थे कि फटे बाँस से निकले हुये स्वर बन्द हो जाँय पर कोई क्यों बोलता, इतने में प्रीफेक्ट महाशय ने डाँट बताई और इसके साथ हम सब दूसरे हॉस्टल की ओर आकर्षित हो गये जहाँ कुछ लड़के धरती पर लोट-पाट लगा रहे थे। एक सज्जन तो इतने मस्त दिखाई देते थे कि थिरक-थिरक कर गा रहे थे :—

सामा की रोटी द्वि मुरियाँ
बरसो मोरे राम जिये दुनियाँ

हमारे एक दोस्त को जोश आया तो चीख पड़े
बिजुली चमके बादरवा गरजे

तो सचमुच कड़ा·······ड़ा·······कड़ कड़ कड़ बादल गरजने लगे । हमारे "गोप जी" भागने लगे, कुछ तो डर, कुछ कीचड़, इस पर मोटापा, पैर ठीक न जम सके; फिसल पड़े, अरारा धम् । धरती हिल गई । आप उठना चाहते थे, पर हारे हुए, घायल सिपाही की भाँति, असफल रहे । अन्त में कुछ लड़कों ने जाकर उठाया और बरामदे में पड़ी हुई मेज पर लिटा दिया । आप इस तरह चुपचाप पड़े थे, मानो क्लोरोफार्म का ऐक्शन हो चुका है । इनको होशियार करने के लिये एक महाशय ने डाक्टर का पार्ट किया, और सिर पर एक चपत रसीद की, तो बौखला कर उठ बैठे, और दूसरे लड़कों पर पानी ढकेलने लगे । अब तो सब मेघा भैया की गोद में खेलने लगे ।

लड़कों का खेल शुरू हो गया, और मोटूमल थे बॉल ।

हम सब की चीख-पुकार और हल्ले दंगे ने हमारे हाउस मास्टर जी को बाहर निकल आने पर मजबूर किया; पर इस आनन्दमय दृश्य से आनन्द लेने के लिये 'राम जाने···उन्होंने क्या अद्भुत ढंग निकाला यानि चिल्लाने लगे—

"लड़को ! भीतर जाओ, मत नहाओ सरदी लग जायेगी·········चलो भीतर·····" "चलो" पर झटका दिया, और देखने लगे हम लोगों की ओर । पैर फिसल गया, और वह भी आँगन में आ रहे थे, मानो प्रकृति ने उन्हे भी अपनी गोद में घसीट लिया, कि बालकों का साथ दो । खैर हम सब ने दौड़कर पकड़ लिया । नतीजा यह हुआ कि भूमि पर लोटने से तो बच गये, पर भोग गये बुरी तरह । हम सब के हाथों की कीचड़ भी लग गई । हम सब "बरसै आई कारी बदरिया" कहते भीतर चले गये, कपड़े बदले, न सरदी लगी, न हुआ जुकाम, अलबत्ता मास्टर जी को दूसरे दिन गले में मफलर लपेटे देखा ।

एक फुटबाल मैच

"क्रिकेट और फुटबाल खेलने वालों में कितने ऐसे लोग
हैं, जो मानसिक- बल का प्रदर्शन
कर सकते हों"

—महात्मा गाँधी

गेंद बल्ले से खेलेजाने वाले अथवा इसी प्रकार के
अन्य खेल शारीरिक बल दे सकते हों
तो दे सकते हों, परन्तुचरित्र
और मस्तिष्क पर कोई
लाभ-दायक प्रभाव
नहीं छोड़ते।

—टी० जेफरसन

सिनेमा और मैच हमारे जीवन के एक कलचरल (सांस्कृतिक) अंग बन चुके हैं। प्रत्येक वर्ष न जाने कितने टूर्नामेन्ट होते हैं। इलाहाबाद ही में पन्द्रह-बीस से ऊपर टूर्नामेन्ट हो जाते हैं। हमने जो फुटबाल मैच देखा वह था, "डाक्टर घोष टूर्नामेन्ट" जो अगस्त की तेरह तारीख को माडर्न-हाई-स्कूल ग्राउन्ड पर हुआ था, यह मैच टूर्नामेन्ट का फाइनल मैच था जो जार्जटाउन क्लब और ऐग्रीकल्चरइन्सटीट्यूट नैनी के बीच हुआ।

समय से पहले तमाशाइयों की एक भीड़ लग गई, और ऐसा मालूम होता था कि मार्डन-स्कूल कोई तीर्थ स्थान है, जिसके दर्शनों के लिये झुन्ड के झुन्ड लोग चले आ रहे हैं। बच्चे, जवान, बूढ़े सभी जमा हो रहे थे; पढ़े-लिखे भी, और मूर्ख गँवार भी, हैट और बुशशर्ट पहनने वाले यद्यपि अधिक मात्रा में थे परन्तु तहमद और खटपटी पहनने वाले भी कम न थे। दाढ़ी और पट्टे वाले भी मौजूद थे, बीड़ी और बक्स बनाने वाले कारीगर और दस्तकार भी।

नौजवानों की चुहलों, ठट्ठों, विद्यार्थियों की दिल्लगियों, तमाशाइयों की बहसों, और बच्चों की अबोध चीख पुकार के बीच रेफ्री की सीटी ने सब को चौकन्ना कर दिया। और खिलाड़ियों के मैदान में उतरने के साथ-साथ शोर-गुल दबते-दबते बिल-कुल दब गया। खेल शुरु हुआ टास ने जार्जटाउन क्लब का साथ दिया और पहली किक

क्लब के सेन्टर फारवर्ड ने लगाई और उसे राइट इन ने लेफ्ट आउट को पास किया लेफ्ट आउट ने गेंद को कुछ इस प्रकार दबाया, मानो उसके पैर चुम्बक हों, जहाँ गेंद चिपक गया। इन्सटीट्यूट का एक खिलाड़ी उससे भिड़ा, और कलाबाजी खा गया, अब क्या था उसने ऐसी फ्री किक उड़ाई कि गेंद सेंटर फारवर्ड के पैरों से चिपक गया और उसने वह किक मारी कि गोल होते-होते बच गया। तालियों, चीखों और आवाजों का एक तूफान उठा और गोलकीपर की फ्री किक के साथ दब गया।

इस बार इन्सटीट्यूट के एक फारवर्ड ने गेंद अपनाया और क्लब के खिलाड़ियों को कुँयें झँकाता गोल कीपर की खोपड़ी पर पहुँच गया।

गोल कीपर ने चार्ज किया और गेंद छीन कर एक किक उड़ाई। गेंद फिर इन्सटीट्यूट के खिलाड़ी के हाथ लगा, वह कैरी करता क्लब के बैक को नचाता फिर गोलकीपर की छाती पर जा धमका, और किक उड़ाई, पर गोल कीपर ने लेटकर जिस चतुरता से गोल बचाया उसे दर्शक देख कर भौचक्के रह गये; एक बार फिर तालियों और चीखों का शोर उठा, दर्शकों में बहसें छिड़ गईं। कोई क्लब के "बाबू" की प्रशंसा करता, कोई इन्सटीट्यूट के बड़ी के सिर सेहरा बाँधता, और कोई अफ्रीका के नीग्रो खिलाड़ी की सराहना करता। इसी शोर-गुल और बहसा-बहसी में एक आसमानी किक दिखाई दी और क्षण भर में धरती पर गेंद आ गिरा। क्लब के एक खिलाड़ी ने गेंद टाँगों में दबा लिया, एक किक लगाई और आक्रमण किया; पर कोई उपयोगी बात न हुई। पहले अर्द्ध समय में गेंद केवल ऊँच-नीच के दुराहे पर हिचकोले खाता रहा और बुरी तरह पिटता रहा जिस प्रकार बेचारा किसान, सरकार और जमींदार के पंजों में पिसता चला आ रहा है।

रेफ्री ने हाफटाइम की सिटी दी, तमाशाई पान बीड़ी सिग्रेट पर जुट गये, और खिलाड़ी लेमन की बोतलों पर। कोई लँगड़ाते-लँगड़ाते लेट गया और हाँफ-हाँफ कर अपने साथियों को हिदायत करने लगा; कोई टाँगे मलवाने लगा और किसी ने सिग्रेट का कश खींचा। सीटी हुई, खिलाड़ी अपनी-अपनी जगहों पर जम गये और तमाशाई फील्ड छोड़-छोड़ कर अपने लिये जगह बनाने लगे।

खेल दुबारा शुरू हुआ। दर्शकों की "बकअप" "बकअप" अधिक तीव्र हो गई

पर खिलाड़ी मद्धिम पड़ गये क्लब के बैक ने एक हवाई किक लगाई; राइट आउट ने गेंद रोक कर अपने सेन्टर फारवर्ड को पास दिया, उसने गेंद रोक कर अपने बाँयें को पास कर दिया। गेंद छिन गयी पर सेन्टर फारवर्ड ने फिर गेंद ले लिया और दिखा दिया "जिसकी लाठी उसकी भैंस" ऐसी चतुरता से किक लगाई कि इस बार गोल कीपर के बनाये कुछ न बन पड़ी और एग्रीकलचर इन्सटीट्यूट पर गोल हो गया।

बाकी समय में खेल होता रहा इन्सटीट्यूट एक हारी हुई सेना की भाँति कभी जोश में हल्ला करता कभी आक्रमण करता पर असफलता ही हाथ आती। तमाशाइयों की चेमीगोइयाँ बढ़तीं जा रहीं थीं कोई क्लब के खिलाड़ियों की प्रसंशा करता, कोई उसे समझता, कोई रेफ्री को गालियाँ देता, कोई उस बेचारे को अंधा बनाता। मामूली-मामूली किकों पर तालियाँ बजतीं और शोर होता। इसी शोर और कठहुज्जती के बीच रेफ्री ने एक लम्बी सीटी बजाई; खेल का समय समाप्त हो गया। "हिप-हिप-हुर्रा" और "थ्री चियर्ज़" के स्वर आकाश से टकरा कर फिर धरती पर आ जाते। इन्सटीट्यूट ने जार्ज टाउन के लिये "थ्री चियर्ज़" बोल कर अपनी जवाँमर्दी, निरपक्षता, और खिलाड़ीपन का सबूत दिया। हम सब चेमीगोइयाँ बहसें, आलोचनायें कटाक्ष और व्यंग करते अपने-अपने घर लौटे।

एक कवि-सम्मेलन

किसी भाषा के प्रचार तथा उसे लोक प्रिय बनाने में उसके कवि सम्मेलनों का प्रधान हाथ होता है।

कविसम्मेलन और गोष्ठियाँ हमारी संस्कृति का एक अटूट अंग बन चुके हैं; जिनसे हमारी साहित्यिक प्रवृत्तियों के स्तर की ऊँचाई और निचाई का अनुमान लगाया जाता है, और इसीलिए जनता कवि-सम्मेलनों के अतिरिक्त विद्यालयों में भी कम से कम साल में एक बार कवि-सम्मेलन अवश्य होता है। मैं जिस कवि-सम्मेलन का वर्णन करता हूँ वह पिछले वर्ष दिसम्बर मास में एक स्थानीय हाई स्कूल में हुआ।

कवि-सम्मेलनों के साधारण निमन्त्रण पत्रों की भाँति यहाँ के निमन्त्रण पत्र में भी सम्मेलन का समय साढ़े सात बजे रात लिखा था और यह सूचित किया गया था कि सम्मेलन का कार्य क्रम निश्चित समय पर प्रारम्भ हो जायगा। किन्तु साढ़े आठ बजे पहुँच कर देखा कि वहाँ अभी सवेरा ही है। फर्श जरूर बिछ चुका था पर न वहाँ कोई कवि था और न सुनने वाला। मेरे विचार से ऐसे विलम्ब की कोई शिकायत होना भी न चाहिए जब कि बड़े-बड़े जनता-कवि-सम्मेलन में समय की पाबन्दी नहीं की जाती; और फिर इन्हीं कवि-सम्मेलनों को ही क्यों कहिये हम अपने दैनिक-जीवन में कब और कहाँ समय के पाबन्द दिखाई देते हैं।

विद्यार्थी बड़ी संख्या में हाल में आ चुके थे, पर सब के सब खड़े थे, मानों सब ने "ठड्डा" ले रखा था, कि बैठ जाने पर "छू" जाने और "चोर" बन जाने का भय था और एक कौआ गुहार मची थी।

साढ़े नौ बजे इसी दशा में चन्द व्यक्तियों की एक टोली आई देखने से अच्छे खासे भले मानुस प्रतीत होते थे, साफ़ सुथरे कपड़े, पैंट की कमीज बाहर निकली हुई और अधिकांश लोगों के वाएँ हाथ में बीड़ी का बन्डल और माचिस और दाहिने हाथ में सुलगता हुआ या बुझा हुआ बोड़ी का टुकड़ा। पहले तो विद्यार्थी समझे कि कवि-गण आ गये और इस विचार से आगे बढ़े पर इन सब को देख कर एक बार कहकहा लगाया और सब के सब फिर इकट्ठा हो गये और खिचड़ी पकने लगी। वे लोग विद्या-र्थियों की हँसी दिल्लगी पर ध्यान न देते हुए कवियों की गले गाजी सुनने के शौक में सब से आगे जम गये और बीड़ियों का धुआँ उड़ाने लगे।

कवि सम्मेलन में विलम्ब क्यों हो रहा था उस का अनुमान आप इस बार्तालाप से कर सकते हैं।

"अबे चला जा तेरी साइकल अच्छी है।"

"वाह बेटा ! सबेरे से दौड़ते-दौड़ते पलस्तर ढीला हो गया।"

और उन्होंने अपने एक साथी की ओर देख कर कहा, "वाह बेटा छुपे कहाँ जा रहे हो। चले जाव।"

और जब उसने सुनी अनसुनी कर दी तो उसने अपने एक साथी को सम्बोधित करते हुए कहा।

"देख बेटा ऐसी बात करेगा तो रसीद कर दूँगा एक हाथ ! यह निमन्त्रण पत्र किसने बाटे हैं। सारे दिन किसने चक्कर लगाये हैं।"

अरे बेटा ! जानता हूँ, "हिसाब के घन्टे से भागना चाहते थे ! और इसीलिए इस बहाने से भाग जाते थे।"

इस पर उम्मीद थी कि चपत बाजी की नौवत आ जाती। वह तो कहिये कि खैरियत हुई कि वेचारे पण्डित जी आ गये। और बड़ी उदारतापूर्वक पूछा, "अरे भाई सब काम ठीक हो गया।"

'कवि-सम्मेलन' के सचिव आगे बढ़ कर कुछ समझाना चाहते थे कि सब साथ मिल कर बोल उठे, "जी हाँ सब ठीक है। चाय तैयार है, मिठाई और नमकीन के दोने लग गये हैं, सिगरेट के डिब्बे, बीड़ियों के बन्डल खुल चुके हैं, पान आ गया है।"

"अरे भाई कोई सभापति महोदय के यहाँ भी गया नहीं ? वे वकील हैं उन्हें न याद रहा तो······।"

इस पर सब चुप हो गये और वेचारे पंडित जी चल दिये । पंडित जी का यह प्रश्न ही व्यर्थ था, इसीलिये कि, विद्यार्थियों के विचार से कवि सम्मेलन का जो ध्येय था, वह पूरा हो चुका अर्थात् मिठाई और नमकीन उड़ चुका था चाय पी जा चुकी और सिगरेट के डिब्बे खुल चुके थे ।

पंडित जी के चले जाने पर फिर वही काँव-काँव । और इसी बीच कुछ कवि पधारे; कुछ वाह-वाह करने वाले दिखाई दिये और कुछ अति सुन्दर कहने वाले । इस प्रकार विद्यार्थियों के अतिरिक्त हाल में कुछ मूर्तियाँ और भी दिखायी देने लगीं । बुड्ढे और गम्भीर कम नौजवान और चुहलबाज ज्यादा । इतने में ११ का घन्टा बजा । इस कौआ गुहार से बचने के लिए एक महाशय ने एक फिल्मी रिकार्ड लगा दिया और यह स्वर वायु मन्डल में गूँजने लगा :—

"जाने कहाँ मेरा जिगर गया जी, अभी अभी यहीं था किधर गया जी"

और जब यह बोल कानो से टकराये······

"कहीं मारे डर के चूहा तो नहीं बन गया"

तो लोगों ने बेतहाशा कहकहे लगाये इसका परिणाम यह अवश्य हुआ कि हाल जो जमुहाई घर बन रहा था और वे लोग जो भाँड़ की तरह मुँह फैला रहे थे इससे बच गये; और इसी भाँति रिकार्डिंग होती रही, इसी बीच पंडित जी आ पहुँचे उन्होंने कहा अच्छा हटाओ यह सब बखेड़ा सभापति महोदय आ रहे हैं लगभग साढ़े

ग्यारह बजे सभापति महोदय विराजमान हुए। विद्यार्थियों ने तालियों से स्वागत किया और श्रद्धापूर्वक फूल माला पहनाया। कवि गण चौकन्ने हुए। पंडित जी जो, कवि-सम्मेलन के सभापति थे, कवि सम्मेलन का होने के प्रयास पर प्रकाश डाला विद्यार्थियों के सहयोग की प्रशंसा की, जिसका अन्त विद्यार्थियों की तालियों पर हुआ।

कवि-सम्मेलन विद्यार्थियों की कविताओं से आरम्भ हुआ, कविताएँ दूसरों की और गला उनका। रिहर्सल न होने के कारण उच्चारण की अशुद्धियाँ हुईं और कविता पाठ में झटके लगे, फिर भी प्रशंसा में "वाह वाह" अति सुन्दर के नारे लगते रहे और कवि सम्मेलन का पहला सीन ड्राप हुआ।

कवि-सम्मेलन का दूसरा दृश्य कवियों की कविताओं से खुला यहाँ भी नवयुवक और नौसिखिया कवियों की संख्या अधिक थी। श्री महेश्वरी और निराला जैसे महा-कवि कोई न थे।

कविताओं में न तो कोई जोश था और न कल्पना और न कल्पना में कोई आक-र्षण। कविताएँ शब्दों के केवल उलट फेर तक सीमित थीं।

कवि लोग दो बजे तक अपनी कविताएँ सुनाते रहे, बीच-बीच पान खाते रहे और तीन बजते बजाते कवियों की संख्या अधिक और सुनने वालों की संख्या कम रह गयी। कोई चार बजे स्वयं सभापति महोदय ने अपनी एक कविता सुनाई जिसके सुनने वाले केवल थोड़े से कवि और पंडित जी थे। और जब कवि-सम्मेलन समाप्त होने पर पंडित जी सुनने वाले सज्जनों और कवियों को धन्यवाद देने के लिए उठे तो लगभग सारा हाल खाली था केवल चार छः कवि और सभापति जी ही उनके धन्यवाद के आभारी बन सके।

इस रतजगे का प्रभाव मुझ पर यह पड़ा कि मैं अपने आप को बीमार सा महसूस करने लगा और कोई दस बजे जब मैं एक डाक्टर के यहाँ पहुँचा तो पंडित जी अपने

लिए ज्वर की दवा ले चुके थे। पंडित जी ने प्रणाम का उत्तर देने के पश्चात् पहला वाक्य अपने मुख से यही निकाला। "इस वर्ष का कवि सम्मेलन बड़ा सफल रहा, चार बजते-बजते समाप्त हुआ और मैं कोई साढ़े चार बजे घर पहुँचा।"



एक त्यौहार

[कृष्ण जन्माष्टमी]

"त्योहारों के अवसर पर शरीर पोषण के लिए स्वादिष्ट भोजन करना और आत्मा की ओर ध्यान न देना इससे बढ़कर कोई मूर्खता नहीं"

—एडिशन

"भोजन जीवित रहने के लिए है, जीवित रहना भोजन के लिए नहीं"

—शेख सादी

अवतरित शक्तियों में जो उच्चतम स्थान जगत नियन्ता श्री कृष्ण जी को प्राप्त है, उस पर अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं। जन्माष्टमी उन्हीं का जन्म दिन है, और यह त्यौहार "जन्माष्टमी" के नाम से हिन्दू जगत में विख्यात है।

इस त्योहार के नैपथ्य की अन्तर्गत कथा इस प्रकार है :—

मथुरा के शासक कंस को अपनी शान पर बड़ा अभिमान हो गया, यहाँ तक कि एक दिन उसने इस बात का नगर भर ढिंढोरा पिटवा दिया ईश्वर कोई चीज नहीं जो कुछ हूँ मैं हूँ मेरी पूजा होनी चाहिये :—

संध्या समय दरबार लगने पर एक ज्योतिषी ने आकर कंस से कहा कि राजन्! इस वर्ष एक ऐसा बालक जन्म लेगा, जिसके हाथो राजन् की मृत्यु होने का भय है। इतना सुनना था कि कंस आग बगूला हो गया और यह निश्चय कर लिया उस वर्ष कोई नवजात बच्चा बचने न पायेगा। उसी समय कंस की बहन देवकी जी, गर्भवती थीं। कंस ने देवकी और उनके पति बसुदेव दोनों को कारागार में डाल दिया।

दैवी चमत्कार देखिये, जिस क्षण श्री कृष्ण जी का जन्म हुआ, उसी क्षण कारागार की संगीन दरवाज़ों के ताले आप से आप खुल गये और बसुदेव ने अपने नवजात

बालक को ब्रज के एक निवासी नन्द के यहाँ पहुँचा दिया मित्रता का सुन्दर नमूना. देखिये कि नन्द अपनी नवजात पुत्री बसुदेव को दे देता है और वह उसे कृष्ण के स्थान पर रख देते हैं।

बालक का जन्म सुनते ही कंस डरता, काँपता तेजी से बहिन के पास पहुँचता है और झपट कर बच्चे को बहिन की गोद से छीन कर अपनी बलिष्ट भुजाओं में लेकर धरती पर पटक देना चाहता है, कि नवजात पुत्री मुस्कराती हुई आकाश पर पहुँच जाती है, और कंस को एक गुप्त सन्देश से धमकी देती है, "अभिमानी, निरकुंश कंश। तेरा शत्रु, पैदा हो कर जहाँ जाना था चला गया और मीठी नींद के मजे ले रहा है लेकिन उसका तुझे क्या पंता······"

कंस सिर पीट कर रह जाता है और उसका परिणाम् वही होता है, जो आज से हजारों वर्ष ऐसे निरकुंश शासकों का हुआ; मिश्र प्रदेश में जो फिरऔर का, सिरिया में जो हामान का। श्री कृष्ण ने अवतारी के रूप में भारत वासियों के लिए श्री मद्-भागवत जैसी स्वर्ण पुस्तक छोड़ी।

सावन का महीना बीतते-बीतते प्रत्येक हिन्दू के मन में जन्माष्टमी की भाव-नायें हिलोरें लेने लगती हैं। छोटे-छोटे बालक मक्का और बाजरे के खेतों की रख-वाली करते-करते खीरे के लहलहाते खेतों की ओर ललचाई निगाहों से देखते हैं···, पर धर्मात्मा पिता के नेक बच्चे होने के कारण कृष्ण जन्माष्टमी के पहले उसे हाथ लगाना उचित नहीं समझते। अहीर और गड़रिये सावन की मूसलाधार वर्षा में मल्हार और चुहकरे गा-गा कर आनन्द ले रहे हैं; घरों में दही की कमी नहीं, फिर भी "सावन दूध न भादौं दही" पर विश्वास रखने के नाते दही की ओर निगाह नहीं उठाते।

भादो की अमावश्या ने धर्म उपाशकों को "कृष्ण जन्म" की ओर आकर्षित कर दिया। नाटक मण्डलियाँ तैयारी करने लगीं। प्रसादो, पञ्चामृत, दही और माखन का रस जिस प्रेम से उस दिन तैयार किया जाता है, वैसा किसी दूसरे अवसर पर

नहीं बनाया जाता, जो स्वाद और पवित्रता इन चीजों में उस दिन जान पड़ती है, वैसा दूसरे दिनों में नहीं होता।

नाटक मण्डलियाँ नाटक अभिनय करती हैं; भजन होते हैं, और पुजारिन मीरा का जीता जागता चित्र एक बार फिर सामने आ जाता है।

सारी रात पूजा, भजन, गान, और श्रद्धा में बिता दी जाती है। जब कीर्तन की झनकार से छितिज गूँज उठता है, उस समय प्रभात के धुँधले प्रकाश में कृष्ण का जन्म होता है और कृष्ण जन्माष्टमी का उत्सव मनाया जाता है।



ग्रामीण-जीवन की एक झाँकी

राजा, राज्य, एवं देश यदि बिगड़ जायें, तो कोई चिन्ता नहीं, इसलिये कि वे फिर बन सकते हैं, परतु, यदि ग्राम और किसान बिगड़ जायें, तो वे फिर नहीं बनाये जा सकते और यही सबसे बड़ी चिन्ता की बात है।

—वर्ड्स्वर्थ

हमारे देश के देहाती क्या, और क्या उनका जीवन ! गजरदम सवेरे से रात गये तक देहाती कोल्हू के बैल की भाँति काम-काज में लगा रहता है । चाँदनी कुछ मद्धिम अवश्य पड़ गई है, पर तारे अभी भली-भाँति छिटके पड़े हैं, और देहाती-किसान अपना हल बैल लेकर खेत की मेड़ों पर तान लगाता चला जा रहा है ।

साँझे बोलै चिरई सकारे बोलै मोरवा,
कोरवा छाँड़ि दे बालमा जागैं नगरी के लोगवा । कोरवा छाड़ि दे बालमा।।

इधर मर्द हल बैल लेकर घर से निकले, उधर घरवाली ने अनाज की टोकरी उठाई और चक्की पर बैठ गई । थकावट दूर करने के लिये कभी-कभी अपनी भावनाओं को इस भाँति जागृत करती हैं :—

सब की नगरिया मोहन बँसिया बजायो ।
हमरी नगरिया काहे न आयो मोरे राम...

दूसरे घर से चक्की की घड़घड़ाहट के साथ ये बोल सुनाई देते हैं ।

सुधि आइ गई सँवरे सिपहिया की···।

बच्चे सो रहे हैं और माँ की ममता उनकी बलायें ले रही हैं :

वहाँ पाइनियर और लीडर की सदाओं की जगह चक्की की घड़घड़ाहट है; अन्डे और माखन बेचने वालों के तीखी आवाजों की जगह गरीब देहातियों के दिलों की गहराइयों से निकले हुये वे बोल सुनाई देगें, जिनको सुनने वाला तक कोई नहीं प्रसंशा की कौन कहे वहाँ न तो पुजारी के शंख की आवाज़ है, और न शिवाले का घन्टे की और न मुअज्जिन की अल्लाहो अकबर के नारे; वहाँ तो धर्म की बेड़ियों में

जकड़े हुये बूढ़े और बूढ़ियाँ ईश्वर का नाम जपते हुये दिखाई देंगे। किसी घर से "राम राम", और किसी की जीभ पर "सीताराम" की रट है, किसी घर से "इल्लिल्लाह", और कहीं से मुहम्मद या रसूलिल्ला के बोल सुनाई देते हैं।

सूर्य-देव अभी कालिमा की ही गोद में छिपे हैं, परन्तु देहातों की गरीब, पर भोली-भाली बहू बेटियाँ गृहस्ती के काम-काज निपटा चुकती हैं। कुँओं से पानी लाना, गोबर पाथना, बरतन माजना, झाड़ू बहारू करना देहाती स्त्रियों के दैनिक जीवन के अनिवार्य कार्य हैं। इतना करने पर भी शहरी महिलाओं की भाँति न तो उन्हें चाय की चिन्ता है, और न जल-पान की फिक्र। पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर काम करने वाली देहाती औरतें सवेरे से शाम तक काम में जुटी रहती हैं।

बेचारा किसान अन्न पैदा करने की चिन्ता में कभी खेतों की परिक्रमा करता दिखाई देता है, और कभी सिर पर बोझ लिये धैर्य और संतोष की मूर्ति बना खड़ा है। सारा परिवार छोटे से लेकर बड़ा तक इसी भाँति किसी न किसी प्रकार के काम में लगा रहता है।

पेट की ज्वाला में जलते हुये किसानों, और चिन्ताओं के भार से दबे हुये देहातियों को इतना अवकाश कहाँ कि वे चैन की साँस ले सकें, फिर भला उनके कार्य-क्रम में मनोरञ्जन और गपबाजी के लिये समय कहाँ।

देहाती-जीवन और ऋतुओं के जीवित चित्र यदि आप देखना चाहें, तो मुन्शी प्रेम चन्द की कहानियाँ पढ़िये, और यदि इससे अधिक चलित चित्र देखना है, तो स्वयं उन्हीं द्वारा रचित ग्राम गीतों का अध्ययन कीजिये।

इस से यह न समझ लेना चाहिये कि ग्रामीण जीवन में कोई आकर्षण नहीं। यही तो वह स्थान है, जहाँ प्रकृति अपना खज़ाना खोल देती है, जिसके लिये नागरिक दौड़ पड़ते हैं। शरद ऋतु में गाँव, खेतों की हरियाली से उपवन सा बना है, सरसों के पीले-पीले फूल काश्मीर की केसर-क्यारियों का चित्र दिखा रहे हैं, अलसी और मटर ऐसी खिली हुई हैं कि एक नागरिक के मन से उसके चमन की याद भुला सकती है, हरे-हरे तोते, और हारिलों के झुन्ड क्षितिज में चक्कर लगा रहे हैं; खेतों में कौओं की काँवो-काँवो के साथ-साथ ढोल और पीपे की प्रतिध्वनि, खेतों की रखवारी करने वाले

बच्चों की अनोखी-अनोखी आवाजें, बगलों की कतारें, सारसों के बैठे हुये जोड़े कितने मनहर हैं ।

ग्रामीण कुँवारी कन्या कमर पर घड़ा रखे इठलाती हुई चली आ रही है । कोई खेत की मेड़ों पर बैठी बथुए का साग तोड़ रही है । कोई अपनी झोली में चने और मटर कि फलियाँ लिये खड़ी है । यह है ग्रामीणों का मनोहर और पवित्र जीवन जिस पर नागरिक जीवन निछावर होने को तय्यार है; परन्तु इस मनोहर वातावरण में ग्रामीण के लिए कोई सुख नहीं; जब उन्हें कड़ाके के जाड़ों की रातें पत्ते सुलगा-सुलगा कर और अलाव के सामने बैठ कर काटनी पड़ती हैं और तन ढाँकने को एक कपड़ा भी नहीं ।

ग्रीष्म ऋतु और वर्षा का एक चित्र देखिये, जेठ का पूरा महीना यों ही निकल गया आकाश की ओर देखते-देखते देहातियों का आँखें थक गईं, बूढ़े और बुढ़ियों को प्रार्थना करते-करते जीभ घिस गई, "मेघा भैया पानी दो" रटते-रटते बच्चे थक गये ; वर्षा न होनी थी न हुई ।

गरम-गरम हवा के बगूले ऊख की कोमल कोपलों को झुलसाये देते थे, लाल तलैयाँ सूख गईं । नहर के पानी से सिंचाई करने के लिये चाहिये धन, पर इन गरीब के पास धन कहाँ कि वे नहर के पानी के दाम अदा करें और कारिंदों की पूजा भी ।

इधर कालरा और हैजा दैवी क्रोध बन कर आ पड़ा; गाँव के लोग उसकी भेंट चढ़ने लगे, जिनके लिये न कोई दवा थी और न दारू, न कोई डाक्टर था और न वैद्य राम राम करके वर्षा हुई, देहाती लोग मग्न हो गये, हल बैल लेकर सीधे खेतों पर पहुँचे जमींदार की चौपाल बीज-बिसारे की माँग से गूँजने लगी इतनी वर्षा हुई कि गाँव की यह हालत हो गई कि यदि कहीं कोई शहरी मखमली जूती पहने निकल जाये तो बस —

"जूता है गली में आप घर में" वाली कहावत हो जाये । जिधर नकल जाओ सड़े हुये कूड़े करकट, गोबर और दूसरी सड़ी-गली चीजों की दुर्गन्ध आ रही होगी, पर देहातियों को इसकी परवाह कहाँ ।

यह है धुँधला सा चित्र ग्रामीण ऋतुओं के सुन्दर वातावरण का । यही वह सौंदर्य है, जो लोगों को देहात की ओर खींच लाता है ।

—*—

दशहरे का दल

"जीवित राष्ट्र अपने पुर्वजों की स्मृति बनाये रखते हैं"

अकबर इलाहाबादी ने सन् १६११ का दिल्ली दरबार देखा और एक दृश्य देख कर उनके मुख से अकस्मात निकल गया :—

हाथी देखे भारी भरकम
उनका चलना थम थम थम थम ।

हम भी उन हाथियों को देखने के लिए दशहरे के उस दल में गए जिन पर बैठ कर राम और सीता का रूप भरे शहर का दौरा कर रहे थे । और जिनके दर्शनों के लिए सहस्त्रों व्यक्ति आये थे । बूढ़े, जवान और बच्चे, सबसे अधिक स्त्रियाँ । धर्मोपासक से अधिक तमाशाई शहर की सड़कें और गलियाँ ऐसे तमाशियों से भरी थीं और विशेषता: अतरसुईया गली । सड़कों और गलियों के अतिरिक्त मकानों की छतें, बाजें, छज्जे, दीवारों की मुँडेरें और वृक्ष भी ऐसे तमाशायियों के लिए आश्रय बन गए थे ।

राम और सीता का नाम आते ही अचानक हम उस युग में पहुँच जाते हैं, जब एक प्रजापालक पिता की आज्ञा पर मर्यादा पुरुषोत्तम राम पितृ-भक्ति को स्थायी रखने के हेतु चौदह वर्ष का कठोर बनवास स्वीकार कर बन प्रवासी हो जाते हैं। इस प्रकार यह घटना राज-हठ और त्रिया-हठ का एक जीता जागता उदाहरण बन जाती है। यह दल उसी पवित्र पुत्र की शानदर स्मृति शेष रखने के लिये प्रत्येक वर्ष भारतवर्ष के सभी नगरों, कस्बों और बड़े-बड़े ग्रामों में निकला जाता है ।

तमाशाइयों के साफ-सुथरे कपड़े, हलवाइयों की सजी हुई दुकानें, खोन्चे वालों के मधुर स्वरों, रंगा-रंग खिलौनों के प्रदर्शन, फुटकर बेचने वालों की धूम-धाम, पान बीड़ी वालों की बिक्री देखकर, हमें इस दल पर मेले का धोखा होने लगता है; ऐसा मेला जिस पर धर्म ने पवित्रता की छाप लगा दी हो।

दल की चौकियों और गाड़ियों में रूप भरे नवयुवक, बालक और बालिकायें हमें एक बार वैदिक, महाभारत और पौराणिक युगों में पहुँचा देते हैं। जहाँ श्री कृष्ण जी थे और राधा, जहाँ शिवजी थे और पार्वती जी, जहाँ हरिश्चन्द्र थे और शैब्या तथा विश्वमित्र और मेनका, जहाँ वोर अभिमन्यु थे और उत्तरा।

इन चौकियों पर आप कहीं कृष्ण जी की माखन चोरी देखेगें, और कहीं राधा कृष्ण की प्रेम भरी लीला, कहीं द्रौपदी का चीरहरण आपके सामने आयेगा और कहीं शिवजी हिमगिरी के एक खोह में समाधि लगाये बैठे होगें, किसी गाड़ी की चौकी पर रौद्र-रूप का प्रदर्शन हो रहा है, और किसी पर वीर अभिमन्यु की धनुर्विद्या का प्रदर्शन। किसी चौकी पर राजा हरिश्चन्द्र डोम बने खड़े हैं और रानी शैब्या भिखा-रिन के रूप में बच्चे की शव गोद में लिए खड़ी हैं। और जनता इनकी सत्यता और कर्त्तव्य पालन की प्रसंशा कर रही है।

इन चौकियों का प्रतिरूप उन सामाजिक प्रतिमाओं का प्रदर्शन करता है जो कभी आन्दोलन बनकर हमारे सामने आती हैं। और कभी सुधार और संशोधन का रूप धारण करती हैं, हाउस-टैक्स हो या चुँगी की समस्यायें, रेल के किराये में दिनों दिन बढ़ौती का प्रश्न हो या चोर बाजारी; बाल विवाह हो या निरक्षरता, शराब, खोरी हो या ताड़ी बाजी हो जुए का फड़ अथवा अन्य समस्या ऐसे दृश्यों को हम न केवल मनोरञ्जक ही कह सकते हैं बल्कि ये सुधारक भी हैं।

पुतली बनाने की कला प्राचीन भारत में कितने ऊँचे स्तर पर रही है और इस समय भी है। उसका प्रदर्शन उन मनहर पुतलियों और सुन्दर मूर्तियों को देख कर होता है, जो इस दल की सजावट बनती हैं। और जिनमें केवल जान डालना भर शेष रह जाता है।

जादूगरी, नजरबन्दी और लाग के आश्चर्यजनक नमूने इन चौकियों पर दिखाई देते है। जैसे चौकियों के पायों के नीचे फड़फड़ाते जीवित कबूतर और उन पर

भारी भरकम मनुष्य बैठे हैं। बतखों के कोमल शरीर में और लोहे की सींके तथा सूजे भुँके हैं किन्तु फड़फड़ा-फड़फड़ा कर अपने जीवित होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। ऐसे ही नाना प्रकार की कलात्मकता देखते-देखते जनता चकित रह जाती है और वाह-वाह कहते-कहते मुख से निकल ही जाता है "क्या लाग है" और कैसी नज़रबन्दी। किसी ओर से यह स्वर भी सुनाई दे जाते हैं, तुम क्या जानों जादू का खेल है, जादू है भाई ! जादू।

दर्शकों की भक्ति का अनुमान तो उस समय होता है जब वे तुलसी की छोटी-छोटी टहनियों और कुसुम के फूलों की गुच्छियाँ हाथी पर सवार राम और सीता पर फेंकते हैं। और हाथीवान पंखे की आड़ करके राम और सीता को बचाता रहता है और वे गुच्छियाँ पंखे से टकरा कर पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं, जिन्हें भक्त-गण उठाकर रख लेते हैं और पवित्र समझ कर घर ले जाते हैं।

सूर्यास्त के पश्चात् तारों की छाँव में यह दल और दर्शक अपने-अपने घर लौटते हैं। दर्शकों की आलोचनाओं, बच्चों की पुकार, नवजवानों की चुहलों और शोर-गुल से सारा वायु-मण्डल गूँज उठता है। और हम श्री रामचन्द्र जी की उदारता, सहन-शीलता पितृ-भक्ति अथवा सीता जी का पातिव्रत और लक्ष्मण जी का भ्रातृ-प्रेम, सहानुभूति, तथा भरत जी की कर्त्तव्य परापणता, शिव जी का रौद्र रूप अभिमन्यु की वीरता, हरिश्चन्द्र की सत्यता और श्रवण कुमार की मातृ-पितृ भक्ति उदाहरण देखने के पश्चात् इन्हें केवल एक कथा और ढकोसला समझ कर जैसे थे वैसे ही वापस आते हैं। इन कथाओं से शिक्षा ग्रहण करने वालों तथा प्रभावित होने वालों की संख्या नाम मात्र की ही हो सकती है।

—❀—

हमारे खेल-कूद

खेल-कूद से व्यायाम तो अवश्य हो जाता है, परन्तु मानसिक शक्ति और आत्म बल पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता

—महात्मा गाँधी

बाजी लगा कर स्वार्थ के लिए न खेलो, वरन् केवल मनोरंजन के लिए

—हरबर्ट

खेल-कूद में जो समय व्यतीत होता है, उसे व्यर्थ समझना चाहिए।

—गाँधी

काम-काज और श्रम के पश्चात् विश्राम करना और मनोरञ्जन में कुछ समय बिताना केवल मानव प्रकृति ही नहीं; वरन् जीवन के लिए अति आवश्यक है। यह एक ऐसी प्रवृति है, जो सभ्य और असभ्य दोनों प्रकार के मनुष्यों में पाई जाती है। नागरिक और ग्रामीण दोनों "खेल-कूद" और आमोद प्रमोद में चाव रखते हैं और हमारे यहाँ दोनों भाँति के खेल-कूद पाये जाते हैं।

घुड़सवारी, धनुर्विद्या, तलवार चलाना, नेजा, वल्लम, गदा भाँजना इत्यादि सामन्तवाद और राजतन्त्र की एसी स्मृतियाँ है, जिनके धुँधले चिह्न आज भी, राम-लीला के अवसर पर दिखाई देते हैं, और ऐसे ही कुछ अवसरों पर पटे बाजी बाना बिनौट इत्यादि के नमूने प्रदर्शित किये जाते हैं।

चौगान (पोलों), मुग़ल राज्य की उन्नति और अवनति के साथ-साथ इसकी गति में भी वृद्धता तथा शिथिलता आती गयी। मुगल सम्राट अकबर ने इसमें विशेष चाल दिखा कर इसके लिए चकमक पत्थर का गेंद बनवाया जिसकी चमक के कारण यह खेल रात को भी खेला जा सकता था।

ब्रिटिश साम्राज्य काल में यह खेल सैनिक अफसरों और तालुकेदारी के साथ मुख्य हो गया कहीं-कहीं यह खेल अब भी खेला जाता है।

वटेरों की लड़ाई, मुर्गों के मुकाबले, मेढों की मुटभेड़ नवाबी राज्य काल की स्मृतियाँ है। लखनऊ इन चीजों का केन्द्र रहा है। और यही कारण है कि उर्दू कवियों और कथाकारों की कीर्तियों के पन्नों पर इसके चित्र मिलते हैं। मीरतकी

'मीर' जब दिल्ली से लखनऊ आये और उन्होंने मुर्गों की लड़ाई देखी तो बेचारे से न रुका गया और इस पर एक कविता लिख डाली दो शेर आप भी पढ़िये—

बाजी बद बद के जब लड़ाते हैं,
काँटे लोहे के बाँध लाते हैं।
जुर्म, मंगल को पाली है धूम,
गलियों में रोज१ हश्र का है हुजूम२ ॥

बटेरों की लड़ाई के चित्र देखना हो तो पंडित रतन नाथ "सरशार" की विख्यात कीर्ति फसानये-आजाद के पन्ने उलटिये, जहाँ आप को बटेरों के सैकड़ों ऐसे नाम मिलेंगे जिन्हे आप मनुष्य समझ बैठेगें उदाहरण के लिए साफ शिकन, दिलावर खाँ, शहजोर, कीलतन, मुँहजोर इत्यादि लीजिये। आज बटेर बाजी नवाबी राज्य की मृत्यु के साथ मर चुकी है, फिर भी लखनऊ और उसके इर्द गिर्द कस्बों में कहीं-कहीं उसकी यादगार अब भी बाकी है।

पतंग बाजी का हमारे देश के खेल कूदों में एक विशेष स्थान रहा है और इसका शौक बच्चों जवानों से बढ़ कर बूढ़ों तक पहुँच गया है। पतंग बाजी का केन्द्र भी यद्यपि लखनऊ ही रहा है फिर भी मनोरञ्जन का यह साधन सारे देश में लोक प्रिय है। आधुनिक नियमानुसार लखनऊ में पतंग बाजी के कई क्लब हैं।

शहरियों के घरेलू खेतों में शतरञ्ज, गंजीफा, पच्चीसी और चौसर को नवाबी राज्य काल तक बड़ी अच्छी लोक प्रियता प्राप्त रही है। गजीफा और चौसर समय परिवर्तन के साथ-साथ खेल-कूद की दुनियाँ से लुप्त हो गई। कवियों और शायरों की कविताओं और कथाकारों की कथाओं के पन्नों पर ही केवल इनका नाम रह गया है।

शतरञ्ज अब भी जीवित है और खेला भी जाता है पर उस भाँति नहीं जैसा कुछ नवाबी काल में खेला करते थे, कि रातो दिन उसी के पीछे पड़े हैं। पर आज तो वह दशा है कि जहाँ पेट ज्वाला भड़की, तो लोगों ने किस्त फेंक फाँक बनिये की दुकान की राह ली।

---

(१) कयामत का दिन (२) भीड़-भाड़

पचीसी अपनी सरलता के कारण आज भी यद्यपि जीवित है। पर इसे खेलते वही व्यक्ति हैं जिनके दिलों में जागीरदार और नवाबी राज्य काल की कोई चिनगारी आज भी चमक रही है। बालक संसार में इसका स्थान लूडो ने ले लिया है और नवयुवकों ने पचीसी को धक्का देकर कैरम से नाता जोड़ा है।

संसार परिवर्तन के साथ-साथ न जाने खेल-कूद में कितने परिवर्तन हुए और समाप्त हो गये पर किसान की मनोरञ्जन प्रवृतियों की जुम्बिश तक न हुई इसके खेल आज भी वही है जो शताब्दियों पहले थे। धर्ती और मिट्टी से खेलने वाले इन्सान के खेल भी उसी से सम्बन्धित है।

चैत का सुहावना मास, जुता हुआ खेत, भुरभुरी और कोमल मिट्टी चाँदनी रात जब चन्द्रमा दूध से अधिक उजली चाँदनी विखरे रहा है, थका हारा किसान उसकी ओर देखता है ऐसा प्रतीत होता है, कि चन्द्रमा उससे कुछ कह रहा है और किसान के मुख से जवाब में अकस्मात वह बोल सुनाई देते हैं :

"डू कवड्डी नारे, भगत तेरे सारे,
भगताइन तेरी जोई
तोमड़ी में आग लगी, धूम धड़क्के होई।

और दूसरी ओर से उससे अधिक जोर में यह सुनाई देते हैं।

डू डे······डू······डू···

यह है वह खेल जिसमें न किसी सामग्री की आवश्यकता है और न रेफ्री की। खुला मैदान कम से कम दो आदमी और अधिक की कोई संख्या नहीं बीच में एक रेखा खींच कर जिसको पाला कहते हैं, खेलने लगते। वर्षा काल के अतिरिक्त यह खेल प्रत्येक ऋतु में खेला जाता है गर्मियों में रात में और जाड़ों में दिन में। टोली के प्रत्येक व्यक्ति के लिए "गोइयाँ" का शब्द प्रयोग होता है। गोइयाँ मरता और जीता है। इस प्रकार आवागमन का सिद्धान्त तो बार-बार दुहराया भी जाता है साथ ही साथ दब-दब के उभरने की प्रेरणा भी मिलती है। दम बढ़ाने और शरीर हृष्ट-पुष्ट बनाने में यह खेल उपयोगी सिद्ध हुआ है।

इस खेल को सभ्य संसार ने भी अपना लिया है। इसके सिद्धांत और नियम भी

बन गए हैं। रेफ्री भी होता है और टास भी। देहाती इसकी परवाह नहीं करता। वह तो विश्वास रखता है अपने पूर्वजों की बातों पर। और वह उसी लकीर पर चला जा रहा है जो शताब्दियों के पहले उसके पूर्वज बना चुके थे।

कुश्ती लड़ने का रिवाज बहुत आम है। नाग पञ्चमी के अवसर पर धार्मिक श्रद्धा के साथ अखाड़ों में इसका प्रदर्शन होता है। सभ्य संसार का "फिरी इस्टाइल" अभी देहातों तक नहीं पहुँची और इसका प्रयोग कुश्ती लड़ने में तो नहीं होता वरना यूँ तो देहातों में इसका प्रयोग बहुधा होता रहता है।

बाल-संसार में बीसों प्रकार के खेल प्रचलित हैं जो बड़े सरल हैं, पर हैं वे बड़े मनोरञ्जक। इनमें भी या तो किसी प्रकार के सामान की आवश्यकता नहीं होती या तो बहुत ही कम। तमाम खेलों के लिए मोटे-मोटे और सरल से नियम हैं जिनका अवलोकन पाप से बढ़कर समझा जाता है।

बालक खेतों की देख रेख कर रहे हैं, अहीरों, कोसियों और गड़रियों के लड़के भैंस चरा रहे हैं। खुला मैदान या छायादार बाग। किसी पेड़ से हाथ डेढ़ हाथ का एक डन्डा काटा, पेड़ के नीचे एक बड़ा से गोला खींचा और "चोर" जानने के लिए—

अक्कड़ बक्कड़ बम्बे बो, अस्सी नब्बे पूरे सौ।
सौ में लगा धागा, चोर निकल कर भागा॥

की व्याख्या करने लगे, और जिस पर भागा शब्द समाप्त हुआ, वही चोर ठहरा और यदि निरेगावादी हुए तो एक बड़ा तिनका उठाया और खिचाने लगे जिसके खिचने पर तिनका समाप्त होकर गिर गया वही चोर ठहरा। अब प्रत्येक बालक की चेष्टा होगी कि वह पेड़ पर चढ़ जाय, और चोर उनको छूने का प्रयास करेगा। दूसरे बालक यह चेष्टा करेगें कि वे गोले में पड़े डन्डे को उठाकर टाँग के नीचे से निकाल कर "टो" का स्वर निकालें। यदि किसी बालक ने भी ऐसा कर दिया तो वह डन्डा दूर फेंक देगा, और चोर विचारा फिर चोर का चोर रहा, और उसे उठा कर गोले में रक्खेगा इस खेल का नाम है "लप्चू डन्डा।"

दूसरा खेल है आती-पाती। चोर का चुनाव तो यहाँ भी वैसे ही होता है, और उससे किसी पेड़ की पत्ती लाने को कहा जाता है। चोर पत्ती लेने जाता है, इस बीच

लड़के कहीं छुप जाते हैं, जब वह वापस लौटता है तो दूसरे बालक को बाहर निकालने की चेष्टा करता है जब वे निकल आते हैं तो वही पत्ती फेंक कर भागता है। जिसकी देह से पत्ती छू जायगी वही चोर होगा। बाकी लड़कों को उसकी सूचना अनोखे-अनोखे शब्दों और वाक्यों में दी जाती है। उदाहरणार्थ यह बोल पढ़िये—

आती पाती, चोरवा की छाती मारू पाती
पहड़युआ टिलो······टिल···ओ···ओ

कौड़ी फेक्का दुकड़ा दुकड़ा, गिल्ली डन्डा आदि दूसरे इनके प्रिय खेल हैं घरेलू खेलों में न तो वहाँ शतरञ्ज है न पच्चीसी; न बिसात है और न हाथी दाँत की मोहरें। धर्त्ती से कंकरों की मोहरें लेकर नौगुटिया और बगचूर खेलने लगे यह दोनों खेल ड्राफ्ट से मिलते जुलते हैं। जवान और प्रौढ़ व्यक्ति काम काज से छुट्टी करके कोट पीस खेलने बैठ गये।

यह है संक्षेप में एक चलते-फिरते चित्र की झाँकी हमारे भारतीय ग्रामीण और नागरिक खेलों की।



आधुनिक काल में यातायात के साधन

बैलगाड़ियाँ केवल इसलिए ही प्रयोगात्मक नहीं हैं कि वह थोड़े पैसों में ही तय्यार हो जाती हैं; वरन् इसलिए कि वह वहाँ पहुँच सकती हैं, जहाँ रेलगाड़ियाँ और मोटर बसें नहीं पहुंच सकतीं।

"उच्च श्रेणी के सभ्य राष्ट्र वे हैं, जो उच्च श्रेणी के नाविक हों।"

—इमर्सन

"मैंने भविष्य का निरीक्षण किया, तो मुझे दिखाई दिया कि उड़ाके सूर्यास्त लालिमा के धुँधुलके में उतर रहे हैं।"

—टेनीसन

यद्यपि यात्रा और यातायात के साधन समय परिवर्तन के साथ-साथ परिवर्तित होते रहे हैं; फिर भी उनमें से कुछ ऐसे हैं, जिनको कंटक-जीव कहिये, अथवा सरल और उपयोगी समझिये, जो आज तक अपनी प्राचीन दशा में सजीव हैं। वे हैं, बैल-गाड़ियाँ, घोड़े और ऊँट गाड़ियाँ। यह सब देहात और कच्ची सड़कों के लिये बड़े ही उपयोगी हैं। देहाती किसान है और कची सड़क; चाँदनी रात है, और सुनसान जंगल बैलगाड़ी के पहिये 'चूँ चूँ' कर रहे हैं, और किसान अलाप लगा रहा है, या चिलम के दम। कभी बैलों को चुमकारता है, और कभी प्रेममय झिड़कियों की बौछार करता जाता है। पचासों मन का बोझ है, और गरीब बैल धीरे-धीरे चले जा रहे हैं।

समय सभ्यता की ओर बढ़ा मनुष्य के मस्तिष्क ने आविष्कारों का ढेर लगा दिया, और रेलगाड़ी लाकर खड़ी कर दी। कौन जानता था कि "वाट" जैसा आलसी बालक, और जार्ज स्टिफिन्सन, जैसा गरीब लड़का इतना बुद्धिमान होगा, कि वह राकेट जैसा उपयोगी वाष्प इंजन बनाकर, संसार को न केवल चकित कर देगा, वरन् विश्व की कठिनाइयों को नष्ट कर देगा, और इसके द्वारा विभिन्न प्रदेशों के दूर-दूर स्थान घंटों में तय हो जायेंगे। अब क्या है लोग दस-बीस मील भी बैलगाड़ी या घोड़े पर चलना पसंद नहीं करते, चाहे रेलगाड़ी की प्रतीक्षा में एक-एक पल काटना दूभर क्यों न हो जाये। रेलगाड़ी का इंजन फक-फक धुँआँ उड़ाता आ पहुँचा।

वह देखो आ रही है भरती हुई सपाटा।
बरसों की मंजिलों को घंटों में इसने काटा।

मोटर बस और लारी भी आजकल के यातायात साधनों में बहुत प्रचलित है। ऐसे स्थान, जहाँ रेलवे स्टेशन नहीं हैं, और सड़कें पक्की हैं, मोटर लारी और बसें रेलगाड़ी ही का काम देती हैं।

यातायात के साधनों में हवाई जहाज (वायुविमान) का क्रम सबसे प्रथम है। यद्यपि यह सवारी धनवान, राजकीय कर्मचारियों और ऐसे ही बड़े-बड़े लोगों के लिये है। इसलिये कि इसका प्रचलन अभी इतना साधारण नहीं है। फिर भी इस आविष्कार ने हमारी प्राचीन कथाओं के उड़नखटोलों और वायुयानों की न केवल याद दिलादी, वरन् उन्हें जीवित रूप में हमारे सामने रख दिया।

एक बार हमको अपने बालापन के वे सुखी दिन, और अबोध जीवन के वे क्षण बेचैन करने लगते हैं, जब हम परियों के उड़न खटोलों की कहानियाँ सुनकर चकित रह जाते थे, जितना अब इस हवाई जहाज को देखकर आश्चर्य नहीं करते।

यही हवाई जहाज है, जिसके द्वारा मनुष्य ने विश्व के पूरी तरह अगम्य प्रदेशों में साधिकार प्रवेश किया है। वायुयान, एक ऐसा आविष्कार है, जिसने क्षितिज-मंडल की सैर धरातल से अधिक सरल बना दी है। एवेरेस्ट जैसे ऊँचे शिखर तक पहुँच कर प्राकृत को चुनौती दे दी। याता-यात का यह साधन मनुष्य ने जिस सुविधा और आराम के लिये बनाया था, अब यही वस्तु उसके लिये विष से अधिक भयंकर बन गई है। इसके द्वारा बम बरसाये जाते हैं, और जीवन नष्ट किये जाते हैं। यातायात के इस साधन ने आज भयंकर शस्त्र का रूप धारण कर लिया है।

वायुयान का नाम ले लेने के बाद मोटर साइकिलें और साइकिलें बहुत ही तुच्छ वस्तु दिखाई देती हैं; पर हमें याद रखना चाहिये, कि यह चीजें आजकल हमारे दैनिक जीवन में बड़ी उपयोगी बन रही हैं। शहर की पक्की सड़कों की बात छोड़िये, हरे-भरे खेतों की मेंड हों, या चटियल मैदान, साफ और चौरस लीक हो, या पगडंडी, आप साइकिल उठाइये और बिना संकोच दस पाँच कोस की यात्रा करके जल्दी से जल्दी लौट आइये। यही नहीं, वरन् कुछ साहसी व्यक्तियों ने साइकिल द्वारा विश्व का भ्रमण किया है।

जल सम्बंधी साधनों में नौका उस आदिकाल की एक स्मृति है, जब विश्व के सब से पहले नाविक ने इसके द्वारा तूफानी थपेड़ों से मुक्ति पाने की चेष्टा की। पवन

झकोले हों, मूसलाधार वर्षा का हाहाकार हो, नदी की लहरें, उठ-उठ कर साधारण मनुष्यों के लिये भय और निराशा के भयानक चित्र खींच रहे हों, कुडौल और अनगढ़ काठ से बनी हुई नौका हिचकोले खाते बेरोकटोक चली जाती होगी, और केवट बड़े संतोष के साथ तान लगा रहा होगा।

"मोरी नैया चली चल किनारे किनारे"

यही नहीं, उसे पूरा भरोसा है, जभी तो कह रहा है—

...लंगर को तोड़ दिया, जी भर के छोड़ दिया,
"तेरे सहारे चली चल किनारे किनारे"

जब मनुष्य ने अपनी बुद्धि से काम लिया, और अपने कामों में शीघ्रता की भावनायें उत्पन्न करने लगा, तो वाष्प के चमत्कार ने स्टीमरों और सामुद्रिक वाष्प जहाजों को जन्म दिया। अब क्या है, मनुष्य पूरी शीघ्रता के साथ रात के अंधकार में भी समुद्र की छाती चीरता चला जा रहा है। सात समुद्र पार इतनी सरलता से पहुँच जाता है, कि यदि आज आदि जहाजी बेड़ों के नाविक जीवित हो जायें, तो चकित हो कर रह जायेंगे, और कोलम्बस को नई दुनिया पा लेने पर कोई आश्चर्य न होगा।



स्वदेशी प्रदर्शनी

"स्वदेशी प्रदर्शनियाँ देश की शिल्पकला और आविष्कारों के प्रदर्शन के मुख्य साधन हैं।"

इस वर्ष हमें इलाहाबाद की स्वदेशी प्रदर्शनी देखने का अवसर मिला, जो प्रत्येक वर्ष यहाँ शरद ऋतु में लगा करती है, और महीनों अखबारों में इसका विज्ञापन निकला करता है, और फिर ढिँढोरा पिटा करता है कि यदि इसे न देखा तो कुछ भी न देखा।

प्रदर्शनी-स्थान पर पहुँचने से बहुत पहले दूर ही से बिजली के बल्बो द्वारा जगाई गयी 'दीपावली' दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। उस दृश्य को देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानों आकाश के तारे धरती माता के चरण छूने उतर आये हैं, और आकाश की ओर जाते-जाते बीच में लटक कर रह गये हैं।

प्रवेश-टिकट की दर तो बहुत मामूली सी थी—केवल तीन आने। टिकट खरीदते समय कुछ स्वर कानों के परदों से टकरा गये, जिनमें न तो कोई असाधारणता थी, और न कोई आकर्षण, अर्थात "मियाँ बाहर, बीवी अन्दर न सोती" किस्म की फ़िल्मी रिकार्डिंग हो रही थी। संदेह नहीं बहुतेरे व्यक्ति इसी को मस्ताना रिकार्डिंग कहेंगे।

प्रवेश टिकट लेकर भीतर आये, तो दो स्वर गडमड होकर कानों के परदों पर टकराने लगे—'पानी की छोरी देखो' पानी की रानी के साथ यह स्वर भिड़ गया एक बालक जिसकी उम्र सात आठ साल की, बदन पर नीली स्वीटर और खाकी निकर पहने छूट गया है, जिसे मिले वह आशा कम्पनी पर पहुँचा दें······और उधर कितना बदल गया इन्सान···ने इस पर आक्रमण करना चाहा, कि पानी की छोरी सवार हो गई।

इससे ध्यान हटा, तो चरखी और झूलों पर निगाह पड़ी जहाँ प्रदर्शनी पर मेले

की छाप पड़ने लगी। अन्तर केवल इतना था कि मेलों के झूले मनुष्य का सहारा लेते हैं और प्रदर्शनी ने मनुष्य का स्थान मशीन और बिजली को दे दिया था।

केवल एक चक्कर लगाने पर ऐसा प्रतीत हो गया, कि आज की प्रदर्शनी, प्रदर्शनी नहीं वरन् मेला है और इस दृष्टिकोण से इस प्रदर्शनी में "पानी की छोरी", अगिनी (अग्नि) की देवी, हवाई बन्दूक से निशाने बाज़ी ऐसी चीजें थीं, जिन्हें सचमुच यदि आप न देखें, तो पछतायें और देखने वालों से पूछिये "क्या चीज़ प्रदर्शन योग्य थी?"

इस सम्बन्ध में आज के नवयुवकों का मनोवैज्ञानिक निरीक्षण करने का अच्छा अवसर मिल जाता है। बड़ी ऐंठ और अकड़ के साथ इकन्नी जेब से निकाली, और छर्रे लिये; पूरे विश्वास का प्रदर्शन करते हुये कि इकन्नी की दुअन्नी तो कर ही लेंगे, बन्दूक उठायी और बड़ा शो करते हुये निशाना लगाया, पर ठाँय-ठाँय फिस···मित्रों से कहने लगे, चावल भर निशाना चूक गया, कोई ट्रिक है।

एक दूसरा स्थान जहाँ ऐसे ही युवकों की भीड़ लगी रहती है, इसी बन्दूक वाले से मिलता-जुलता है। यहाँ "आम के आम, गुठलों के दाम" वाली कहावत की व्याख्या की जा रही थी—दो आने में एक खेलौना लो और बेत के दो बड़े-बड़े रिंग लेकर, सिग्रेट के डिब्बों पर डालो, बस अब क्या है, नवयुवक कैप्सटन, पील, कैंची के लालच में जुटे हैं। आस्तीनें सँभाल-सँभाल रिंग फेंक रहे हैं और मन ही मन में कैप्सटन का धुआँ उड़ाने में मस्त सिर लटकाये चले आ रहे हैं।

अब दुकानों की ओर बढ़िये! चूड़ियों की दुकानें बताने की आवश्यकता ही न पड़ेगी। जिस दूकान की चीजों को आप न देख सकें, समझ जाइये, चूड़ियों की दूकानें हैं। जहाँ रगँ-विरँगे वस्त्र और लेडी कोटों के विभिन्न नमूने देख पड़ें वह चूड़ी की दूकान होगी।

यही हाल साड़ी और कपड़ों की दुकानों का होता है। जेन्ट्स के काम की चीज़ें प्रदर्शनी-वालों के विचार में व्यर्थ सी हैं, अलबत्ता एक दुकान थी, जहाँ नवयुवक की चोहलों, ठट्ठों और हँसीं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन बड़ी सरलता से किया जा सकता है। यह थी टाइयों की दूकान। "हर प्रकार का कपड़ा १।) गज़" वाली दुकानें भी पूर्ण आकर्षण रखती थीं, और उनका भी वही हाल था, जो चूड़ी की दुकानों का।

कशमीरी दुकानों की वस्तुओं को आप चाहे प्रदर्शनी समझ लें और चाहे व्यापार। फ़र, नमदे, क़ालीन, टीकोज़ी, अलवान, पट्टू, शालें, शेर की खालें, लेडी कोट, दस्ताने क्या कुछ नहीं था।

प्रदर्शनी के आकर्षण में दो वस्तुएँ और भी सम्मिलित हैं। आतशबाजी और फ़ायर डाइव—मौत का कुआँ भी कम आकर्षण नहीं रखता था; पर यह काम अब बहुत मामूली समझा जाने लगा है और प्रदर्शनी से अधिक मेलों वाली चीज समझी जाने लगी है। रही आतशबाजी यह तो हमारे देश की विशेष चीज है। धार्मिक त्योहार हो या, शादी-विवाह हो और अगर यह न हो, तो न तो त्योहार का मज़ा है और न विवाह का। प्रदर्शनी का आकर्षण और शोभा बढ़ाने के अतिरिक्त घरेलू उद्योग-धन्धों का एक महत्त्वपूर्ण प्रदर्शन भी हो जाता है। थोड़ी देर का उजाला फिर अँधेरा, चार दिन की चाँदनी, घर फूँक तमाशा देखें, बहुत कुछ समझदारों के सामने आ जाता है।

फायर-डाइव को आप एक खेल-तमाशा समझें, या सर्कस में स्थान दें, प्रदर्शन योग्य अवश्य है। एक आदमी अपने बदन पर पेट्रोल छिड़क कर आग लगाता है, और ७२ फूट की उचाँई से पानी भरे एक हौज़ में कूद जाता है। हथेली पर जान रखने का इससे सजीव उदाहरण और क्या हो सकता है। पेट तेरी बलिहारी! मनुष्य तेरे लिये क्या-क्या नहीं करता।

प्रदर्शनी का प्रधान अंग, जिसे प्रदर्शनी कहा जा सकता है, वह है, जहाँ घरेलू उद्योग-धन्धों के नमूने दिखाये गये थे। बिंध्य-प्रदेश के घरेलू-धन्धों के नमूने बड़े सुन्दर थे। चाहे वह डलयाँ डकुलियाँ हों या चाहे खिलौने और वस्त्र।

पंचवर्षीय-योजना के तम्बू में भाकरा-बाँध का आदर्श और चित्र, धान उगाने की प्रणाली का आदर्श और 'कुटीर-उद्योग' के आदर्श भी बड़े सरोहनीय थे। इसी सम्बन्ध में हमारी डाक-प्रणाली का निदर्शन विशेषतः तार भेजने और टाइप हो जाने की रीति अद्भुत होने के साथ-साथ विज्ञापनीय भी थी। डाक-टिकट संग्रह करने वालों के लिये डाक-टिकटों के नमूने तो बड़े सुन्दर थे। इलाहाबाद माचिस कारखाने वालों ने भी दियासलाई बनाने की रीति पर बड़ा सुन्दर निदर्शन दिया था।

सही मानीं में प्रदर्शनी के योग्य वे चीजें थीं, जो गवर्नमेंट इ० कालेज के विद्यार्थियों ने भेजी थीं।

ऐसी प्रदर्शनियों को हम मेला अधिक और प्रदर्शनी कम कह सकते हैं, इसलिये कि यहाँ अखिल-देश की कला-कौशल के नमूनों की कौन कहे, एक प्रान्त के नमूने भी नहीं मिलते, चाहिये तो यह था कि देश भर की न सही, एक ही प्रान्त की कला-कौशल, भाषा-लिपि, उद्योग-धन्धों के नमूनों का किसी एक स्थान पर संग्रह किया जाता और उन्हें प्रोत्साहन दिया जाता।



कोई दुर्घटना जो तुम्हारे साथ हुई हो।

दुःख और घटानायें ही मनुष्यता की सच्ची कसौटी हैं

—सभोयल

दुख में सब हरि को भजैं,

—कबीर

कहा तो यही जाता है कि जीवन घटनाओं का दूसरा नाम है, और जिस जीवन में दुख और घटनाएँ न हों वह बड़ा सूना-सूना सा दिखाई देता है। शायद कुछ कवि इसलिए जीवन में "मर-मर" कर जीना ही अच्छा समझने लगे। अनुमान तो ऐसा है कि इस मर-मर के जीने से यही अर्थ होगा कि जीवन वही है जो दुर्घटनाओं के लिए तैयार रहे।

आप पूर्णतः स्वतन्त्र हैं कि घटनाओं को जीवन समझ लें या जीवन का दूसरा नाम दुःख और घटनाएँ रख लें; पर इस बात पर ध्यान अवश्य रखें कि मेरे साथ जो दुर्घटना घटी वह जीवन बन सकी होगी या जीवन के सारे अंग शून्य हो गये होंगे।

उस घटना का भेद प्रायः आप अच्छी तरह न समझ सकेंगे जब तक मैं आप को कुछ बातें प्रसार रूप में न बता दूँ:—

न० १—यूँ समझ लीजिये कि बात आज से पूरे ३५,३६ वर्ष पूर्व की है कि मैं बड़े दिन की छुट्टी में अपने एक मित्र के यहाँ अतिथ बन कर गया।

न० २—यूँ समझ लीजिये कि हमारे मित्र एक जमींदार और आनरेरी मजिस्टेट के पुत्र थे वही क्या कम था कि संयोग वश हमारे मित्र खाँ साहब और उनके पिता खाँ साहब से बढ़ कर खानबहादुर साहब थे। इसलिए हमारे मित्र जमींदार और खाँ साहब बन ही चुके थे रही आनरेरी मजिस्ट्रेटी तो उनके रंग-ढंग से उसकी भी गंध आने लगी थी।

नं० ३—हम दोनों एक ही वर्ष एक गवरन्मेन्ट हाई-स्कूल में उस समय पढ़ने गये जब विद्या-केन्द्रों और अँग्रेजी शिक्षा पर जिमींदारों और पूँजी पतियों का अधिकार था मेरा प्रवेश छटे दर्जे में और हमारे मित्र का सातवें दर्जे में हुआ और दो वर्ष पश्चात् जब मैं आठवें दर्जे में था तो वह उस समय भी सातवें दर्जे में थे।

नं० ४—खान बहादुरी, राय बहादुरी, और आनरेरी मजिस्ट्रेटी उन गुणों की देन थी जिन्हें ब्रिटिश सामराज्य के कर्मचारी आवश्यक समझते थे उदाहरणतः यह कि आनरेरी मजिस्ट्रेट गाँठ का पोढ़ा और आँख का अँधा हो। अर्थात् शिक्षा-दीक्षा "वकलम-खुद" से आगे न बढ़ी हो। सफेद चमड़ी का पुजारी और जो प्रत्येक गोरे को लफटंट गवर्नर समझे। खान बहादुर साहब में जहाँ अन्य गुण पाये जाते थे "बकलम-खुदी" का गुण सबसे अधिक उज्जवल था। कभी-कभी इससे वे लज्जा भी महसूस करते और यही सब से बड़ा कारण था कि वह अपने पुत्र से यह अपमान दूर करना चाहते थे और दो वर्ष की असफलता पर भी उन्हें बराबर ढकेलने का प्रयत्न कर रहे थे। जब कभी वह प्रसन्न होते तो हम दोनों से कहते बस अब क्या कमी है, आठ सीढ़ियों तक पहुँच गए हो द्वार तक पहुँचने में केवल दो बाकी हैं फिर एक ठंडी साँस भर कर कहते क्या करूँ इस शेर अंदाज के बच्चे को आगे बढ़ने का नाम ही नहीं लेता फिर आप ही कहते तीन की कसर है तीन न सही तो छः वर्ष में...।

नं० ५—यह था वातावरण हमारे मित्र शेर अंदाज खाँ साहब का और मजा यह था कि तबीयत में था बाँकपन अर्थात् सैर-शिकार का शौक पागलपन की सीमा तक पहुँच गया था और पढ़ने लिखने की ओर नाम मातृ रुचि थी। गाँव भर में रोब जमाना और अपनी ढाक बिठाना मानो करेले का नीम पर चढ़ना था।

इतनी बातें सुन लेने के बाद अब आप अन्दाजा लगा सकेंगे कि जो कुछ हम पर बीती और जो कुछ सामने आने वाला है वह किस ढङ्ग का हो सकता है अब आगे सुनिये। जब हम उनके मकान पर पहुँचे तो मालूम हुआ आप मौजूद नहीं हैं हम खान बहादुर साहब के पास गये हमने सलाम किया उन्होंने बड़े तपाक से हमारा स्वागत किया। पास बिठाया। हाल पूछा और एक बार गरज पड़े।

"अरे कोई है ?"

अभी "है या नहीं" की मूर्ति प्रदर्शित न होने पाई थी कि फिर पुकारा "बेचुआ"

और बेचुआ एक क्षण में हाथ जोड़े आ खड़ा हुआ।

खान बहादुर साहब ने कहा देख! इन भइया को शेरू भइया के पास लेजा, बड़े बग्गर१ में होंगे। नई गोईर२ का मुआइना हो रहा होगा। और फिर मुझे सम्बोधित करते हुए कहने लगे तुम्हारे दोस्त को बड़ा शौक है गोई और फिरिक३ का। दर्जनों तो अरई४ बनवाई हैं। और हम बेचुआ के साथ बड़े बग्गर में पहुँच गए। क्या देखता हूँ कि हमारे मित्र सरकंडे के एक मोढ़े पर विराजमान हैं तीन और आदमी खड़े हैं उन में से एक बैल के दाँत दिखा रहा है और हमारे शेरू भइया मुस्करा रहे हैं। फलालैन की कमीस और बारीक धोती पहने हैं। जिसकी एक लाँग ऊँची और दूसरी नीची और वार्निश मड़ाके का पम्प, हाथ में बाँस की एक पनेठी। आप उठे और बैल की पूँछ के पास वह पनेठी छुलाई बैल बड़े जोर से कूदा और आप अपनी पनेठी की प्रशंसा करके मुझे दिखाने लगे देखो दोस्त बड़ी फर्स्ट क्लास अरई बनवाई है खैला५ भी क्या याद करेगा। इधर देहँ से छू नहीं गई कि बिजली दौड़ गई। वह फर्राटे भरेगा कि देखते रह जाओगे। मैं अभी कोई जवाब न देने पाया था कि उनकी निगाह मेरे हाथ पर गड़ गई जिस में एक पुस्तक थमी थी। कहने लगे बड़े घोंट्ट हो यार! क्या है यह? मैंने उत्तर दिया "राउन्ड दि वर्ल्ड इन ऐट्टी डेज" इस पर आप ने कोई उत्तर न दिया और पास खड़े हुए बेचुआ से पूछने लगे "यह नया खैला कैसा है?" "महिका तो कोई खबर नाहीं! लल्लू जानत हुइ हैं वही गये रहैं।" बेचुआ ने उत्तर दिया।

और हमारे शेरू भाई हाथ में अरई लिए उस फिरक के पास पहुँच गए, जिस पर लद कर मैं आया था; और जिसमें नया खैला जुता था। बेचुआ को हुक्म दिया, "ले यह इटैची रख आ।" यह वह एटैची थी जिसमें हमारे दो-तीन जोड़े कपड़े और राबिसन

---

१ अवध में कच्ची दीवरो से घिरे हुये हाते को कहते है।

२बैलों की जोड़ी। ३छोटा लहड़ू। ४बाँस की पतली छड़ी जिसमें लोहे की कील जड़ी हो अरई कहते हैं। ५नौजवान बैल

कूसो प्रकार की कई पुस्तकें बन्द थीं । मुझ से कहने लगे, "लो भाई चलो तुम्हें नये बैलों की चाल दिखलायें", और साथ ही लल्लू से पूछा "चाल का कैसा है ?" लल्लू ने उत्तर दिया "भैया चाल का मीठा तो नहीं है, पर विचकता बहुत है; मैं तो बस्ती में नाथ पकड़े-पकड़े लाया ।" इस पर शेरू भाई ने बैल की पीठ से अरई छुआई और वह उछला कूदा तो बहुत मगर नाथ की जकड़ और लल्लू के मजबूत हाथों की पकड़ के आगे कोई बस न चला और शेरू भइया ने वेचुआ को हुक्म दिया, उठा तो ला दूसरी अरई और पैने१ । और आपने अपनी समझ से एक अच्छी सी अरई और एक पैना छाँट लिया । और मुझे इस प्रकार प्रार्थना की मानो हुक्म दे रहे हों, कि हाँ भाई बैठ तो जाओ और मैं बिना कुछ कहे सुने फिरिक में इस प्रकार बैठ गया मानो यह आज्ञा मुझे किसी अपने बड़े की ओर से मिली हो । शेरू भाई ने एक अद्-भुद "हूँ" भरी और फिरिक फर-फर उड़ने लगी । मेरा सारा शरीर इधर-उधर झूलने लगा और उसके साथ-साथ हाथ में थमी हुई पुस्तक "राउन्ड दि वर्ल्ड" भी राउन्ड कर रही थी । झुट-पुटा समय हो चला था पास ही के बड़े गाँव के बाज़ार से लोग लौट रहे थे । पुरुष कम, स्त्रियाँ अधिक । पीठ से अधिक सिर पर और हाथों से अधिक कमर पर बोझ लादे चोहलें करतीं और गीत गाती चली जा रहीं थीं, कि शेरू भइया की फिरिक का दबदबा उनके लिए भूकम्प बन कर प्रकट हुआ । कभी इधर भागतीं और कभी उधर, एक के सिर का बोझ धरती चूमने लगा, और वह गिरी हुई चीज चुनने लगीं । दूसरे की गठरी धड़ाम से दूर जा गिरी और वह उसे सँभालने लगी । इसी भगदड़ में इधर-उधर के बचाव के विचार में शेरू भाई सड़क के किनारे पड़े हुए मोटे एक लट्ठे को न देख सके, इस बीच बिचाव का परिणाम यह निकला कि फिरिक का एक पहिया लक्कड़ पर चढ़ गया, हमारा झूलता हुआ शरीर सरलरेखा बनने का प्रयत्न करने लगा, पुस्तक कभी मुँह पर आ जाती कभी पीछे चली जाती और शेरू भाई जमनास्टिक का एक करतब दिखाते हुए तड़ाक से एक खनदक में कूद पड़े, एक बैला जुँअर से असहयोग आन्दोलन करने के विचार से फुद-कने लगा और उसकी उचक फाँद का फल मुझे इस प्रकार भोगना पड़ा कि लहड़ू की

(१) लोहे की त्रिकोण कील से लगी बाँस की पतली लकड़ी ।

दूसरी ओर जहाँ काँटे खोबरे थे, वहाँ शरण लेनी पड़ी। खाई से समस्या दी जा रही थी "हाय बाप रे !" और इधर से उसकी पूर्ति हो रही थी "हाय रे मरे !" वह तो कहिए ब्रिटिश सामराज्य और सामंत-बाद का दबदबा और उससे अधिक धर्म का पास, कि दो-तीन ग्रामीण इस अलबेले कवि सम्मेलन को सुनकर उस में सम्मलित हो गये। एक ने खैले जी को समझाया बुझाया और गरदन पर जुआ रखने के लिए पटा लिया। एक मेरे पास आया गोद में उठाना चाहा पूरा जोर लगा दिया पर जब पहाड़ न टला, तो दूसरे को आवाज दी और इस प्रकार क्रमशः हम दोनों फिर लहडू पर लादे गये।

शेरू भाई जितने ठोस थे, हम उतने ही पोले; यदि आप उन्हें लोहे की दीवार समझें, तो हमें केवल बालू की भीति; फिर भी उनका घुटना चकनाचूर था और खून वह रहा था और यहाँ मलीने का कुर्ता सामने से गायब और छाती खरोंचो से फूलदार बन रही थी।

न जाने किस प्रकार हम दोनों के पहुँचने से पहले ही घर पर सूचना मिल चुकी थी, कि एक साहब खाई से समस्या दे रहे हैं और दूसरे काँटों खोबरों के बिछौने पर औंधे मुँह लेटे समस्या की पूर्ति कर रहे हैं। हम दोनों लिटा दिये गये; शेरू भाई के घुटनों में हल्दी चूना थोपा जा रहा था और मैं दूध फिटकरी पी रहा था। बधाई में डफले बज रहे थे, तेल और माश के थाल चले आ रहे थे कि जान की सलामती में न्यौछावर कर दिये जायें। मानों······

जान बची लाखो पाये

इसकी पूर्ति के लिए आप नितांत स्वतंत्र हैं, अपनी-अपनी अभिरुचि अनुसार जो चाहे कह लें।

वैज्ञानिक-आविष्कार

"जो व्यक्ति एक यंत्र का भी आविष्कार करता है, वह मानव जाति की भलाई करके उसकी शक्ति बढ़ाता है।"

—एच० डब्लू० बीचर

वैज्ञानिक आविष्कार अन्ध-विश्वास दूर करने में बड़े उपयोगी बने।"

—एमरसन

वैज्ञानिक आविष्कार अधिकांश, ताप, प्रकाश और आवाज से संबंधित हैं; और इस शृंखला में पहला क्रम स्टीम इंजन का है। किसे अनुमान था कि पतीली खड़कने की अकस्मात घटना, वाट जैसे लापरवाह बालक की बुद्धि को उस स्थान पर पहुँचा देगी, कि वह वाष्प-शक्ति का अनुमान कर लेगा; और जार्ज स्टीफेन्सन सा साधारण व्यक्ति उसको वाष्प-इंजन के रूप में प्रस्तुत कर देगा। इस आविष्कार से पहले यातायात और व्यापार में, जो कठिनाईयाँ उठानी पड़ती थीं, उनको सामने रख कर ही यात्राओं को नर्क का नमूना ठहराया गया; परन्तु स्टीम-इंजन और रेलगाड़ियों द्वारा यातायात, उद्योग धंधों, पत्र वाहन आदि में जो सुविधाएँ पैदा हो गई हैं, उन्होंने यात्राओं को सफलता का एक मात्र साधन बना दिया। इस आविष्कार से जो लाभ प्राप्त हुये हैं और मनुष्य के जीवन में जो सुविधाएँ उत्पन्न कर दी हैं, वह आज किसी से छिपी नहीं हैं।

विद्युत-शक्ति और तार ने तो विश्व में एक अद्भुत परिवर्तन पैदा कर दिया है। सहस्रों प्रकार की मशीनें, कलें एवं कारखाने आदि इसके कारण उन्नति-पथ की ओर जा रहे हैं। आज उद्योग-धंधे विद्युत-शक्ति द्वारा उन्नति के जिन पथों पर पहुँच गये हैं, शायद मनुष्य अपने भुज-बल द्वारा सहस्त्रों शताब्दयों प्रयास करने पर भी न पहुँच पाता। विद्युत-शक्ति के सम्मुख मानव-शक्ति ऐसी तुच्छ दिखाई दे रही है, कि वह विद्युत द्वारा किये गये कार्यों को दैवी चमत्कार से भी बढ़ कर समझने लगा है।

बिना हाथों घंटी वह बजाये, पंखा वह झले, धरती से एक छण में ऊपर पहुँचायें, बिना तेल बत्ती ज्योति दे, बल्वों द्वारा दीपावली जगाये, और तो और सैकड़ों मील की दूरी से खबरें सुनिये सूचनायें भेजिये, संदेश पहुँचाइये। आज कौन ऐसा है, जो तार टेलीफून और टेलीग्राम से अनभिज्ञ है।

ग्रेमोफोन—इस आविष्कार को एक दैवी चमत्कार ही समझना चाहिये। जानकी बाई, इलाहाबाद वाली मर चुकी हैं। मुहम्मद हुसैन नगीने वाले धरती में मिल गये, सहगल मर चुका है, पर ग्रामोफोन की बदौलत उन्हीं के मुख से आप यह बोल सुन सकते हैं "मेरा नाम जानकी बाई इलाहाबाद" जब तबीअत घबराई रिकार्ड रखा, सुई लगाई, और सुनने लगे।

"प्रेम नगर में बनाऊँगी घर मैं तजि के सब संसार" इधर गाना खतम हुआ, दूसरी ओर रिकार्ड रखा और कह-कहों की आवाजें आपके कानों के पर्दों से टकराने लगीं

हकीमा नबज मोरी देखना

कह कर किसी ने फिर कहकहा लगाया। यह आविष्कार केवल मनोरञ्जक है।

वायरलेस और रेडिओ—इसके द्वारा भी आप हवाई लहरों द्वारा हजारों मील समुद्र पार की बातें सुनिये और आप अपनी बातें दूसरों को सुनाइये। इधर आपने रेडियो बाक्स का बटन दबाया और सुई घुमाकर नम्बर मिलाया कि आप यह बोल सुनकर चकित हो जायेंगे, इट इज अमेरिका, आप स्विच को इधर-उधर करेंगे, तो यह बोल सुनाई देंगे "हम दिल्ली से बोल रहे हैं" खबरें समाप्त अब आप एक दादरा सुनिये, अब क्या है आपके, कानों में मधुर रस घुलने लगा।

तू चुपके चुपके बोल मैंना
चुपके चुपके बोल

ऐसे मीठे बोल सुन आप भावनाओं की धारा में बह रहे हों, कि "टन ! टन !! टन !!!" की लगातार आवाज से चौंक जायेंगे; आपने टेलीफोन हाथ में लिया और मुँह बढ़ाया कि आपको हल्लो के मीठे सुरीले स्वर ने आप के शुसुप्त हृदय में एक नई लहर पैदा कर दी।

"हाँ कहिये ! आज पिक्चर का प्रोग्राम है आप खुश हो गये। कबूतर

की खोज और कागा की तलाश से बच गये। न आहों का सहारा लेना पड़ा, और न नाले खीचने पड़े।

लाउड स्पीकर, भी इसी श्रृंखला की एक कड़ी है। हजारों इंसानों की भीड़ हो, लेक्चर देने वाला, शिक्षक, धर्म प्रचारक चाहे कितना ही दुर्बल क्यों न हो, स्वर कितना ही दुर्बल और बारीक हो आप अगली कतार से बहुत दूर खड़े हों, पर इस यंत्र की बदौलत ऐसा मालूम होगा, मानो आवाज कानों में धँसी जा रही है।

हवाई जहाज—मानव प्रकृति में उतावलापन है और जल्दबाजी उसकी घुट्टी में पड़ी है; विशेषतः यातायात सम्बन्ध में; मनुष्य ने सदा यही प्रयत्न किया है, कि वह शीघ्र से शीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाये और यह आविष्कार उसी का फल है। आपने सुलेमान के तख्त, और परियों के उड़न खटोलों की कहानियाँ सुनीं और पढ़ी होंगी; आज अपनी आँख से देख रहे हैं, कि हवाई जहाज स्थान-स्थान पर चक्कर लग रहे हैं। यातायात, डाक, संदेश भेजने में, जो सुविधायें इस आविष्कार द्वारा जनता को मिली हैं, वह इतनी प्रत्यक्ष हैं, कि उनका पुनः उल्लेख करना ही व्यर्थ है।

सिनेमाटोग्रैफी—यह आविष्कार अत्यन्त लाभदायक है, और यह भी किसी भाँति एक दैवी चमत्कार से कम नहीं; चलते-फिरते, जीते-जागते चित्र देखिये, पहाड़, नदियाँ, जंगल, बयाबान अपनी आँखों देखिये, झरनों की झर-झर, पंक्षियों का फुदकना, हिरनो का कुलेलैं करना, और अन्य प्राकृतिक दृश्यों को पर्दे पर देखिये।

इस आविष्कार में जब से ध्वनि पैदा करने का गुण उत्पन्न हो गया है, उस समय से तो इसने एक अद्‌भुत चमत्कार कर दिखाया है। सिनेमा हाल में बैठे नाटक का मजा लीजिये, उपन्यास और कहानियाँ पढ़ने का आनन्द उठाइये। शब्दों के जादू पर चलते-फिरते हाव-भाव इत्यादि देखिये। प्रेम कहानियाँ, समाज के बंधन, ऐतिहासिक घटनाओं के चलित-चित्र, उद्योग धन्धों के कारखानों की सैर कीजिये भौगोलिक और ऐतिहासिक पाठों के नमूने देखिये। गाने सुनिये, नाच देखिये और तलवारों की झन्कार पर सैनिकों की तैयारी, तलवार की धार पर चलने वाले सिपाहियों की वीरता और बलि, देश के लिये कुर्बानी के जीवित उदाहरण सिनेमा-पट पर देखिये

हमारे देश में सिनेमाटोग्रैफी से अभी तक केवल मनोरञ्जन का काम लिया गया

है। इधर कुछ डाकोमेन्ट्री चित्र बड़े सुन्दर बनाये गये, पर दूसरे देशों की भाँति हमारे यहाँ अभी फिल्मों को शिक्षा साधन नहीं बनाया गया है।

टेलीविजन-वायरलेस आविष्कारों की शृंखला में अपना एक निराला स्थान रखता है। इसके द्वारा बोलने वाले की छवि देखी जा सकती है; चाहे वह विश्व के किसी कोने से बोल रहा हो।

इसी प्रकार बहुतेरे युद्ध-यंत्रो का आविष्कार हुआ है, जिनको देखकर साधारण व्यक्ति क्या, बड़े-बड़े धैर्य्यशालियों के छक्के छूट जाते हैं और हम यह कहने के लिये वाध्य हो जाते हैं कि विश्व क्या से क्या हो गया।

इन आविष्कारों को दृष्टि में रख कर हम कह सकते हैं कि इन आधुनिक वैज्ञानिक अविष्कारों ने मानव की कठिनाइयाँ दूर कर दीं और जीवन को रहने योग्य बना दिया।

हमें उन आविष्कार करने वालों का कृतज्ञ होना चाहिये, जिन्होंने अपने जीवन की वलि देकर सहस्त्रों बिलकते हुये इन्सानों की जान बचाई, और मृत्यु के मुँह में हाथ डाल कर उसे चुनौती दे दी और हजारों औषधियाँ और इंजक्शन बनाये।

—o—

रेलगाड़ी आ जाने पर प्लेटफार्म का दृश्य

"बिना प्लेटफार्म के स्टेशन, बिना दरवाजे के घर की भाँति है"

धुआँ उड़ाता, छक-छक करता, चीखता-चिल्लाता, और हाँफता हुआ इञ्जन प्लेट-फार्म पर आ पहुँचा। आने के पहले ही उस शांति को एक भारी ठोकर लगाई, जिसके कारण लोग कहीं होलडाल के पुलन्दे पर आड़े-तिरछे लदे, सिग्रेट के मजे ले रहे थे। और किसी ओर घर की मलकिन बच्चों को पूड़ियाँ और मिठाईयाँ बाँट रहीं थी। कहीं पानदान खुल गया था, और कहीं गिलौरियाँ बन रहीं थीं। बाँके तिरछे मनचले जवानों के पग अकस्मात रुक गये, मानों पैरों का शनिश्चर उतर गया हो।

जिन कुलियों के पास सामान नहीं था; और धैर्य की मूर्ति बने लाइन लगाये बैठे थे। इञ्जन की फुनकार ने उनके पेटों की ज्वाला को और भी भड़का दिया, और वे सब दौड़-दौड़ कर डिब्बों के सामने खड़े हो गये। एक भगदड़ मच गई। और प्लेट फार्म रण क्षेत्र का एक नमूना बन गया। जिधर देखो दौड़-धूप, चीख पुकार, घबराहट और चिन्ता, जिसे देखो उसके मुख पर खोज के चिह्न। कुलियों के सिरों पर सामान टिक गया और कुछ हाथों में। कुछ लोग हैं कि पीठ और कन्धों पर सामान लादे; कुछ हैं कि सिरों पर बरतनों से भरे बोरे खनकाते टीन के पीपे, गठरियाँ, टूटी हुई चारपाई और न जाने क्या-क्या लादे इधर से उधर दौड़ रहे हैं। काले बुरके में लिपटी हुई बेजान सी मूर्तियाँ भी सचेत हो गयीं। पानदान बन्द हो कर हाथों में लटक गये और जल्दी-जल्दी चलने लगीं और इस प्रकार विचित्र-विचित्र हरकतें आँखों के सामने आती जाती दिखाई पड़ने लगीं।

पान, बीड़ी, सिगरेट, चाय गरम, दूध गरम, रोटी, पूड़ी आदि स्टेशनों की मुख्य बोलियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार विचित्र भाषाओं की बोलियाँ सुनाई देने लगीं।

"ओ बुधइया क बाबू"

"अरे कलुआ क माई"

"हाय राम कहाँ छूट गवा"

"अरे चुप रहु बचवा"

इहर आव, ओहर जाव, केहर भटक गवा...यही आप बँगला, गुजराती, मद्रासी तामिल, कनाडी आदि सभी भाषाओं में जो कुछ भी सुन रहे होंगे समझ लिजिए, सभी का अर्थ कुछ न कुछ यही सब होगा।

यह थर्ड क्लास है, भीड़-भाड़ गठरी-मोटरी, पीपे, बरतन, टूटी हुई चारपाई, वाल्टी, अनाज, गुड़, राब के घड़े और इसी प्रकार का अंगड़-खंगड़ सब कुछ आपको मिलेगा। एक स्वर आय—ओरे इधर आव। धड़ाम से गठरी गिरी।

"अबे आँख नहीं है, देख कर सामान नहीं रखता"

"देखी कर रखत हैं समान, हमहू टीकट लीन हैं"
सामान भारी देख कर और बाहर फेंक न सकने पर विचार करते हुए बाबू साहब का पारा नीचे उतरने लगा, और पास बैठे हुए एक जेन्टल-मैन से टूटी-फूटी अँग्रेजी में यह कह कर अपने आपको सन्तोष देने लगे, "काँग्रेस राज्य है; साले गँवारों के मुख खुल गये नहीं तो देखते कैसे साहस होता है..." और चुपके से बीड़ी निकाल कर सुलगाई और पीने लगे इतने देर में सारा डिब्बा अंगड़-खंगड़ से भर गया। इधर तो यह हुआ और दूसरी ओर से शोर गुल सुनाई दिया। "तू कइसन फेंक दिया सामान" एक गँवार ने गरज कर कहा और यह प्रश्न अभी चरम सीमा पर न पहुँचा था कि एक सैनिक दिखाई दिया एक से दो और दो से चार हो गये। अब क्या था सब कड़क-कड़क कर डाटने लगे और इन फौजी सिपाहियों के सामने दस-बारह ग्रामीण जो इक्ट्ठा खड़े थे चुप

हो गये । हाथ-पैर ढीले हो गये और गठरियाँ लादे दूसरे डिब्बे पर आक्रमण का प्रयास करने लगे । टी० टी० खड़ा मुस्कराता रहा पर उसके मुख से यह न निकल सका कि यह डिब्बा मिलेट्री के लिए रिजर्व तो नहीं है । बैठ जाने दो क्या चार-छः सिपाहियों के लिए पूरा डिब्बा चाहिये । और सुनिये:—

"आगे बढ़ो यहाँ जगह नहीं है"

"सिर्फ एक आदमी के लिए, खड़े रहेगें भाई"

और इस पर भी जब अनुमति नहीं मिलती, खिड़की नहीं खुलती; तो वह एक दुखती रग दिखा कर कारुणिक भावनायें जागृत करना चाहता है और कहता है भाई। बच्चे साथ हैं । घर वाली साथ है, सामान भी कुछ नहीं है । पर लोग हैं कि टस से मस नहीं होते ।

इधर थर्ड क्लास के सामने यह सब कुछ हो रहा था पर ड्राइवर बड़े सन्तोष से खड़ा चाय का मजे ले जा रहा है। टी० टी० चहल कदमी कर रहे हैं । गार्ड अपना सामान रखा रहा है और पान चबाता जा रहा है । फर्स्ट क्लास के दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द । दो सज्जन बैठे गप्पे मार रहे हैं, चुहलें हो रही हैं । या फिर बड़े इतमिनान के साथ अखबार पड़ा जा रहा है । जासूसी और रोमांसिक उपन्यासों के पन्ने उलटे जा रहे हैं या फिर रेलवे टाईम टेबुल देखा जा रहा है और भी कुछ न सही तो बैरा हाथ जोड़े चाय की कस्ती लिए खड़ा है ! और 'साहब' अथवा 'बाबू' (जो चाहें कह लीजिए) टाँग पर टाँग रखे अध लेटे तौलिया से हाथ-मुँह पोछ रहे हैं ।

मेम साहब ने कलाई पर बँधी घड़ी देखी और खड़ी हो गई । साहब खिड़की तक पहुँचाने आये और अभिनय का प्रदर्शन होने लगा जो अँग्रेजी फिल्मों में पग-पग पर या कम से कम फिल्म समाप्त होने पर अवश्य होता है ।

लिजिए इनसे भी मिल लिजिए यह कोई नेता हैं । जो किसी के सेवा दल के आमंत्रित करने पर विराजमान हुए हैं । चुनाव निकट है और दलों को पूरा विश्वाश है कि इनकी उपस्थिति उसके पक्ष में एक डिग्री है । फूल मालाओं से लदे हैं, चेहरा साफ

दिखाई नहीं देता और नेता जी हँसते हुए थर्ड क्लास के सामने से होते हुए सब तमासे देखते चले जा रहे हैं।

देखने में सज्जन कपड़े लत्तो से सिजिल, माँग चोटी से दुरुस्त पढ़े लिखे होने के सब चिह्न प्रकट, रेलवे पुलिस का सिपाही और दो तीन टिकट कलक्टर उन्हें घेरे खड़े हैं। पर यह तो चुप हैं और उदास से दिखाई देते हैं।

"आप को पिछले जंक्शन से चार्ज देना होगा"

"अच्छा तो डब्ल्यू० टी० सफर करने के आदी हैं"

"इतना हमारे पास नहीं है"

"तो फिर चलिये रेलवे पुलिस स्टेशन"

इसी घबराहट, परेशानी, शोर-गुल, चीख पुकार, शान्ति और सन्तोष हिलते हुए रुमालों, के बीच सीटी बजी, गार्ड ने हरी झन्डी दिखाई और इञ्जन छक-छक करता चल दिया। मन चले जवान पावदान पर डन्डे के सहारे लटक गये। उनकी देखा-देखी कुछ और लोग भी दौड़े और इसी बीच थर्ड क्लास के डब्बे से प्रौढ़ अवस्था की अबला झाँक कर चिल्ला पड़ी—

"अरे रमैया के बापू बहुरिया की गठरिया छूट गई"

और बहुरिया दिल ही दिल में कह रही थी:—

प्लेट फरमा पर छुट गई गठरिया,
बबुला का जोड़ा मइया की बिन्दिया।
बिरना की दी भई चुन्दरिया,
प्लेट फरमा पर छुट गई गठरिया॥

—※—

मेरी हाबी

[डाक टिकट एकत्रित करना]

"हाबी अँग्रेजी भाषा का शब्द है, और अपनी समस्त टेकनीक के साथ बृटिश साम्राज्य की देन है। हमारे यहाँ की किसी भाषा में इसका ठीक-ठीक पर्याय-वाचक शब्द नहीं है। न तो 'दिलचस्प मसगले में वह बात है और न मनोरञ्जक अभिरुचि में, जो हाबी में है।

"हाबी का शब्द हमें अपना लेना चाहिए और उसका बहुवचन इत्यादि हिन्दी व्याकरणानुसार बना लेना चाहिए।"

"टिकट एकत्रित करने की हाबी समस्त हाबियों में वही गौरव रखती है, जो एक कबीले में उसका सरदार।

—स्टेनली गीबन

सैकड़ों हाबियाँ हैं। जिन्हें हम दो तीन भागों में अलग-अलग रख सकते हैं, और पूरी आशा है कि प्रत्येक भाग अपने स्थान पर एक अजायब घर से कहीं अधिक आकर्षक होगा। (१) वस्तुएँ एकत्रित करने का काम। जैसे विभिन्न पौंदों और पेड़ों की पत्तियाँ और फूल इक्ट्ठा करना, कौड़ियाँ, घोंघें; तितलियाँ, लेबिल, रैपर, सिगरेट और दियासलाई के पैकेट और डिब्बियाँ, फिल्मी स्टारों के चित्र इनके अतिरिक्त अन्य विख्यात व्यक्तियों के चित्र, प्राकृतिक दृश्यों की तस्वीरें सिक्केऔर डाक टिकट इक्ट्ठा करना आदि। (२) कुछ न कुछ करते रहने और बनाने का काम। जैसे लकड़ो का काम, फ्रेट वर्क, लुहारी, ड्राइंग चित्र-कला, नक्कासी, फोटो ग्राफी इत्यादि। (३) पढ़ने-लिखने से सम्बन्धित काम जैसे मासिक पत्रिकाएँ समाचार पत्रों की कटिंग इकट्ठा करना, उपन्यास पढ़ना, लेख लिखना, गल्प पढ़ना और शौकिया लिखना, जीवन पढ़ना, कवियों की कविताएँ चुनकर सुरक्षित कर लेना विख्यात शिक्षार्थियों, दार्शनिकों आदि के आख्यान, उद्धरण आदि इक्ट्ठा करना। (४) मनोरञ्जन सम्बन्धि, शौकिया काम जैसे नृत्य, गायन, अभिनय, रंग-मंच पर नाटक खेलना, खेल-कूद में दिलचस्पी लेना, लतीफे और चुटकले कंठस्थ करके उन्हें सुनाते रहना आदि। इन सब में सिक्के और डाक टिकट इकट्ठा करना, फोटो-ग्राफी, फ्रेटवर्क और इसी प्रकार की अन्य वस्तुएँ जो एकत्रित करने से सम्ब्रन्धित हैं, बहुत सामान्य भी हैं और प्रिय भी।

मनुष्य अपनी रुचि अनुसार अपने अवकाश के क्षण दिलचस्प ढंग से व्यतीत

करने के लिए कोई न कोई हाबी चुन लेता है। मुझे बालपन से वस्तुएँ एकत्रित करने और उन्हे ढंग से रखने का बड़ा शौक रहा है। फलस्वरूप मैंने डाक टिकट एकत्रित करना आरम्भ कर दिया, और एक लम्बी अवधि तक मेरी यही आकांक्षा रही और इसी को शानदार सफलता समझता रहा कि अधिक से अधिक टिकटों का भाण्डार हो जाय। इसकी चिन्ता नहीं कि टिकट कहाँ के हैं, कैसे हैं। इनका कोई महत्त्व भी है या नहीं जिसका फल यह हुआ कि मैंने बहुत जल्द, पाँच हजार से अधिक टिकट जमा कर लिए, जिनमें अधिकांश अपने देश भारतवर्ष के थे।

एक दर्जन से अधिक ऐसे मित्र भी पैदा हो गए जिनसे मैं टिकटों का आदान-प्रदान करता रहता। ऐसे मित्र अपने देश के अधिक और विदेश के केवल तीन। देशी साथियों में श्री सुन्दरम्, मद्रास; और विनोद चन्द जम्मु, "इस हाथ दे उस हाथ लें" पर विश्वास रखते हैं। इधर टिकट भेजे नहीं कि उधर से टिकट आ गये। अन्य लोगों के सामने व्यापार की बातें होती हैं। पहले से ठीक-ठाक कर लेते हैं कि कितने टिकट भेजोगे और कितने बदले में लोगे।। इन लोगों में कुमारी ऊषा कलकत्ता का नाम लेना आवश्यक है। चिट्ठी-पत्री तो बड़े रोब से लिखती हैं, परन्तु उनका स्वाभाव बहुत अच्छा प्रतीत होता है। यदि उन्हें दो चार टिकट भी भेज दो तो वह ब्याज सहित टिकट लौटा देती हैं।

विदेशियों में दो नवयुवक मित्र हैं तथा एक नवयुवती और ऐसा प्रतीत होता है कि तीनों स्पेसल टिकट इकट्ठा करने के आदी हैं। इसलिए कि वे कभी हिन्दुस्तान के पहाड़ों, नदियों अथवा प्राकृतिक दृश्यों वाले टिकट माँगते हैं। इसी प्रकार जर्मन नवयुवती कभी सिल्वर जुबली के, कभी पशुओं वाले और कभी आदि-वासी जातियों के टिकट मँगाती हैं। हमारा विश्वास बढ़ता गया और हम समझते रहे कि हमें इस कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

अकस्मात् हमारे एक अध्यापक ने कक्षा में एक भाषण दिया तो आँख खुली और समझ में आया कि अब तक जो कुछ मैं करता रहा हूँ वह अपनी अभिरुचि की तृष्णा बुझाने के लिए था। कुछ और इस अभिरुचि को ऊँचे स्तर तक पहुँचाने के लिए मुझे कुछ और भी करना है। अब तक मैं समझ रहा था कि इसके लिए केवल एक अलबम की आवश्यकता है। पर उन्होंने बताया कि (१) टिकटों

को धोने के लिए पानी से अधिक उपयोगी व्यंजीन-लोशन है। इसलिए कि उससे टिकटों के मामूली दाग धब्बे दूर हो जाते हैं। (२) टिकटों को हाथ से न छूना चाहिए, वरन् चिमटी से काम लेना चाहिए। (३) सिलेट पर न चिपका कर शीशे या चमक दार टीन के तख्ते प्रयोग करना चाहिए और ऐसा करने से टिकटों का रँग निखर जाता है। एलबम में टिकट चिपकाने के लिए खाली गोंद के स्थान पर स्टैम्प हींजेज काम में लाना चाहिए। (४) टिकटों में परफोरेसन केवल उन्हें अलग करने में ही सहायता नहीं देता वरन् उनकी नियत संख्या किसी न किसी ध्येय-वस है (५) डाक टिकटों के कागज पर एक वाटर-मार्क होता है जो प्रत्येक देश का अपना-अपना होता है। (६) वह वाटर मार्क पर्यवेक्षक से उसका पता लग जाता है, और यदि संयोगवस किसी देश के टिकट पर वह वाटर-मार्क नहीं है जो उसने अपने लिए नियत कर रखा है तो ऐसा टिकट जाल होगा। और वह टिकट जमा करने वालों के लिए काफी दिलचस्प और बहुमूल्य होगा। (७) एक आतसी शीशे की आवश्यकता पड़ती है जिससे टिकटों पर छपे धुँधले अक्षर भली-भाँति देखे जा सकते हैं। (१०) इसी प्रकार यह भी ज्ञात हुआ कि टिकट एकत्रित करना तो एक सरल सा काम है पर उसके सम्बन्ध में जानकारी के साधन प्राप्त करना एक बड़ा कठिन काम है और वह एक कला है। (११) इस सम्बन्ध में उन्होंने बताया कि अपने देश के टिकटों के सम्बन्ध में भारतीय डाक घरों का इतिहास और सामान्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए डब्यलू० जे० हार्डी की 'स्टैम्प कलेक्टर' नामक पुस्तक और लंदन से प्रकाशित होने वाली 'स्टेनली गिबिन' की मासिक पत्रिका बड़ी उपयोगी है।

अब मेरी अभिरुचि में एक बेचैनी और उससे अधिक एक नई उमंग पैदा हुई। विश्वास कीजिये किसी दरिद्र बाप को अपनी लड़की के लिये दहेज इकट्ठा करने के लिये ऐसी चिन्ता न होती होगी, जैसी मुझे इन समस्त वस्तुओं को इकट्ठा करने में हुई है। मैंने नाना प्रकार के प्रयत्न करके ये सब वस्तुएँ बड़ी कठिनाई से इकट्ठा कर लीं। और अब पुराने अल्बम की वह दशा हुई जो दीपावली के अवसर पर गृहस्थी की होती है, सब टिकट अल्बम के पन्नों से छुड़ाकर एक जगह किये, मानों कमरो का सामान आँगन में आ गया। व्यंजीन-लोशन से सब टिकट नहलाये गये

और शीशे के एक बड़े तख्ते पर चिपका दिये गये । सूख जाने पर देखा तो सचमुच उनका रंग निखर आया था और पुराने बूढ़े टिकटों पर जवानी का रंग फिरने लगा था ।

इसके बाद संकेतानुसार टिकट अलग-अलग छाँटे गये । दैनिक प्रयोग के साधारण टिकट एक ओर तथा विशेष अवसरों पर प्रकाशित होने वाले दूसरी ओर। बोगज़ टिकट और जाली टिकट छाँटने में अवश्य कठिनाई हुई, इसलिये कि बोगज टिकट यों भी संख्या में बहुत कम होते हैं और शायद ही कभी-कभी मिल जाते हैं । बड़ी कठिनाई से मिस्र देश का एक टिकट मिला और एक अपने देश का । स्वतंत्रता के बाद प्रकाशित होने वाले टिकटो में एक आने वाला, वह टिकट मिला जिस पर महात्मा बुद्ध का चित्र है । ठीक टिकट में महात्मा बुद्ध का दाहिना हाथ फैला है और बोगज़ में बायाँ हाथ फैला है । जाली टिकट अब तक तो शून्य हैं शायद कभो मिल जाँय, हमारा प्रयास चल रहा है ।

इस समय मेरे पास लगभग एक हज़ार से अधिक टिकट हैं, परन्तु महत्ता और सम्मान में उन पाँच हज़ार टिकटों से अधिक बहुमूल्य हैं । रानी विक्टोरिया के लारल स्टाम्प के सेट में केवल एक की कमी है । प्राचीन देशी रियासतों में चरखारी का वह टिकट भी है जिसे प्रकाशित करने की बृटिश सरकार ने केवल एक बार स्वीकृति दी थी ।

यों तो मुझे मेरा अल्बम बहुत प्यारा था पर अब तो यह दशा है कि जौहरी शायद अपने जवाहरातों के डिब्बों की ऐसी रक्षा न करता होगा जैसी मुझे अपने अल्बम को करनी पड़ती है । अवकाश समय में जब कभी अपना अल्बम खोलता हूँ तो सब से पहिले मस्तिष्क पट पर वह घटनायें आती हैं, जो टिकट जैसी उपयोगी वस्तु को पैदा करने में प्रस्तुत हुईं । चार्ल्स द्वितीय के राज्यकाल की पेनी पोस्ट स्कीम (१६८०) फ्रान्स की शाव स्कीम (१७८३), इटली में बोललीटोर का प्रयास और अन्त में एक साधारण से द्वीप सारडीनिया की बुद्धिमता की प्रशंसा करनी पड़ती है कि उसने सन् १८६८ ई० में डाक टिकट चला दिया । १८३७ में मिस्टर स्टेड का प्रस्ताव, सर रोलैंड हिल की कोशिश, कैबिनेट सदस्यों का विरोध और अन्त में १८४० में मूल रेडी, लिफाफे जैसे रैपरों, और डाक टिकट का प्रचलन, १८५४ ई०

में अपने देश में डाक टिकट का चलना आदि सब कुछ हमारी दृष्टि में होता है और ऐसा प्रतीत होता है कि यह लम्बी और शुष्क कथा किसी रोमांसिक उपन्यास से अधिक दिलचस्प और मनोरञ्जक है।

टिकट एकत्रित करने का विचार किसने किया और ये कार्य किस प्रकार चल पड़ा और किस प्रकार विकास करता रहा, इन सब के उत्तर अपने स्थान पर स्वयं बड़े दिलचस्प हैं। .इसके लिए हम एक बार क्वीन एनी के शासन काल में पहुँच जाते हैं जब राजकीय कर्मचारी, समाचार-पत्र और रैंपर इकट्ठा करने के आदि थे। कभी हमारे सामने पंच की ये टिप्पणी होती है।

"आज कल बेकार और निश्चिन्त लेडियों को एक नया पागलपन सूझा है कि वे मलिका के सिर जमा करने की उससे अधिक आकांक्षा रखती हैं और अभिलाषी हैं, जितनी हेनरी अष्टम् को उनके सिर उड़ा देने की चेष्टा थी।"

कभी मैं सोचने लगता हूँ कि वह नवयुवती अबला कितनी साहसी थी जिसने टिकट प्रचलन के केवल एक वर्ष पश्चात् १६००० टिकट इकट्ठा कर लिए, जो उसके ड्रेसिंग रूम की सजावट बने थे। टन ब्रिज स्कूल का वह बालक जिसने पहले पहल टिकटों को एक अल्बम में चिपकाया था, उसका चित्र हमारे सामने होता है।

ये टिकट जो देखने में नीर्जीव और मौन धारण किए हैं यदि आप इनका अध्ययन करें तो ये इतिहास के पन्ने हैं। इनके नैपथ्य में बादशाहों और शासकों के जीवन की अद्भुत कथाएँ हैं। कागज के ये टुकड़े हमें यू० एस० ए० की खान-जंगी की कहानी सुनाते हैं और जर्मन इम्पायर के जन्म की कथा। देशों और राष्ट्रों के रहन-सहन, धर्म, समाज, साहित्य और काव्य-कला की कहानियाँ बताते हैं। दूर क्यों जाइये अल्बम खोलिये अपने देश के टीकट निकालिये ये स्वतंत्रता-संग्राम, विख्यात कवि और भक्त, पंचवर्षीय योजना और कांग्रेस राज्य के द्वारा की गई प्रगति का इतिहास बतायेंगे। आपको अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों का आभास दिलायेंगे।

यह मेरा मनोरंजक कार्य, मेरी हाबी और ये सब उर्पयुक्त बातें मुझे मेरा अल्बम बताता है वे टीकट बताते हैं जिन्हें आप व्यर्थ समझते हुए फाड़ कर फेंक देते हैं।

—❀—

"मुल्ला जी"

"कोदो दे के पूत पढ़ाये सोलह दूनी आठ"

मुल्ला जी को ऐसे देखिये तो भीगी बिल्ली। सीधे सादे, शरीर केवल हड्डियों का ढाँचा। यदि कुर्त्ता उतार दें तो सन्देह हो जाय कि कब्र दंड़ से डरकर कोई मुर्दा भाग निकला है। पिचके हुए गालों के साथ पिचका हुआ दिमाग। कजबहसी— और कठहुज्जती के सिवा कुछ जानते ही नहीं।

जब देखिए गरेबान-चाक अर्थात् शेरवानी और कमीस के बटन खुले हुए क्या, सिरे से नदारत। टोपी रखने की धज नीराली गुद्दी की ओर झुकी हुई और अँग्रेजी बालों का दो सिंगा बाहर निकला हुआ। जो कभी तेल या कन्घे का कृतज्ञ नहीं होता। टोपी में मियाँ जाहिर दारबेग की भाँति एकसरी या दोहरी बेल तो क्या अलबत्ता मैल ऐसी गहरी जमी हुई कि दूर से बेल ही मालूम हो। मैलखुरे कपड़े की शेरवानी जिसे आप टाट और खारुआँ दोनों ही कह सकें, जो धोबी के एहसान से निश्चिन्त। राल और पान की पीकों से दागदार कहिए या फूलदान, मुल्ला जी के विचार से दोनों ही ठीक। पायजामे का एक पायचा ऊँचा और दूसरा नीचा। स्कूल की घंटी की टन-टन के साथ मुँह खोले बौखलाये चले जा रहे हैं। रास्ते में अपने एक मित्र से बातें करने लगे। इधर बातें कर रहे हैं, उधर मसूड़ों का उभरा हुआ लाल भद्दा सा मांस दिखाई दे रहा है। शरीफे के बीजों से अधिक काले नुकीले दाँत बाहर निकल आए और बातों की हवा के साथ-साथ पीकों की बदबूदार फुवार। इस सूरत और हुलिये पर भी मुल्ला जी को नाज है अपनी प्यारी-प्यारी सूरत का।

अगर कोई उन्हें प्यारे साहब कह दे तो बाछें खिल जाती हैं। भला कोई उनसे पूछे कभी ऊँट देखा है।

मुल्ला जी १५-१६ वर्ष से पढ़ाते हैं। और क्या पढ़ाते हैं इसकी भी एक झाँकी देख लीजिए। पहली बात हाई-स्कूल वर्ग की एक कक्षा में उर्दू पढ़ाने को मिल गई। बस क्या था झूम गये जैसे किसी सूम की धरोहर मुल्ला जी के हाथ आ गई हो। एक सप्ताह तक तो अपनी योग्यता का प्रोपैगंडा करते रहे। जब शनिश्चर आया, तो मानो मुल्ला जी पर शनिश्चर सवार हो गया। घर जाने की सूझी। घर जाना कोई खेल तो था नहीं, चीनी हो, कत्था-डली हो, तम्बाकू हो, मिट्टी का तेल हो अथवा न जाने क्या-क्या और यह सब कुछ ऐसे समय में जब मनुष्य के साँस लेने पर भी प्रतिबन्ध हो। पढ़ाने का प्रश्न ही क्या कई लड़कों को एक-एक वस्तु लेने भेज दिया और अगर कहीं बात पड़ गई तो "बरब्बे काबी' कह कर कानों पर हाथ धर लें कि जो कभी किसी लड़के से कोई काम लिया हो। ऐसी बातें कर लेना और बातें बनाना तो उनकी प्रवृति है। क्लास छोड़ चीनी की पोटली साइकिल के बीच वाले डंडे पर मिट्टी के तेल का पीपा केरियर पर कत्था-डलीऔर तम्बाकू की गठरी हैंडील पर और उस पर फटा कम्बल, सीट पर आप बैठे चरख-चूँ करती हुई साइकिल पर लिल्ली घोड़ी बने मुल्ला जी अपने घर को जा रहे हैं।

रविवार का दिन बड़े मजे से घर पर बिता गाँव भर में घूम-घूम कर विज्ञापन करते रहे कि अब सम्मान मिला है १५ वर्ष के बाद। प्रोफेसर हो गया हूँ।

सोमवार का दिन आया। १२ बज चुके हैं। लड़के मँड़रा रहे हैं। खुदा-खुदा करके मुल्ला जी बौखलाये हुए क्लास में पहुँचे, दाँतो और होंठो पर लाल गहरी तह जमी हुई थी, आँखों से कीचड़ बाहर निकल-निकल कर उनकी गंदगी की दाद दे रहा था, पर बड़े जोश में बोले—

"हाँ भाई! क्या पढ़ाना है?"

"जी पद्व्याख्या करने को दी थी आपने" एक लड़के ने कहा।

"क्या है कहा?" मुल्ला जी बोले।

---

* काबे का स्वामी। मुसलमानों में सौगंध खाने का एक ढंग।

"मोहन ने रोटी खायी" उसी लड़के ने बताया ।
कुछ लड़के मुसकराने लगे, और कुछ कानाफूसी करने लगे । मुल्ला जी तनिक चौकन्ने होकर बोले, 'हाँ तो जुमला है, "मोहन ने रोटी खाया" इस पर शंकर हँस पड़ा । मुल्ला जी समझ न सके बड़े जोर से मेज़ पर हाथ पटका । लड़के चुप हो गये । मुल्ला जी ने फिर वाक्य दुहराया । अब तो लड़कों ने उनकी कमजोरी भाँप ली । शंकर बोला "मुल्ला जी ! रोटी खायी या रोटी खाया ?" नासिर ने कहा, "वाह ! रोटी खाया, खायी कैसे ?" और सारा क्लास 'खाया, खायी' की लकार करने लगा । मुल्ला जी गरज कर बोले, 'वाह क्या मज़ाक मचा रखा है......"सरवर ने कहा "मुल्ला जी ! जुमला गलत है" मुल्ला जी ने पूछा, "क्यों, कैसे, किस तरह ?" सरवर ने कहा, "मोहन ने रोटी खायी होना चाहिए ।" शंकर व्यंग करते हुये बोला, 'जी नहीं, अगर मोहन की जगह मोहनी होती, तो जुमला ऐसे होता 'मोहनी ने रोटी खायी' नहीं तो रोटी खाया ।"मुल्ला जी ने कहा, "बिलकुल ठीक ।"

अब तो सारा क्लास हँस पड़ा । सभी लड़के जान गये मुल्ला जी निरे मूर्ख हैं । उन्हें व्याकरण के सरल नियम भी नहीं आते । सब लड़के हँस रहे थे, डेस्क बज रहे थे, मुल्ला जी क्लास छोड़ कर बाहर चले गये कहीं दूर से यह स्वर सुनाई पड़ा । "कोदो दे के पूत पढ़ाये सोलह दूनी आठ"

—❀—

धोबी

"कोई देश या राष्ट्र उस समय तक समुन्नत नहीं कहा जा सकता जब तक श्रमिक और प्रोतारियत वर्ग समुन्नत न हो।"

"किसी देश के नैतिक स्तर का शुद्ध मापक उसके श्रमिक वर्ग की नीति है।"

फं० नं० ६

लकीर के फ़कीर साधुओं के हाथों के कमंडल हों और शरीर पर गेरुए वस्त्र, पर समय परिवर्तन के साथ आज का धोबी अब न भोंदू है और न बुद्धू ; न खैराती है न वफाती; न जुमराती है न जुम्मन; न महँगे हैं न सहते; न कढ़ले है न घसीटे; वरन् राम, लक्षमण, कृष्ण, सुरेश और रमेश।

नाम की इस तबदीली के साथ उस का कैंडा भी बदल गया अब न उसके सर पर बड़ा सा पग्गड़ है और न कानो की लबों पर मुँदरे या गुइँठे, न हाथों में कड़े हैं और न ओंठ पर मूछों के बड़े-बड़े गूँजे और न कल्लों पर दाढ़ी की वह सूरत है जो बरसात का दौंगरा पड़ जाने के बाद धर्ती की हो जाती है, कि पपड़ियाँ उभर रही हों और नीचे घास उग रही हो, बल्कि सफा चट या मक्खी मार्का मूछें शरीर पर न तो मिर्जई है और न बंडी उसकी जगह कमीज और बुशर्ट ने ले ली है। धोती ने इस मामले में बड़ा साहस दिखाया जो अब भी अपना स्थान बनाये हैं। यद्यपि पतलून, नेकर और जाँघिया की ओर से ताबड़-तोड़ हमले पर हमले हो रहे हैं।

साइकल की घंटी बजी और आप के कौन ? कहने पर जवाब मिलेगा "धुब्ब... बी...ई" और आप देखेंगे कि गठरी सर पर होने के बजाये हाथों पर होगी इसलिये कि उसे डर है या तो उसकी माँग बिगड़ जायगी या आप के कपड़ों में सिर का तेल लग जायगा।

आज का धोबी सामन्त वाद की तमाम परम्पराओं से बहुत कुछ मुक्त होता सा दिखाई देता है, बोजुआ साम्प्रदाय के उन समस्त बंधनों को भी तोड़ रहा है,

जो आदि-काल से इन लोगों ने उस के लिए लगा रक्खे थे; और इसीलिए अब वह "जजमानी" में विश्वास नहीं रखता, और न वह "छिमाही" की प्रतीक्षा करता है, कि आप दस-बीस सेर मोटा झोटा अनाज देकर छः छः महीने कपड़े धुलाते रहें। अब उस के दिमाग से "पफारू" बने रहने की भावना कम होती जा रही है। वह अब इस आदर्श का दृढ़ता से उपासक बन रहा है, कि वह एक 'कुशल श्रमिक' है। हाथ पैर चलाता है, मेहनत करता है, और उसका बदला पाता है जो उसे भर पेट मिलना चाहिये; और शायद इसीलिए अब वह धुलाई मिलने पर ऐसे वाक्य और बोल नहीं निकालता कि आप उस पर बड़ी मेहरबानी कर रहे हैं। धोबी से अब आप इस की आशा न करें कि वह इस प्रकार कहेगा "नीके बने रहैं बाबू" या धोबिन से यह उम्मीद करें कि वह नेग निछावर के लिए मुँह फैलाये है और टके दो टके मिल जाने पर, "दूधन नहाओ, पूतन फलो" कहती हुई खुशी-खुशी गंदे कपड़ों की लादी उठा कर चल देगी। यहाँ तक या इससे कुछ और आगे आज का धोबी रूढ़वादी और जजमानी पर विश्वास रखने वाले धोबी से पृथक हैं, जो कुछ विचारों से बहुत अच्छा है। "इससे कुछ और आगे" की परिपूर्ण परिभाषा देना तो बड़ा कठिन है पर उदाहरण के लिए यह समझ लीजिये कि अगर रविवार के दिन कपड़े देने का वादा करेगा तो बुधवार या गुरुवार से पहले न देगा, और इस विलम्ब का कारण देते समय न तो वह घर वाली की बीमारी का बहाना करेगा और न स्वयं इसका शिकार होगा वरन् हाकी या फुटबाल मैच में हाथ उतर जायगा या पैर में मोंच आ जायगी। दूसरे उदाहरण से यह बात इससे अधिक स्पष्ट हो जाती है कि वह काम करने से पहले मजदूरी माँग बैठता है, और मैले कपड़े सँभालते सँभालते आप से बिना संकोच पेशगी का तक़ाज़ा करेगा। इस प्रकार "बाबू कुछ एडवंस मिल जाता तो अच्छा था।"

कुछ बातें ऐसी हैं, जो आज और कल के धोबी में बहुत कुछ समानता रखती हैं। और ऐसा प्रतीत होता है, कि यह उस की घुट्टी में पड़ी हैं, और उसे पैतृक देन हैं, जो उसे प्राण से अधिक प्रिय हैं। उदाहरगतः वह सूर्य की रोशनी में धुले कपड़े बहुत कम लायेगा। सूर्य अस्त होने के पश्चात् धीमे-धीमे अंधेरे में। वह स्वयं कभी नहीं बतायेगा, कि अमुक कपडा जल गया है, खराब हो गया है,

दाग धब्बे पड़ गये हैं, या गधा चबा गया है। आप चाहे कितनी ही चतुरता से लिखें और कितनी ही बार कपड़े गिनवा दें, और चलते-चलते कह दें कि देखो भाई, दो रूमाल, दो जोड़े मोजे और दो टाइयाँ भी हैं, ज़रा ध्यान रखना; पर धुलकर आने पर जब उन्हें मिलायेंगें, तो रूमाल और मोज़ा अवश्य गायब होगा; और टाई पर इस्त्री कुछ न कुछ शरारत अवश्य कर देगी।

एक मज़ेदार बात और सुनिये। कार्तिक का अन्तिम सप्ताह है, हल्की-हल्की सर्दी आ गई, रात को आप बड़े इतमिनान से सोने का प्रण करें कि आठ बजे तक डट के सोयेंगें, इसलिये कि कल रविवार है। छुट्टी का दिन है, सब काम इतमिनान से होंगें, पर दुर्भाग्यवश आपका यह प्रण इस भाँति टूट जायेगा, कि आप पलंग पर करवट ही बदल रहे होंगे, कि आप जगा दिये जायेंगें, कि "बाबू धोबी आया है।" आप इस अवसर पर मन ही मन में उसकी ईमानदारी, सच्चाई, और समय-पालन आदि की प्रशंशा कर रहे होंगे। आप को पूरा विश्वास होगा कि जो रूमाल और मोजे लाने को कह गया था, बिचारा प्रातःकाल ही ले आया, और यह सोच कर नौकर से कह देंगे कि "भाई लेलो, रूमाल और मोजे लाया है" तब आप को यह जवाब मिलेगा कि "नहीं बाबू, वह आप से मिलना चाहता है और एक बार फिर आप यह सोचने लगेंगे, कि शायद छमा प्रार्थी है, और उस के ऊँचे आचरण का रुआब आप पर छाने लगेगा, और इसी दशा में किसी न किसी प्रकार बाहर उठ कर जायेंगे, और खाली हाथ देख कर आप की कलपना को धक्का लगेगा। आप का चेहरा देख कर वह ताड़ जायेगा, जिसका उतार वह इस प्रकार करना चाहेगा :—

"बाबू एक गाहक ने बढ़ा तंग कर रक्खा है"

कौन !

"अरे वही न बाबू जो मिनुस्पलटी में काम करते हैं, भला सा नाम है"

"फिर मुझसे मतलब"

"अब धोबी को अनुमान होगा कि यह वार गलत पड़ रहा है। इतनी देर में वह इधर-उधर घूम फिर कर मतलब पर आने वाला ही है, आप कहेगे "तो फिर क्यों आ गये सबेरे-सबेरे"

"बाबू बात यह है, कि आप बीस रूपया दे दीजिये"

"किसलिये ! धुलाई का सारा हिसाब साफ है सब बेबाक कर दिया है, बल्कि..."

"तो सरकार क्या मैं कुछ कह रहा हूँ"

"और क्या कहोगे ?"

"अरे हजूर सालयाना फीस लग रही है"

और अब आपका बदलता हुआ चेहरा देख कर धोबी समझ जायगा कि वार निशाने पर पड़ रहा है। और वह इस प्रकार आगे बढ़ेगा।

"सरकार आप ही ने उसे दसवाँ पास कराया। मैं तो कह रहा था अब रहने दे फिर आप ही ने कहा दो साल और सही, अब बारहवाँ दरजा है। बस कान पकड़ा जो आगे पढ़ाऊँ......"

आप चुप-चाप कुछ सोच रहे होंगे, ओर धोबी मन ही मन खुश हो रहा होगा कि वार निशाने पर ठीक बैठा।

आप अन्दर से आकर दस-दस के दो नोट धोबी साहब के हाथ पर रख देगें। यहाँ पैंट वाला और धोती वाला धोबी दोनों एक स्तर पर आ जाते हैं; अन्तर केवल इतना है, कि धोती वाले को जब रूपये कि आवश्यकता होती है, तो उसकी घर वाली माँदी हो जाती है, और पैंट वाले को फीस की, हाउस टैक्स की, या जात बिरादरी के किसी समारोह में चन्दा देने की।



काबुली-वाला

"साहुकार और महाजन श्रमिकों की छाती से जोंक के समान चिपटे हैं काबुली-वाला भी एक काले नाग से कम नहीं है।"

अश्चल मशहूर है "जबर्दस्त का ठेंगा सिर पर" और काबुली-वाला पर कुछ लिखते समय तो इस कहावत का अनुमान बहुत कुछ ऐसा ही हो रहा है कि शायद यह ऐसे ही अफसरों के लिए बनाई गई होगी या स्वयं ऐसे ही अफसरों ने इसे जन्म दिया हो । बात कुछ पहेली सी बन गई है, अब 'बूझ' सुनिये स्वर्गीय डॉ० टैगोर ने हमारी भाषा की एक गलती की और इस मामले में वे सामान्य बंगालियों के स्तर से ऊँचे न उठ सके, अर्थात काबुल के रहने वाले के लिए "काबुली" के स्थान पर 'काबुली-वाला' बनाकर एक कहानी लिख दी और आजतक किसी ने न टोका कि 'काबुली' अथवा 'काबुल-वाला' होना चाहिए । काबुली-वाला गलत है । फिर भला हमारा क्या साहस कि इसे शुद्ध कर सकें । और फिर ऐसी दशा में तो यह काम और कठिन हो जाता है, जब इस काबुली-वाले पर जनता का अधिकार हो चुका हो । कहानी की फिल्म बन चुकी हो और यही शब्द जनता (शिक्षित-अशिक्षित दोनों ही) की जीभ पर हो ।

आप यों समझिए की यह ठेंगा सिर पर केवल इसलिये ले लिया गया है कि जनता समझ ले कि हम जिस काबुली-वाले का परिचय उनसे करा रहे हैं, यह काबुली-वाला यद्यपि वही रहमान तो नहीं है पर है उसी जाति का । चाहे वह करीम हो या रहीम, गुल खाँ हो या आरजुमन्द खाँ उसी देश और उसी भूमि काबुल का ।

यदि सब को सलाम प्रणाम करने का आपका स्वभाव बन चुका है और संयोग वश इसी भावना से वाध्य हो कर आपने किसी ऐसे व्यक्ति को सलाम कर

दिया जो आपको अपने प्रदेश का न प्रतीत होता हो और आपके सलाम का उत्तर देने के तुरन्त ही पश्चात् "खयारीयत ही" के बोल सुन कर आप भौचक्का रह जाय तो समझ लिजिए की यह काबुली-वाला है ।

जन्म भूमि पर जान देता हो या न हो पर देशी परम्पराओं, रीति-रवाजों और संस्कृति पर मर मिटने वाला अवश्य प्रतीत होता है । आज इस वीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक युग में, नित नये फैशन बनाने वाले काल में, वही ढीली-ढ़ाली शलवार, जिसका एक एक पैंचां फैलाने पर चार छे फीट जगह समेट ले । यह बात दूसरी है कि आप इसे "पामोस मुर्गा" कहें या मिस्त्र पिरामिड का नमूना समझ बैठें । घुटनों से नीचे लटकती हुई, कुर्ते से अधिक ढीली कमीज और कफ देखिए, तो डेढ़ दो इंच लम्बी-लम्बी चिटों से सिले हुए । बंडी नुमा डबल वेस्ट-कोट जिसे काबुली-वाला बनाने के लिए शीप के चमकदार बटनों की बेल टांक ली है । फाउन्टेन पेन रखने के लिए जेबों के पास लम्बा सा खोल जिस पर लाल पीली नीली पोतका भद्दा सा काम । सर पर पट्टे और टेढ़ी मेढ़ी पगड़ी, पैरों में लम्बा चौड़ा विहंगम सा सैंडिल और हाथ में तस्बीह । ये सब चीजें उस अद्भुतता पैदा करने के लिए और उसे काबुली-वाला बनाने के लिए कम न थीं कि एक तमाशा और देखिए । यानी नाक के नीचे मूछों का बीच वाला भाग ऐसा सफा चट की बालखुरे का रोग मालूम हो । तोंद के ऊपरी भाग पर कमीस में पतली पतली प्लेटें और उनपर पड़ा हुआ चाँदी का चौकोर ताबीज, तो यह है आपका काबुली-वाला जिसे जनसाधारण मुगलिया या आगा कहते हैं और ये हैं उसके चित्र की धुँधली रेखायें ।

इस चित्र का एक और अंग देखिए । प्रातः काल का सुहावना समय हो, या दाँत कटकटा देने वाला जाड़ा, वर्षा हो या गर्मी काबुली-वाला साइकिल पर सवार, हैंडिल पर मोटा सा डंडेनुमा बेत आड़ा तिरछा लटकाये बड़ी तेजी से भाग रहा होगा । दूर से उसके फैले पैंचे, नाव का पाल और डंडा पतवार प्रतीत हो रहा होगा और वह दौड़ा जा रहा है कोठियों और ऊँचे-ऊँचे बगलों के—सागिर्द पेशा खपैरैलों तक या किसी क्लर्क के मकान या किसी ऐसे ही मध्यम श्रेणी में तीसरे दर्जे के व्यक्ति की चौखट तक; कि उसके पलंग छोड़ने के पहले ही उसे वहीं । पकड़ ले

इस चित्र से सम्भव है कि एक रंग और फूट निकले, कि उसके कंधे पर झोला है और वह आवाज लगा रहा हो "कबुल की असली हींग" और इस आवाज पर स्वागत् करने वाले से कह रहा हो, "बाई ! अंगूजा है! लंगगूजा"। जब वह उसका मुँह ताकने लगे तो हँस कर कहदे "बाई ! घबराओ नई। हींग ही हींग और कोई दूसरा चीज नई" जिसके लिये उर्दू के एक महा कवि डा० इकबाल कह गये हैं।

बसते हैं हिंद में जो ख़रीदार ही फ़कत
आगा भी लेके आते हैं अपने वतन से हींग

हो सकता है कि कभी-कभी यह बोल भी आप अपनी भाषा और उसकी भाषा-शैली में सुन सकें।

मेरा नाम अबदुलरहमान, मैं हूँ पिसते वाला पठान

और आपके लिये फैन्सी ड्रेस शो में यह संकेत उपयोगी बन सके और आप काबुली वाला बनकर रंगमंच पर इस भाँति बोल रहे हों।

"बाई ! मैं काबूल से आया, पिस्ता लाया, बदाम लाया, उखरोट लाया और काजू लाया। हमारा देश चलो मुफ्त काओ, होर मुटह ओ जाओ......कसम से अबी अबी काबूल से ताज़ा मीवा लाया।"

इसके चित्र की रेखायें बनाने में वे किस्से भी रंग भरते हैं जो उनकी बुद्धि और विवेक की व्याख्या करने में बड़े सहायक हैं और हमारे प्रदेश में तो ऐसे किस्से बहुत प्रसिद्ध हैं। नादिरशाह से लेकर रहमान मेवा फरोश तक। उदाहरगतः इनमें से कुछ पढ़िए—नादिरशाह के बारे में यह प्रसिद्ध है कि अपने आक्रमण—समय में, जब वह दिल्ली में ठहरा था तब अकस्मात् उसके उदर में पीड़ा उत्पन्न हुई। मुहम्मद-शाह के शाही हकीम ने कोई फँकुनी "गुलकन्द" के साथ खाने को दी। और बड़ी सावधानी से काम लिया कि तौलने के लिये काँटा भी साथ रख दिया कि एक तोले से अधिक न होने पाये इसलिये कि अधिक हो जाने पर हानि का भय था। पर हुआ क्या, कि नादिरशाह ने फँकनी तो फाँक ली और जवाहिरात से जड़े हुए मर्तबान में हाथ डाल दिया जिसमें गुलकंद रक्खा था, खाना आरम्भ कर दिया। खाता जाता था

और कहता जाता था। "बड़ा स्वादिष्ट हलवा है" और यहाँ लोग हैं कि डर से काँपे जाते थे कि खुदा खैर करे कहीं दस्त आने न लगे, परन्तु उसने डकार तक न ली और सब हज़म कर गया। "आगा दाम काता है" और "खाजा" तो इतने मशहूर लतीफे हैं कि इन्हें बच्चा-बच्चा जानता है।

ये हैं काबुली वाले के चित्र की वह रेखाएँ जिन्हें देखकर कभी आप मुस्करा दें और कभी हँसने लगें, पर इसका असली रूप देखने के लिये वह पर्दा हटा दीजिये जो उसने अपने ऊपर डाल रखा है; तो यह न तो डाक्टर टैगोर की मुन्नी के लिये कोई उपहार देता दिखाई देगा, और न "हींग हींग" चिल्लाता, और न "पिस्ते वाला पठान"; वरन एक साहूकार, एक महाजन, बकाया लगान लिखने वाला जमींदार का एक मुंशी यह सब मिल जुलकर वह लालच ईर्षा बेइमानी की एक डरावनी मूर्त दिखाई देने लगेगा।

"हमारा रूपी दे दे।"

"आगा थोड़ी मुहलत और दे दो।"

"अम कुच नइ जानता, अमारा रूपी लाओ" और उसका डंडेनुमा बेत उठ जाता है "आगा घर वाली बीमार हो गयी और इधर मैं भी" फिर वही जवाब और तू-तू मैं—मैं।

डाक्टर टैगोर ने रहमान काबुली वाले की भावनाओं का वह सम्मान किया कि अपनी मुन्नी-समान उसकी बेटी तक पहुँचाने के लिये अपनी जेब का रूपया उसके हवाले कर दिया, पर यह काबुली वाला घसीटे की मुन्नी की हँसली उतार कर और उसे बिलबिलाता छोड़कर अपने हाथ में लेकर ही टलता है।

६० रुपये देकर १२० रु० ब्याज लेने पर भी इसका पेट नहीं भरता। लालच की एक भयानक मूर्ति, ऐसी मूर्ति जिसकी छाती में न तो दिल हो और न सिर में दिमाग। एक चलता-फिरता पशु जिसे केवल अपना पेट भरने से मतलब और इसीलिए वह शाम को हाथ में माला लिए चाय की दुकान पर बैठा दिखाई देगा।

एक...दो...तीन...चार...एक पूरी पार्टी और सब बोल रहे होंगे जहाँ आपको यह जानना कठिन हो जायगा कि कौन बोल रहा है और कौन सुन रहा है।

दग़ा...दग़ा...ज़ा
टपशा...अलप अलप ज़ा
वंदा दा खान दा

और आपका दिल चाहेगा कि उसके हाथ की माला छीन कर फेंक दें, और उसका मुँह नोच कर यह समझाएँ ।

"कर का मनका छाँड़ के मन का मनका फेर ।"

पाँचवे सवार

बुद्धू मियाँ महात्मा गाँधी के साथ हैं,
मुट्ठी भर धूल हैं, मगर आँधी के साथ हैं ।

तीसमार खाँ के व्यक्तित्व को आप मानें या न माने, पर इतनी बात अवश्य है कि वे हमसे इतने परिचित हैं कि उनके किसी विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं पड़ती। यही कारण है, कि शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिन्हें इनकी कीर्तियों की कथाएँ कंठस्थ न हों; यदि अधिक न सही तो कम से कम दस-पाँच तो अवश्य ही याद होंगी। लीमू नीचोड़ भाँति के लोगों के लालच की कहानियाँ आपने सुनी होंगी। पिछलगुए और ऊपर पड़े लोग देखे ही होंगे। ईरान का नाख्वाँदा मेहमान और अरब के तुफेली भाइयों के हरबे जानते ही होंगे। आज आप इसी सम्प्रदाय के पाँचवे सवार से मिलिये। अनुमान तो ऐसा है कि आप मिल भी चुके होंगे, पर पहचानने में सन्देह हो रहा है सो आज भली-भाँति पहचान लीजिए।

देखने में तो पाँचवेसवार पिछलगुओं की पीढ़ी से मिलते हैं, पर वह तीसमार खाँ से अपनी पीढ़ी मिलाते हैं और इसी पर गौरव करते हैं। इस समस्या में मत-भेद है कि पिछलगुओं और तीसमार खाँ में कोई नाता हो भी सकता है या नहीं खैर आप मान लीजिये कि पाँचवे सवार तीसमार खाँ की ही पीढ़ी से हैं।

पाँचवे सवार संख्या में कम सही, पर इनका क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। कोई देश, कोई राष्ट्र, कोई वर्ग अथवा कोई सम्प्रदाय हो ये मौजूद अवश्य होंगे, संक्षेप में यह समझिए कोई विभाग ऐसा नहीं जहाँ इनका कोई न कोई प्रतिनिधि न हो।

यों तो ऐसे पाँचवे सवारों का व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न होता है। अवस्था और अवसर अनुसार इनकी कीर्तियों का प्रदर्शन होता रहता है। उदाहरण के लिए एक

पाँचवे लीजिए, प्रौढ़ अवस्था के हैं, किसी चोटी के वकील के यहाँ उठना बैठना है, बातूनी नम्बर एक हैं। गा बजाकर कुछ कविता भी कर लेते हैं। बस अब क्या है मुवक्किलों को रिझाना, उनकी जेबें टटोलना, और वह भी कुछ इस ढंग से कि मुव्वकिल समझे कि वह स्वयं उसकी जेब में नोट डाल रहे हैं। ऐसे ही नमूने आपको डाक्टर के क्लिनिक, वैद्यो के औषधालयों, गंडा तबीज और झाड़ फूँक करने वाले, शाहसाहबों और पंडितों, हाथ देखकर भविष्य वाणी करनेवाले ज्योतिषियों और विशेष रूप में एलेक्शन लड़ने-लड़ाने वालों के अड्डों पर मिलेंगे। इस प्रकार के पाँचवे सवार इतनी उछल-कूद कर चुके हैं कि आप सब इनसे परिचित हैं।

इन पाँचों सवारों की नई पीढ़ी की ओर शायद ही आपने कभी ध्यान दिया हो। इस वर्ग की कीर्तिआँ तो कुछ कम नहीं पर क्षेत्र तनिक तंग और सीमित है। इनकी दौड़-धूप उन ऊँची-ऊँची चहार दीवारियों और सुन्दर गुम्बजों की छाँव तक सीमित है, जिन्हें हम कालेज कहते हैं और यूनिवर्सिटी या फिर महात्मा गाँधी के शब्दों में विद्या-मन्दिर। और ये हैं उन्हीं मन्दिरों के पुजारी।

इन पाँचवे सवारों की कीर्तियों का प्रदर्शन विद्यालय के विशेष समारोहों पर हुआ करता है। चाहे वह नाट्य अभिनय हो अथवा कोई संगीत बैठक, कवि-सम्मेलन हो या मुसायरा, टीपार्टी हो अथवा उद्घाटन तथा अन्य प्रकार के समारोह।

मान लीजिये यूनियन का उद्घाटन समारोह है। हाल इस आशा में खचाखच भर रहा है, कि आदरणीय अतिथ का ऐटमी-भाषण पर पंचवर्षीय योजना की पूर्ति में एक सहारा होगा। प्रधानाचार्य और प्राध्यापक गण अपने-अपने नियत स्थानों पर बैठ चुके हैं कुछ विद्यार्थी बेंचो और लकड़ी की कुर्सियों पर बैठ चुके हैं कुछ विद्यार्थी आ-आकर बैठते जाते हैं। अभी बहुत सी जगहें खाली पड़ी हैं, बेचारे प्रिफेक्ट और मानीटर आज्ञा पालन में मूर्ति बने अपनी उदारता का प्रदर्शन कर रहे हैं मानों उन्हें खड़े रहने और मौन साधन करने का दंड मिला है। इनके अतिरिक्त अन्य विद्यार्थियों की जीभें कतरनी सी चल रही हैं। शोर-गुल, खट पट और-बैठकर रिहर्सल हो रहा है। ऐसी परिस्थिति पर आप देखेंगे कि चार छः विद्यार्थी प्रिफेक्टों के दाएँ-बाएँ बड़े रोब से खड़े होंगे और सामान्य विद्यार्थियों की सीटों पर बैठना अपने लिए अपमान समझते हुए 'ठड्डा' दे रहे हैं कि इस विचार से कि कहीं ऐसा न हो

कि समस्त विद्यार्थी उन्हें अपने जैसे सामान्य विद्यार्थियों की सूची में डाल दें, वरन् ऐसा प्रीफेक्ट समझे जो अपनी यूनिफार्म की कमीज, कोट और बैज सब कुछ कहीं गिरो रख कर आया है, पर ताड़ने वाले ताड़ जाते हैं। कि ये हैं पिछलगुवे प्रकार के पाँचवें सवार, जिन्हें प्रीफेक्ट बनने का शौक है।

इसी सम्बन्ध में एक दृश्य देखिये, डायस के दाँएँ-बाएँ और कुछ परछाइयाँ दिखाई दे रही हैं और इनमें कभी दाईं ओर से और कभी बाईं ओर से चलती फिरती परछाईं मनुष्य रूप में सामने आ जाती हैं। कभी सभापति के कान में कुछ फूँक दिया कभी यूनियन के मन्त्री के कान में कुछ कह दिया। यदि कहीं प्रधानाचार्य महोदय की निगाह पड़ गई, तो बड़ी नम्रता से हाथ मलते हुए धीरे से पूछेंगे, "सर आपने बुलाया है" अभी-अभी वह कुछ कह न सके होंगे कि वह अपना सिर ऊँचा करके छाती तान कर अपने साथियों को घूरते हुए फिर दीवार की छाया बन जाएँगे। यह है पाँचवें सवारों का दूसरा वर्ग।

किसी समिति की ओर से कोई नाटक अभिनय हो रहा हो और प्रवेश निमंत्रण पत्रों अथवा साधारण टिकट पर निर्भर हो और आप इस बात का अच्छे से अच्छा प्रबंध कर दें कि कोई ऐसा व्यक्ति भीतर न आने पाये जिसे निमंत्रित न किया गया हो अथवा जिसने टिकट न लिया हो, पर आप देखेंगे, कि तीन-चार व्यक्ति उस स्थान पर धरना दिए हैं, जहाँ जवान बूढ़े बन रहे हैं, कर्जन फैशन रखनेवालों के चेहरे पर मूँछ दाढ़ी उग रही हो, कोट-पतलून पहनने वाले साड़ियाँ पहन रहे हैं और उनके हाथों में चूड़ियाँ खनक रही हों और आपको यह चिन्ता है कि बुन्दे किस प्रकार पहनाये जायँ और कील नाक के दाहिनी ओर अच्छी जँचेगी या बाईं ओर। दूसरी ओर यह भी हो रहा होगा कि होठों पर लिपिस्टिक पोतने वाली और टीप-टाप से रहने वाली साधुनी और भिक्षुणी बन रही हैं। और ये सब कुछ आपने छुपाने के लिए दरवाजों पर परदे डलवा दिये हैं कि कोई ये न जान सकें कि कौन क्या है; पर आपका यह भेद रूप-घर (ग्रीन रूम) के कोनों में खड़े तीन-चार व्यक्ति खोलने के लिए तैयार और आपकी सारी कला की जाँच कभी इस कोण से कर लेते हैं कभी उस कोण से। आपकी आँख बचाकर उस परदे को हटाकर झाँक भी लेंगे जो आपने एक्टरों को छुपाने के लिए बड़ी

सावधानी से लगा रक्खा था और शायद ये बोल भी आपके कानों तक पहुँच जायँ, जब वही व्यक्ति पास से गुजरने वाले साथी से कह रहे होंगे, "भाई क्या किया जाय ड्यूटी दे रक्खी है ग्रीन रूम में मास्टर साहब ने', ये हैं तीसरे प्रकार के पाँचवें-सवार। जो किसी प्रकार से बिना टिकट और निमंत्रण के नाटक देखने पहुँच गये हैं।

इस सम्बन्ध में जब माइक पर घोषणा दी जा रही होगी कि हम आपके सामने "बैरम खाँ के अन्तिम दिन" प्रस्तुत कर रहे हैं, तो किसी न किसी प्रकार यह रंग-मंच के पर्दों के बीच से विद्यार्थियों को अपना चेहरा अवश्य दिखा देंगे। और जब इनके कुछ साथी इन्हें पहचान कर बोर-बोर कर के चिल्ला देंगे तो पर्दा बन्द कर के हट जाएँगे। पर दूसरे दिन अपनें साथियों से कहेंगे "अबे देख माइक पर बोलते समय कैसी आवाज बदल दी पहचान सका तू......"

टी पार्टियों के अवसरों पर इनकी कीर्तियों पर पर्दा पड़ा रहना ही अधिक अच्छा है और इसी में इनकी लाज है, नहीं तो यह लीमू निचोड़ नदीदों और पिछलगुओं से भी अधिक पीछे दिखाई देंगे।

यदि आप नहीं मानते, तो देखिये ! किसी समिति का अन्तिम समारोह है। सब विद्यार्थी पत्तों के दोनों में मिठाई लेकर चल दिये हैं। प्रोफेसरों और मेहमानों के लिये जलपान का प्रबन्ध हो रहा है। प्लेटों पर प्लेटें खनक रही हैं। समिति के सेक्रेट्री साहब मिठाई की प्लेट पर प्लेट साफ़ किये जा रहे हैं। डायरेक्टर साहब ने मिठाई रूम के दरवाजे बन्द कर रक्खे हैं; पर इससे होता क्या है, एक-दो पाँचवें सवार वहाँ किसी प्रकार पहुँच ही गये। प्लेटें ढोने लगे और यहीं से कार्रवाई का आरम्भ होने लगा। सेक्रेट्री साहब बोले हाँ पार्टनर ज़रा जल्दी-जल्दी लगा दो। इधर डायरेक्टर साहब आ निकले, और देख रहे हैं, कि दोनों मिठाई उड़ा रहे हैं। सेक्रेट्री साहब बोल दिये "सर ! यह अपना हिस्सा लाया था, वही खा रहा है और मुझे भी दे दिया। आप चलिये प्लेटें अभी भेजवा रहा हूँ......।" डायरेक्टर साहब समझ तो सब कुछ गये, पर मुस्कुराते हुये यह कहकर चल दिये, "अरे भाई ! जल्दी करो। मेहमान बैठे हुये हैं। पाँचवें सवार को खाने का मानो लाइसेंस मिल गया हो और कंट्रोल हट गया हो।

एक दृश्य और देखिये ? आप कैफ़ीटेरिया में इत्मिनान के साथ जलपान कर रहे हों, कि आप एक आवाज़ से चौंक पड़ेगें, "हल्लो पार्टनर ! चाय पी रहे हैं । ठीक है पी लीजिये आप से एक काम है । आप कहेंगे, कहिये, क्या बात है ?

"आप चाय से निपट लें, तो कहूँ ।" इसी बीच एक और सज्जन आ धमकेंगे और आप से कुछ न कहकर पहले वाले से कहेंगे, "अच्छा ! तो यह बात है आप यहाँ डटे हैं । मैं चारों ओर ढूढँ आया पहले सज्जन पूछेंगे 'क्या बात है, जो इतने बौखलाये से हो । कहो न ! तकल्लुफ़ किस बात का ? इस पर उत्तर मिलेगा । कैफीटेरिया की 'कूपन-बुक' भूल आया हूँ और चाय का मूड बुरी तरह हो रहा है । पहले पहुँचे हुये उनके मित्र बड़ी सरलता से बोल पडेंगे, अरे इसमें क्या ! मेरा और तुम्हारा कूपन कोई अलग-अलग है । अभी देता हूँ । पूर्ण विश्वास के साथ पहले कोट की जेब टटोलेंगे, कुछ मुहँ बनायेंगे । पैंट की जेबों का मुआइना होगा । फाइल उलट-पलट कर देखेंगे और बड़ी निराशा से कहेंगे, "पार्टनर मैं भी भूल गया हूँ; फिर कहेंगे,...मगर नहीं, मैं तो रख ली थी कूपन-बुक...। हाँ ! याद आया अमुक व्यक्ति ले गया है, और यह कहकर उठने लगेंगे जरा देख तो लूँ किधर गया है । अब समझ जाइये···मजबूरन कहना ही पड़ेगा, "यह लीजिये कूपन-बुक । चाय पी लीजिये और जो चाहें ले लीजिये । ऐसी भी क्या बात है ।" अब आप समझ लीजिये ये दोनों पाँचवें सवार हैं । कैसे ? यह आप स्वयं निर्णय करें ।

इनाम बँटने का दिन है । विद्यार्थी इनाम ले रहे हैं । एक विद्यार्थी, जिसको आप कभी कोई खेल खेलते न देखा होगा; पर बातें करते रहते हैं स्पोर्ट मैनों की । स्पोर्ट के कपड़े भी वैसे ही डटे रहते हैं कि लोग उन्हें स्पोर्ट-मैन ही समझें । स्पोर्ट के इन्चार्ज प्राध्यापक साहब ने पुकारा, "फुटबाल टूर्नामेंट में प्रथम पुरस्कार ! कैप्टेन "क अपनी टीम के सार्टीफिकेट ले लें" । यह सुनकर कैप्टेन उठना चाहेंगे, पर उन्हें वही विद्यार्थी दबा देंगे और तुरन्त ही सार्टीफिकेट लेने पहुँच जायेंगे । सार्टीफिकेट हाथ में लिये अकड़ते हुये वापस आ जायेंगे । यह भी एक पाँचवें सवार हैं ।

कुछ फुटकर निबन्ध

औद्योगिक, राजनीतिक तथा कृषि सम्बन्धी निबन्ध

समुदाय सामुहिक योजना

आज हमारे देश को अपनी आर्थिक समस्याओं पर जरा गम्भीरता और विस्तृत दृष्टिकोण से सोचना पड़ रहा है। यह केवल इसलिए कि राजनीतिक स्वतंत्रता के पश्चात् आर्थिक स्वतंत्रता की समस्या हल करना समस्त सरकारें चाहे वे प्रदेशी हों या केन्द्रीय, अपना एक मात्र कर्त्तव्य समझ रही हैं। इसमें संदेह नहीं, कि यह समस्या इतनो शीघ्र और सरलता से सुलझ जाने वाली समस्या नहीं है, फिर भी इसके सुलझाने के लिए कोई मार्ग निकालना केवल आवश्यक, ही नहीं वरन् अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। विशेषतः ऐसे समय में जब साम्यवाद और समाजवाद हमारी प्रजातंत्रिक व्यवस्था को चुनौती पर चुनौती दिये जा रहीं हो। दरिद्रता, बेकारी, बेरोजगारी के विपरीत प्रयास और दौड़-धूप करने में हमें अपने आर्थिक विकास के लिए, एक ऐसा प्रोग्राम अपनी दृष्टि में रखना आवश्यक है जिसका एक अंग समुदाय-सामुहिक योजना की तरह कोई दृष्टिकोण हो और भाग्यवस देश के महारथी नेताओं और प्रजातंत्र के सदस्यों की बुद्धिमता का एक छोटा सा नमूना हो कि उन्होंने अपने प्रोग्राम में समुदाय-सामुहिक-योजनाओं को विशेष स्थान दिया है। सच पूछिये तो यह प्रोग्राम अपने देश के पिछड़े हुए ग्रामीणों की दशा सुधारने और विदेशी साम्यवाद की चुनौती का बड़ा उचित उत्तर है और राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के उस स्वप्न का फल दिखाई देता है, जिसके द्वारा वे लाखो करोड़ों ग्रामीणों और विशेष कर कृषिकों को सम्पन्न और सुखी बनाना चाहते थे। शुभ मुहुर्त प्राप्त करने के लिए समुदाय-सामुहिक-योजनाओं का उद्घाटन दो अक्टूबर सन् १९५२ को हुआ। इसमें सन्देह नहीं, कि इसकी गणना अभी तक उन

प्रयोगात्मक प्रोग्रामों में हैं, जो देश जौर राष्ट्र की भलाई के लिए अब तक बनाई गई हैं। इसकी सफलता बहुत कुछ हमारे उस क्रियात्मक ढंग पर निर्भर है, जिसे हम इस योजना की उन्नति के लिए काम में लायेंगे।

इस समय इस भाँति की सामुदायिक योजनाओं के देश भर में कुल ५० योजना और ७५ विकास केन्द्र स्थापित किये गये हैं। जिनका ध्येय ग्रामीणों के जीवन को आगे बढ़ाना और उन्नतिशील बनाना है और बेरोजगारी का अन्त करना है। यह केवल ग्रामीण आर्थिक दशा सुधारने के लिए स्थापित किए जा रहे हैं।

ये योजनाएँ अमेरका की टी० ए० वी० योजनाओं के आधार पर स्थापित की गई हैं। इनके व्यय का उत्तरदायित्व हमारी सरकार पर है, यद्यपि पूँजी, कुशल श्रमिक और सामान से अमेरिका से हमें सहयोग प्राप्त है। 'भारतीय अमेरिका सहयोगी सन्धि' का फल है, जो जनवरी सन् १६५२ में हुई। हमारे प्रधान मंत्री ने अमेरिका की इस सहायता और सहयोग का स्वागत किया। इसलिए कि यह एक ऐसा अच्छा काम था, जिससे आन्तरराष्ट्रीय ख्याति के चिन्ह प्रकट थे। ऐसा सोचना कि ये कार्य अमेरिका की शान का प्रोपैगन्डा है, गलत है। जैसा कुछ क्षेत्रों की ओर से घोषित किया जा रहा है। वास्तव में यह एक ऐसा अद्भुत बढ़ावा है, जो कुशल-कलाकारों और कारीगरों के सहयोग पर निर्भर है और इसे आधुनिक अर्थशास्त्री अनुवभवी व्यक्तियों के सहारे आगे बढ़ाने की अथक प्रयत्न किया जा रहा है, जो बिना विदेशी सहायता के नहीं हो सकता है।

इस योजना का ध्येय लोक दरिद्रता दूर करना है। देश को अकाल और भुखमरी आक्रमण से बचाना और अन्न की कमी को दूर करना है।

समुदाय सामुहिक योजना की यह स्कीम हमारी शक्ति का एक ऐसा शानदार चित्र है, जिसे देख आर्थिक दुर्दशा अपना मुख छिपाकर गायब हो जायगी। इसके ध्येय तो बहुत विस्तृत हैं। राष्ट्रीय भलाई और ग्रामीणों के जीवन को सुखी बनाना इसका सारांश है। स्कीम का ढाँचा संक्षिप्त होने पर भी काफी भारी है। हम पहले लिख चुके हैं, कि इस समय कुल ५५ योजनाएँ और ७५ विकास केन्द्र हैं जो हमारे देश के २५ से अधिक राज्यों पर फैले हुए हैं। प्रथम श्रेणी के राज्यों में ३६ योजनाएँ, द्वितीय श्रेणी के राज्यों में ६ और शेष लघु राज्यों में हैं।

प्रत्येक योजना में तीन सौ ग्राम सम्मिलित हैं और तीन विकास केन्द्र। इस प्रकार प्रत्येक केन्द्र साठ हजार से सत्तर हजार व्यक्तियों की भलाई का बीड़ा उठाए हैं। प्रत्येक योजना लगभग ५०० वर्गमील के क्षेत्र में फैली हुई हैं। जिसमें लगभग १,५०,००० एकड़ की खेती होती है जो दो लाख मनुष्यों का सहारा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारी योजनाएँ लगभग १६००० गाँव २७००० वर्गमील भूमि और १६०००००० मनुष्यों को समेटं हैं।

इतने विशाल देश और इतनी बड़ी आबादी को दृष्टि में रखते हुए यह संख्या काफी नहीं दिखाई देती, पर इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि यह कार्य सुचारु नियम तथा सुन्दर ढंग पर किया जा रहा है, जो हमें सफल बनाने में काफी सहयोगी दिखाई देता है। वास्तव में यह भावना प्रशंसनीय है, कि ग्रामों की संख्या अपनी मदद आप और आत्म निर्भरता की वह भावना जिस पर राष्ट्रों की उन्नति और विकास निर्भर है; इस योजना द्वारा परिपूर्ण हो रहा है।

इस स्कीम के कुल व्यय की संख्या लगभग चालीस करोड़ रूपया है, जिसमें से चार करोड़ रुपया अमेरिका ने दिया, जो ४ जनवरी १६५२ की उस निधि का फल है, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं।

संक्षेप में हम इतना कह सकते हैं कि हमारी आशाएँ बहुत कुछ इस योजना की सफलता पर निर्भर हैं। यह एक ऐसी भावना है जिससे अन्य ऐसी भावनाएँ उत्पन्न हो सकती हैं जो मानव हित को राहें दिखाती रहेंगी इसीलिए हमारा कर्त्तब्य है कि हम इस योजना को प्रत्येक प्रकार से सहयोग दें और इसे सफल बनाने की चेष्टा करें।

कुटीर-उद्योग-धंधे

"जिसके हाथ मे एक भी हस्तकला है ,मानो उसके हाथ में राज्य है। "

—फ्रैन्क्लीन

"एक दिन वह था कि दब गये थे लोग दीन से,
एक दिन यह है कि दीन दबा है मशीन से।"

—अकबर इलाहाबादी

इससे इन्कार की किसी भाँति गुंजाइश नहीं, कि हमारे देश के कुटीर-उद्योग-धंधो का भूतकाल बड़ा शानदार रहा है। एक समय वह भी रहा है, जब हमारे देश के दस्तकार और बुनकर अपनी-अपनी दस्तकारी और हस्तकला की अद्भुतता और सुन्दरता के लिए समस्त विश्व में प्रसिद्ध रहे हैं। जब योरोप के निवासियों की उँगलियाँ करघा पकड़ना न जानती थीं और हस्तकलाकार कला के औजारों से अनभिज्ञ थे, ढाके की मलमल, मुर्शिदाबाद और टाँडे की जामदानी, बनारस का कमख्वाब, गुलबदन और जरबफ्त, लखनऊ की चिकन और कामदानी, बनारस और मिर्जापुर के पीतल के बर्तन, मुरादाबाद की कलई, जयपुर, जोधपुर और चुनार के लुपदार मिट्टी के बर्तन खिलौने और अन्य वस्तुएँ, सोने चाँदी के आभूषण, दरियाँ और जाजिमें, लकड़ी और हाथीदाँत की वस्तुओं की नक्काशी की अद्भुतता और सौन्दर्य्यता, काशमीरी अलवान, पट्टू शाल, दूशाले, ऊनी कशीदाकारी, पीलीभीत और बरेली का फर्नीचर, रामपुर, शाहजहाँपुर और पिहानी के चाकू, सरोते और तलवार। कहाँ तक गणना की जाय नाना प्रकार की हस्तकलाएँ थीं, जो अपनी सुन्दरता, आकर्षण, कोमलता और अद्भुतता के लिए प्रसिद्ध रही हैं। उनकी माँग कहाँ से नहीं हुई और किस देश से उनकी प्रसंशा में नारे बुलन्द नहीं हुए।

समय ने पलटा खाया और बृटिश साम्राज्य का बोल बाला हुआ, जिसके साथ वह राज भवन, शीशमहल और शाही ऐवान बरबाद हो गये जहाँ से घरेलू हस्त-कलाओं की माँग होती थी और दस्तकारों को प्रोत्साहन मिलता था। वे शाही दरबार

राज दरबार, और तालुकेदारियाँ मिट गईं जो घरेलू दस्तकारों और बुनकरों का आश्रय बनी थीं। ऐवान ड्राइंगरूमों में बदलने लगे। देशी सजावट सम्बन्धी वस्तुएँ पीछे हठने लगीं और पाश्चात्य देशों की वस्तुएँ उनका स्थान लेने लगीं। अकबर इलाहाबादी और अवधपत्र के पत्रकार प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, भातेन्दु हरिश्चन्द्र ऐसे पाश्चात्य सभ्यता के उपासकों और फैशनों पर व्यंग करते रहे, उनकी हँसी उड़ाते रहे। पर उनकी कवितायें और निबंध ऐसे व्यक्तियों को प्रभावित न कर सके।

सबसे बड़ी बात यह थी कि, जिसने देशी कुटीर उद्योग-धंधों और छोटे पैमाने पर चलती हुई दस्तकारियों को धक्का लगाया वह था स्वयं बृटिश साम्राजय का पक्षपात, जो भारतवर्ष को इँगलैंड के दस्तकारियों और कुटीर-उद्योग-धंधों का बाजार बनाना चाहता था। यहाँ तक कि दस्तकारी के औजार भी यहाँ भरना चाहता था।

इन सबसे बढ़कर प्रधानता इस बात की थी कि हाथ और मशीन का घोर संघर्ष था, जो यातायात के साधनों की सरलता और सुविधाओं के साथ उन्नति की ओर जा रहा था; अन्त में यहाँ के बुनकरों, जुलाहों और दस्तकारों को वे दिन देखने पड़े, जो योरोप में औद्यौगिक क्रान्ति ने वहाँ दिखाये थे। इस संघर्ष में मनुष्य के हाथ उसकी अभिरुचि और भावनायें मशीन ने घायल कर दीं और वह मशीन से डरने लगा।

स्पष्ट है, कि इस क्रान्त्ति और बृटिश साम्राज्य के पक्षपाती प्रयास से कुटीर-हस्तकलाओं का दम घुटने लगा। वे अधमुयी होकर तड़पने लगीं। कुछ ने दम तोड़ दिया, और बहुतेरी ऐसी थीं जो सिसकती रहीं और उनकी साँसे चलती रहीं।

पेशों के आधार पर जाति-पाँति पर निर्भर होना उन्हें सहारा देता रहा और इसीलिए जुलाहा, कोइरी, करघे को छाती से लगाये रहे। ऐसे दस्तकार जिनकी कला ही उनकी जाति बन चुकी थी अपने पेट के लिए कोई दूसरा सहारा ही न पा सके और उसी का फल है ढाके की मलमल बनाने वाले दस्तकार अँगूठे कटा कर मर गये, पर उनके करघों ने मशीनों और मिलों से जान तोड़ संघर्ष किया और आज भी कर रहे हैं। यद्यपि उन्हें अपने लिए कुछ नये रास्ते बनाने पड़े।

इस संक्षिप्त वर्णन से अनुमान हो रहा है, कि देश की आर्थिक व्यवस्था में कुटीर-उद्योग-धंधों का स्थान साधारण नहीं था। आज भी बहुत सी घरेलू-

दस्तकारियाँ लाखों मनुष्यों की रोटी का सहारा बनी हुई हैं और हजारों लाखों मनुष्य इन्हीं द्वारा बेकारी से बचे हैं। डा० मुकर्जी ने सन् १९४१ में इस सम्बन्ध में जो खोज की है, उससे पता लगता है कि पचास लाख से अधिक व्यक्तियों की जीविका केवल करघा और बुनकारी पर निर्भर है और यह संख्या उन व्यक्तियों के बराबर है,जो संगठित औद्योगिक निर्माणशालाओं में लगे हुए हैं।

कुटीर-उद्योग-धंधे उन किसानों को भी बेकारी से बचा सकते हैं, जो साल भर में केवल दो सौ दिन काम करके १६५ दिन बेकार रह कर अपना समय नष्ट करते हैं। डा० साल्टर की रिपोर्ट के अनुसार दक्षिणी भारत में किसान केवल पाँच महीने काम करता है और सात महीने बेकार रह कर मटरगस्ती करता है और बंगाल में तो यह बेकारी अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाती है, जैसा कि मिस्टर जैक की रिपोर्ट से ज्ञात होता है, कि जूट और धान उत्पन्न करने वाले केवल तीन साढ़े तीन महीने ही काम करते हैं और यही बात रायल एग्रीकलचर कमेटी की रिपोर्ट से भी मालूम होती है, इस प्रकार किसानों का अधिक समय केवल गप-सप, तथा व्यर्थ मुकदमेबाजी आदि में व्यतीत होता है। इससे स्पष्ट है कि किसान अपनी आर्थिक दशा सुधारने के लिए यदि कोई कुटीर-उद्योग-धंधा सहायक पेशे के रूप में धारण कर ले तो अधिक अच्छा है जैसे फ्रान्स, जर्मनी, इटली और अन्य योरोपीय देशों में है। मिश्रित कृषि, अन्डे और मुर्गियों का धंधा, दही का व्यापार आदि किसानी के साथ-साथ लगा रहता है। विशेषतः ऐसी जगहों में जहाँ हमारे यहाँ के किसान और अन्य ग्रामीण ऋण के भार से दबे रहते हैं और दरिद्रता के पंजे में फँसे रहते हैं यही कारण है कि भारतवर्ष की प्रत्येक योजना में किसानों को आर्थिक दशा के सुधार और उन्नति को दृष्टि में रक्खा जाता है।

यदि हम इस बात पर दृष्टि डालें कि बड़े पैमाने पर काम करने वाले औद्योगिक-कारखानों की संख्या चार-पाँच गुनी हो क्यों न बढ़ा दी जायें फिर भी इतने बड़े देश के लिए बेकारी की समस्या सुलझ नहीं सकती, चाहे यातायात के साधनों और भार-बरदारी की सुविधाओं में कितनी ही बढ़ौती क्यों न कर दी जाय। ऐसी दशा में कुटीर-उद्योग-धंधे ही सहारा हो सकते हैं और बेकारी की समस्या इनके द्वारा बहुत कुछ सुलझाई जा सकती है। हम इन बातों पर ध्यान देते हैं तो कुटीर-उद्योग-धंधों का

महत्त्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। किसानों की आर्थिक दशा उस समय तक अच्छी नहीं बन सकती, जब तक हम बड़े पैमाने पर काम करने वाले दस्तकारियों के साथ-साथ घरेलू दस्तकारियों और कुटीर-उद्योग-धंधों की उन्नति का प्रबन्ध नहीं कर लेंगे। यही कारण है कि महात्मा गाँधी के सामने आर्थिक विकास का जो व्यवस्था और योजना थी उसमें मशीनी कारखानों और बड़े पैमाने की दस्तकारियों से अधिक कुटीर-उद्योग-धंधों पर जोर दिया गया है।

कुटीर-उद्योग-धंधे ग्रामीणों और कृषकों की प्राकृतिक और पौत्रिक अभिरुचि के विकास के लिये अधिक आकर्षण रखते हैं। उनकी उन्नति में मानव-सहानुभूति की एक पवित्र भावना भी सम्मिलित है। घरेलू-धंधे मनुष्य की उस कठोरता को भी दूर कर सकते हैं, जब वह मशीन का केवल एक दास बन कर रह जाता है और अपनी समस्त नैतिक भावनायें खो बैठता है। कुटीर -उद्योग-धंधों की व्यवस्था और प्रबंध करने में वे कठिनाइयाँ भी नहीं हैं जो मशीनी-धंधों में प्रस्तुत होती हैं। इसके अतिरिक्त बड़े-बड़े शहरों में हजारों इन्सानों की एक विशाल भीड़, घुटा-घुटा वाता वरण, रहने की तंगी, स्वास्थ्य की दुर्गति और आचार व्यवहार की त्रुटियाँ इन्हीं मशीनी कारखानों-की देन हैं।

कुटीर-उद्योग-धंधों का उल्लेख करते समय मशीनों का पक्ष करने वाले इन धंधों में एक त्रुटि यह निकालते हैं कि हाथों से बनी हुई वस्तुएँ मशीनों से बनी हुई वस्तुओं की अपेक्षा बड़ी मँहगी होती हैं और तय्यारी में समय अधिक लगता है। और इसीलिए वे यह नारा लगाते हैं कि मशीनों से बनी हुई वस्तुओं पर लागत कम, समय थोड़ा; घरेलू बनी हुई वस्तुओं पर लागत और समय दोनों अधिक। किसी सीमा तक यह नारा सत्य प्रतीत होता है। ऐसे लोगों को यह ज्ञात होना चाहिए की कुटीर-उद्योग- धंधों को उन्नति देने का यह अर्थ कभी नहीं रहा कि मशीनों द्वारा वस्तुयें तय्यार न की जाँय, और न कभी यह अर्थ रहा है कि मांस और हाड़ से बने हुए मनुष्य के दो हाथ और दो पैर उन मशीनों को चैलेन्ज देना चाहते हैं जो विद्युत के सुइच के "आन" और "आफ" पर चलती और रुकती हैं। वरन् ध्येय केवल इतना है कि देश की आर्थिक व्यवस्था में कुटीर-उद्योग-धंधों और छोटे पैमाने की हस्तकलाओं को उनका कि उचित स्थान उनको दिया जाय। लोहे

और लक्कड़ से ही बनी हुई मशीनों को सब कुछ समझ कर हाथ काट डालने का निर्णय न कर लिया जाय।

कुटीर-उद्योग-धंधों की महत्ता का अनुमान 'बम्बई प्लान' के लेखकों के इन शब्दों से भी होता है जो इस सम्बन्ध में लिखते हैं:—

"कुटीर धंधे केवल इस लिए ही महत्त्व पूर्ण नहीं हैं कि वे हजारों बेकार मनुष्यों और किसानों को काम से लगा सकते हैं, वरन् इसलिए भी महत्त्व-पूर्ण है कि इनके लिए कम धन की आवश्यकता पड़ती है और विशेषतः विदेशी धन की। कभी-कभी तो ऐसी-ऐसी समस्यायें सामने आती हैं कि हमारे लिए यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि हम किन मुख्य उद्देश्यों पर बड़े पैमाने के धंधों को प्रोत्साहन दें।"

काँग्रेस प्रारम्भ से ही कुटीर-उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन देती रही है और इसीलिए काँग्रेस सरकार स्थापित होते ही **"नेशनल प्लानिंग कमेटी"** द्वारा कुटीर-उद्योग-धंधों की वास्तविक दशा जानना अत्यंत अधिक समझा। इनकी जाँच पड़ताल करते समय **कमेटी** ने भली-भाँति अनुमान कर लिया कि उन कठिनाइयों और त्रुटियों को दूर-करना अति आवश्यक है जो कुटीर-उद्योग-धंधो की राह में रोग बनी हैं उदाहरणतः समय का अधिक लगना और उसका व्यर्थ नष्ट होना, हस्तकलाकारों का मामूली मजदूरी के लिए सर खपाना उनके रहन-सहन के स्तर का नीचा होना आदि ऐसी बातें हैं जिनकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

इसके साथ-साथ बड़ी मात्रा में उत्पादन को राष्ट्रीयकरण करने का भय भी कमेटी की दृष्टि में था, जिनका होना यहाँ भी उसी प्रकार अनिवार्य था जिस प्रकार यूरोपीय देशों में हुए और इन्हीं बातों को दृष्टि में रखते हुए कमेटी ने बड़ी एवं छोटी मात्रा में उत्पादन करनेवाली हस्तकलाओं में एक प्रकार का सम्बन्ध पैदा करने का प्रस्ताव किया और इसीलिए सरकार की ओर से **सहयोगी उत्पादन** और **सहयोगी मारकेटिंग** के प्रस्ताव पास हुए।

इस सम्बन्ध में कुटीर-उद्योग-धंधों की कुछ कठिनाइयों की ओर ध्यान देना इस-लिए आवश्यक है, कि हम उनको समझे बिना ऐसे धंधों को आगे न बढ़ा सकेंगे ऐसे तो यह कठिनाइयाँ और समस्यायें विभिन्न धंधों में विभिन्न हैं। कुछ समस्यायें और

कठिनाइयाँ ऐसी हैं जो सभी के लिए समान हैं, जैसे धन, खपत के बाजार और उनकी उचित व्यवस्था । बहुत से धंधे तो इसीलिए बुरी दशा में हैं कि कलाकारों और दस्तकारों का न तो कोई मान है न उनके पास काफी धन है, बल्कि दरिद्रता के पंजे में दबे हुए हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि माल उस समय तय्यार होता है जब उन्हें या तो तय्यारी का सामान दे दिया जाय अथवा अधिक से अधिक रुपया पेशगी । दस्तकार यह काम न तो अपने लिए करता है और न अपनी अभिरुचि से बल्कि सम्पन्न कारखाने के मालिकों के लिए । ऐसी दशा में उसकी हैसियत केवल एक मजदूर की रह जाती है । कारखाने के मालिक सस्ता और मामूली माल थोड़ी सी मजदूरी में तय्यार कराके दस्तकार पर एहसान जताता है और तय्यारी माल पर लागत अधिक आती है, जो माल खरीदने वाले को बहुत मालूम पड़ती है ।

दस्तकार की यह कठिनाई **ज्वाइन्ट स्टाक बैंक** और **कोआपरेटिव क्रेडिट सोसाइटियाँ** दूर कर सकती हैं, जहाँ से वह तय्यारी का सामान खरीदने के लिए नाम मात्र ब्याज देकर ऋण ले सकता है, पर ऐसी सोसाइटियों के न होने पर वह अपनी आवश्यकताओं के लिए वह साहूकार, महाजन, विदेशी मुगलियों और कारखानेदारों का याचक बना रहता है, जो उसे पनपने नहीं देते । तय्यार माल की निकासी और खपत के स्थानों से अनिभिज्ञ होना भी एक ऐसी कठिनाई है जो उन्हें आगे बढ़ने से रोक देती है । उत्तर प्रदेश में **औद्योगिक सहयोगी एक्ट** और मद्रास, उड़ीसा, बिहार, पश्चिमी बंगाल में **राजकीय सहायता एक्ट** पास करके कुटीर-उद्योग-धंधों को आगे बढ़ाने का प्रयास किया है ।

उचित व्यवस्था और प्रबन्ध का अभाव अथवा प्रबन्ध की दुर्दशा आदि ऐसी कठिनाइयाँ हैं जो दस्तकारों को पीछे हटाने के लिए काफी हैं । दस्तकार कच्चा माल और कारबारी औजार खरीदने से तो असमर्थ है हो, इनकी कोई उपयोगी संख्या भी नहीं है इसलिए इनका सब कुछ कारखानेदारों की इच्छा पर निर्भर है ।

यह कठिनाई कोआपरेटिव सोसाइटियों द्वारा दूर की जा सकती है यदि सरकार की ओर से कोई **"केन्द्रीय व्यपार मंडल"** बन जाय और माल के क्रय-विक्रय का प्रबन्ध उस के हाथ में हो जाय तो माल की निकासी में बड़ी सहायता मिल सकती है ।

उत्तर प्रदेश, आसाम और काशमीर के आर्ट क्राफ्ट इम्पोरियम और मैसूर का होम इन्डस्ट्री विभाग इस सम्बन्ध में बड़े उपयोगी हैं।

खोज, जाँच-पड़ताल, और टेकनिकल सहायता का अभाव भी कुटीर-उद्योग-धंधों राह में एक रोड़ा है। इस कमी की पूर्ति के लिए भारतीय सरकार ने जापान के अनुभवी और निपुण कलाकार बुलाये और शरणार्थियों को उनसे कुछ धंधे सिखलाये। काटेज इन्डस्ट्री बोर्ड ने अधिक खोज और जाँच पड़ताल का काम अपने ऊपर लिया।

कलाकारी की निरक्षरता और शिक्षा की कमी गवर्नमेंट इन्फारमेशन एजेन्सियों द्वारा दूर की जा सकती हैं। क्या अच्छा, होता, यदि देहातों में विद्युत-शक्ति सस्ती इकाइयों पर दी जाती जिससे हस्तकलाकार व्यर्थ समय नष्ट करने से बच जाते और उनके पास अच्छे प्रगति शील औज़ार होते जो उन्हें अच्छा माल तैयार करने में सहायता देते।

इस सम्बन्ध में सरकार की ओर से कुछ काम हो जाना अति आवश्यक है, जैसे यह कि कच्चे माल की तय्यारी और उत्पादन, ग्रामीण क्षेत्रों में लघु और माध्यम इकाइयों में की जाय, ग्रामीण कृषक क्षेत्रों में छोटी मात्रा और माध्यम मात्रा में उत्पादन करने वाले औद्यौगिक कारखानों का एक जाल बिछा दिया जाय।

कुटीर-उद्योग-धंधों को पृथक रखने के स्थान पर उन्हें बड़ी मात्रा में उत्पादन करने वालों कारखानों के साथ मिला दिया जाय।

कुटीर-उद्योग-धंधों और छोटी मात्रा में उत्पादन करने वाली कलाओं का विकास करने एवं उन्नति शील बनाने के लिए सरकार ने पँचवर्षीय योजना में एक मुख्य स्थान दिया है। कनाडा, यू०एस०ए०, न्जयूलैंड, आस्ट्रेलिया, पूर्वी द्वीप समूह, ईरान, एराक, टर्की, अरब, मिश्र, मेडीगास्कर आदि देशों तक ऐसा तय्यारी माल पहुँचाया जा रहा है। पंचवर्षीय योजना में कुटीर-उद्योग-धंधों को आगे बढ़ाने के लिए कई प्रस्ताव पास किये गये और उन्हें प्रयोगात्मक बनाने के लिए केन्द्रीय सरकार ने पंद्रह करोड़ और प्रादेशिक सरकार ने बारह करोड़ रूपया सहायता के रूप में प्रदान किया। हस्तकलाओं की शिक्षा दीक्षा भी स्वीकृति की है। जैसे—नीम के तेल से साबुन बनाना,धान से चावल निकालना, खजूर से गुड़ बनाना, खाँडसारी चीनी, चमड़े की रंगाई, ऊनी कंबल, दियासलाई, दफ्ती कागज और मधुमक्खी पालन इत्यादि।

	१९५०-५१	१९५५-५६
१—औद्योगिक स्कूलों की संख्या	३६५	४५६
२—ट्रेनिंग पाये हुए व्यक्तियों की संख्या	१४,१५०	२१,७९७
३—औद्योगिक ट्रेनिंग स्कूलों की संख्या	२६०	४०७
४—ट्रेनिंग पाये हुए व्यक्तियों की संख्या	२६,७०३	४२,९९७

समस्त भारतीय खादी एवं ग्रामीण हस्त कला बोर्ड जो जनवरी १९५३ में स्थापित हुआ और जिसके द्वारा टेक्निकल औज़ारों की पूर्ति ट्रेनिंग स्कूल, क्रय-विक्रय और माल की खपत का प्रबन्ध उत्पादन और माल की तैयारी के सम्बन्ध में राय देना आदि जैसे उच्च कोटि के कार्य हुए। इस स्कीम पर १९५३-५४ में कुल १९७'२ लाख रूपया व्यय हुआ।

ग्रामीण औद्यौगिक बोर्ड समस्त भारतीय करघा बुनाई बोर्ड ने ग्रामीण बुनकरो को उन्नति-शील एवं प्रगति-शील बनाने का बीड़ा उठाया और इसके लिए दोनों बोर्डों ने २१९ लाख और ६३'५ लाख रुपया व्यय किया। ग्रामीण औद्यौगिक बोर्ड ने एक केन्द्रीय क्रय-विक्रय सघं स्थापित किया जिसकी शाखायें मद्रास, बम्बई और बनारस में खोली गयीं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कुटीर-उद्योग धंधों को उन्नति देने के लिए नाना प्रकार की योजनायें और स्कीमें बनाई जा रही हैं और उन्हें विदेशों में जन प्रिय बनाने के लिए भारतीय कुटीर-उद्योग धंधों की प्रदर्शनियाँ लगाने के अतिरिक्त नाना प्रकार के प्रयास किये जा रहे हैं और उन्हें सहायता देने के लिए छः प्रदेशों में स्टेट फाइनेंशियल कारपोरेशन स्थापित हुए पंजाब सौराष्ट्र ट्रावनकोर-कोचीन, बम्बई, हैदराबाद और पश्चिमी बँगाल।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी कुटीर उद्योग धंधो की उन्नति की ओर बड़ा ध्यान दिया गया है। दूसरे पृष्ठ पर दिए हुए आंकड़ों से अनुमान किया जा सकता है :—

भारत में सहकारी आन्दोलन का विकास

सहकारिता आन्दोलन उस समय तक सफल नहीं कहा जा सकता जब तक कृषक सन्तुष्ट और सम्पन्न न हो जाँय।

"शात पाँच की लाठी और एक का बोझ", जैसी कहावतें यदि एक ओर हमारी पारस्परिक सहानुभूति की भावनाओं पर प्रकाश डालती हैं, तो दूसरी ओर शादी-विवाह और ऐसे ही अन्य समारोहों में न्योते आदि का प्रचलन ऐसी ही भावना का एक स्पष्ट प्रमाण बन सकती है, परन्तु आप विश्वास कीजिये, कि इस भावुक पारस्परिक सहानुभूति और सहयोग से उस आन्दोलन का कोई सम्बन्ध नहीं है, जिसे हम सहकारी आन्दोलन का नाम देते हैं।

यह आन्दोलन विदेशी सुधारकों की देन है। इसका जन्मदाता, एक अँग्रेज समाज-सुधारक **रावर्ट ओवेन** था, जिसने इसकी बुनियाद किसी आर्थिक ध्येय पर रखी है। अर्थशास्त्र ज्ञाता **स्ट्रिकलैंड** का भी यही विचार है जैसा कि उनकी इस व्याख्या से प्रकट है।

"कुछ व्यक्तियों की ऐसी संस्था, जो ईमानदारी और सामूहिक दिलचस्पी के साथ काम करके कोई आर्थिक ध्येय प्राप्त करना चाहे साथ ही साथ इस सहयोग की बुनियादें स्वयं सेवा की भावनाओं और जन स्वतंत्रता पर आधारित हों......"

इंगलैंड में **रावर्ट ओवेन** ने श्रमिक वर्ग के जीवन पर उन हानिकारक प्रभावों का बड़ी गम्भीरता से निरीक्षण किया, जो सम्पन्न और बोर्जुआवर्ग उन पर डाल रहा था। श्रमिकों और प्रोलतारी वर्ग की आर्थिक दुर्दशा देख कर ओवेन साहब को

सहयोग द्वारा काम करने का विचार पैदा हुआ, कि इस प्रकार श्रमिक वर्ग दरिद्रता से मुक्ति पा सके।

बिल्कुल यही दुर्दशा हमारे यहाँ किसानों की हो रही थी। किसान जमींदारों, साहूकारों और महाजनों के शिकंजे में फँसा फड़फडा रहा था। धरती के छोटे-छोटे टुकड़े जिन पर किसान अपना खून पसीना एक कर रहा था, बड़ी मेहनत से जोतता, खोदता, बोता और अन्न पैदा करता; परन्तु धरती के यह टुकड़े न तो इसे पेट भरने को अन्न दे सकते और न तन ढकने को कपड़ा बकाया लगान, कर्जा और व्याज, बेगार आदि भूत बन कर उसका खून चूसने को तैयार रहतो। इनके अतिरिक्त कुटीर-उद्योग धंधो के कलाकारों, बुनकारों, छोटी मात्रा के हस्त कलाकार और कारीगरों की भी लगभग ऐसी ही दुर्दशा थी। चाहे वे बुनकार जुलाहे और कोईरो होंया कासगर और ठठेरे, चहार दीवारी की आड़ में चिकन और कामदानी बनाने वाली अबलाएँ हो या बीड़ी के दस्तकार, मिट्टी के बर्तन या खिलौने बनाने वाले कुम्हार हों अथवा काँच और लाख की चूड़िया बनाने वाले मनिहार, लिहाफ, पर्दा, पलंग पोश और जाजमों की छपाई करने वाले हों छीपी हों या कालीन और दरियों के बुनकार सब के शरीरों से साहूकार महाजन जोंक की भाँति लिपटे थे और खून चूस रहे थे।

बिल्कुल स्पष्ट है कि भारत जैसे खेतिहर देश में किसानों की आर्थिक दशा सुधा-रने के लिए सहकारी जैसे आन्दोलन की अत्यन्त आवश्यकता थी। इसके साथ-साथ तृतीय श्रेणी और प्रोतारियत वर्ग की दुर्दशा सुधारने और कुटीर-उद्योग-धंधों को आगे बढ़ाने के लिए उनको प्रोत्साहन और सहायता की अत्यन्त आवश्यकता भी थी, किन्तु विदेशी साम्राज्य और उससे अधिक स्वयं अपनी बेपरवाही ने एक लम्बे समय तक इस ओर किसी का ध्यान न होने दिया। अन्त में सर फ्रेडरिक निकल्सन के मन में इस सहयोग भावना ने अगँड़ाई ली और सन् १८८२ ई० में उन्होंने मद्रास गवर्न-मेंट को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की और अपील की, कि जर्मनी की रेफीसेज सोसाइटियों की भाँति कृषि-बैंक स्थापित किये जायँ और उसी ढंग पर भूमि की चकबन्दी भी हो जाय। यह प्रस्ताव भी एक समय तक यूँ हीं हिचकोले खाता रहा और अंत में सन्

१६०४ में सहकारी साख समिति ऐक्ट पास किया, जिसे उसी रिपोर्ट का फल समझना चाहिए।

इस ऐक्ट के अनुसार प्रत्येक प्रान्त में केवल सहकारी साख समितियाँ जन्म ले सकीं, जो नगरों और ग्रामों दोनों में स्थापित हुईं। नागरिक और ग्रामीण समिति का मान दंड और नाम सदस्यों की संख्या पर आधारित हुआ। यदि ८० प्रतिशत या उससे अधिक सदस्य ग्रामीण और कृषक हों तो समिति ग्रामीण कहलायेगी अन्यथा नागरिक।

इनकी देख-रेख और हिसाब-किताब की जाँच-पड़ताल के लिए प्रत्येक सूबे में एक रजिस्ट्रार, असिस्टेन्ट रजिस्ट्रार, कई इन्सपेक्टर और सुपरवाईजर हुआ करते थे। हिसाब की जाँच-पड़ ताल अंकेक्षक करते थे। इनके प्रोत्साहन और अस्तित्व के लिए सरकार की ओर से इतनी छूट थी कि इन पर इनकम टैक्स और स्टैम्प ड्यूटी आदि नहीं पड़ती थी।

इस ऐक्ट द्वारा सहकारी सामतियाँ बहुत जल्दी-जल्दी बनने लगीं परन्तु इनमें कई त्रुटियाँ थीं। सबसे पहली त्रुटि यह थी कि इस ऐक्ट के अनुसार केवल साख समितियाँ उत्पन्न हो सकती थीं और उन्हीं की रक्षा भी हो सकतो थी। अन्य सहकारी समितियों को न तो कोई प्रोत्साहन सवांल था न देख-रेख। दूसरी बड़ी त्रुटि यह थी कि इस ऐक्ट के अनुसार केवल प्रादेशिक समितियों के विकास की सम्भावना थी। केन्द्रीय समितियों के अस्तित्व और विकास की कोई सम्भावना न थी; इसलिए कि ऐसी समितियों की देख-रेख के लिए न तो कोई उचित प्रबन्ध था और न जाँच-पड़-ताल के लिये। सबसे बड़ी कमी यह थी कि ग्रामीण और नागरिक समितियों का भेद केवल एक ढकोसला था।

इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुये सन १६१२ में इस ऐक्ट में संशोधन हुआ, जिसके अनुसार यह सब त्रुटियाँ दूर करने का प्रयास किया गया। तीन प्रकार की केन्द्रीय समितियों की स्थापना मान ली गई :— [१] यूनियन, [२] केन्द्रीय बैंक [३] प्रादेशिक बैंक।

सन १६१६ में इस ऐक्ट ने एक बार फिर पलटा खाया और सहकारिता की

समस्या केवल प्रादेशिक बनकर रह गई और प्रादेशिक सरकारों ने अपनी-अपनी इच्छा तथा वातावरण के अनुसार नियम बना लिए।

केन्द्रीय और प्रादेशिक बैङ्क, अन्वेषण संस्था, और ऐग्रीकलचर रायल कमीशन ने इनके विकास और उन्नति के लिये बहुत से उपयोगी प्रस्ताव प्रस्तुत किये और इस प्रकार सन् १९३० तक समितियों की संख्या ६४००० हो गई, जब १९२० में इनकी संख्या केवल २८००० थी और पूँजी १५ करोड़ से बढ़कर ७४ करोड़ तक पहुँच गई।

सन् १९३० से ४० तक का समय ऐसी समितियों के लिये बड़ा उपयोगी तथा लाभदायक रहा। इसलिये कि इनकी संख्या १ लाख ३७ हजार और पूँजी १०७ तक पहुँच गई। यद्यपि यह समय विकास और वितरण की दृष्टि से अधिक रुकावट और विलियन काल कहा जाता है। कारण यह हुआ कि ऐसी विलियन समितियों के सदस्यों पर सरकारी कर्मचारी प्रभावित होते गये। नि:सन्देह रिजर्व बैंक आफ इंडिया इसी काल की देन है। यह काल इसलिए महत्वपूर्ण है कि इसका एक मुख्य विभाग कृषिसाख की समस्यायें सुलझाने और इन पर गम्भीरता से अध्ययन करने के लिए विशेष कर दिया गया। जो कृषि साख विभाग के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

द्वितीय विश्व युद्ध काल में कृषि वस्तुओं और भोज्य पदार्थ के मूल्य में बढ़ती हो जाने के कारण सहकारी समितियों की आर्थिक दशा पहले की अपेक्षा बहुत कुछ सुधर गई और इनकी संख्या भी बढ़ गयी। सदस्यों ने पिछला ऋण चुकता कर दिया और किसी नये ऋण की माँग बहुत कम हो गई। युद्ध काल और उसके पश्चात् सब से बड़ी बात यह हुई कि सहकारी क्रय-विक्रय समितियों और उपयोगी सहकारी भंडारों की संख्या दिनों दिन बढ़ती गई। सन् १९४५ व १९४६ में समितियों की संख्या १ लाख ७२ हजार और पूँजी १६४ करोड़ रु० हो गई।

हमारे देश में सहकारी आन्दोलन के प्रबन्ध की आधुनिक रूप-रेखा के सम्बन्ध में प्रादेशिक सहकारी बैंकों का नाम सर्व प्रथम रक्खा जा सकता है, जो क्लियरिंग हाउस का काम करता है और संतुलन बनाये रखने का तो एक मात्र साधस समझना चाहिये। इसलिये कि एक स्थान का बढ़ा हुआ धन दूसरे स्थान तक भेजने का

उत्तरदायित्व इसी बैंक पर है। सहकारी बैंकों और नागिरक बैंकों में सम्बन्ध पैदा करने का काम भी करता है। सहकारी समितियों को समय-समय पर उपयोगी सलाहें भी देता रहता है कि उनका काम भली-भाँति चलता रहे। इतनी बात अवश्य है कि ऐसे बैंकों का केन्द्र प्रदेश-प्रदेश के अनुसार भिन्न-भिन्न हुआ करता है। सन् १९४७-४८ में ऐसे बैंकों की संख्या केवल ११ थी और चालू पूँजी केवल २४ करोड़ रूपये; परन्तु सन् १९५४ के समाप्त होते-होते इनकी संख्या और पूँजी दूनी हो गई।

इस सम्बन्ध में दूसरा क्रम केन्द्रीय यूनियन और सहकारी बैंकों का आता है, जिन से प्रारम्भिक समितियाँ सम्बन्धित हैं। यही केन्द्रीय बैंक अपनी सम्बन्धित समितियों की आर्थिक दशा का उत्तरदायित्व रखते हैं। यह दो प्रकार के होते हैं। (१) एकाकी और (२) मिश्रित। पहिले प्रकार के बैंक सहकारी समितियों के साथ विशेष हैं और मिश्रित बैंक इनके अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों और संस्थाओं से भी सम्बन्धित हैं। इनकी पूँजी हिस्सों और एक साथ जमा किये हुये धन पर सम्मिलित हैं, जो प्रादेशिक बैंकों से उधार लिया जाता है। ऐसे बैंकों की संख्या सन् १९५३-१९५४ से ५५० से ४९९ रह गई और सदस्यों की संख्या भी कम हो गई; परन्तु चालू पूँजी ५.८ करोड़ से ६ करोड़ हो गई। तत्पश्चात् प्रारम्भिक सहकारी समितियों का क्रम आता है, जो कृषि और कृषि के अतिरिक्त दोनों प्रकार की होती हैं फिर यह दोनों साख समिति और असाख में विभाजित हो जाती हैं। कृषि समितियों में साख समितियों की संख्या बहुत अधिक है। असाख समितियाँ अधिकाँश सहकारी क्रय-विक्रय समिसियाँ हैं। कुछ ऐसी समितियाँ भी हैं, जो विभिन्न ध्येय पूरे करती हैं।

समितियाँ जर्मनी की "शुल्ज़े-डि-टिश" समितियों की तरह हैं, जिनका कार्य सामूहिक "पूँजी पति कम्पनियों" की भाँति होता है ऐसी समितियाँ अपनी कार्य शील पूँजी हिस्से की विक्री, सदस्यों और अन्य व्यक्तियों की एकत्र की हुई पूँजी से बनाती हैं।

कृषि साख समितियाँ अपनी कार्य शील पूँजी का प्रबन्ध, सदस्यों के प्रवेश शुल्कों, हिस्सों की विक्री, और एकत्र किये हुए धन और उन ऋणों से करती हैं

जो वह सदस्यों के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति से, रायल सहकारी तथा केन्द्रीय बैंकों से लेती हैं। इनके कर्मचारी अधिकाँश अवैतनिक हैं। सन् १९४७ ई०तक ऐसी समितियों की कार्यशील सामूहिक पूँजी ३१ करोड़ रुपये थी।

हमारे देश में इस आन्दोलन को वह लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी, जो डेनमार्क, स्वेडन या अन्य विदेशी देशों में प्राप्त हुई और न यह आन्दोलन उस विकास को प्राप्त कर सका, जैसा कि अन्य देशों में फलदायक हुआ। इस सफलता के कई कारण हैं।

इस सम्बन्ध में हम उन तमाम त्रुटियों को जिम्मेदार ठहरा सकते हैं जो समितियों की रूप-रेखा से सम्बन्धित हैं अर्थात इतने विशाल देश और इतनी अधिक जन सख्या में केवल २० प्रतिशत जन संख्या के लिए लाभ उठाने का प्रबन्ध हो सका। सदस्यों का असीमित उत्तरदायित्व भी उसकी असफलता का एक कारण बना। समितियों का एक अंगी होना, कि उनका कार्य केवल ऋण के लेन-देन तक सीमति रहना भी इनकी असफलता का एक मात्र साधन बना। सहकारी आन्दोलन की दशाओं से विभिन्न स्तरों पर एक का दूसरे से मिश्रण होने की असम्भावना इसके अतिरिक्त जाँच पड़ताल और देख रेख करने वालों की न तो कोई ट्रेनिंग होती थी और न उनमें स्वयं इतनी योग्यता ही होती थी कि सहकारिता का कार्य भली-भाँति चला सकें। हिसाब-किताब बहुत उलझा सा रहता था जिसकी जिम्मेवार कार्य-कारिणी संस्था है।

कृषि के लेन-देन, क्रय-विक्रय समितियों और उनके प्रयोगात्मक कार्य में किसी प्रकार का कोई आँगिक सम्बन्ध स्थापित न रह सका। सरकारी कर्मचारियों से जन-साधारण का भय ऋण लेने में विलम्ब के अतिरिक्त ऋण लेने से पहले धन की आवश्यकता पड़ती थी कि कर्मचारियों आदि को घूस दी जा सके।

सहकारी समितियाँ केवल विशेष आवश्यकताओं के लिए रुपया उधार देती हैं, परन्तु किसान को विभिन्न आवश्यकताओं के लिए रुपया चाहिए जैसे सिंचाई बैल की खरीदारी आदि और इन आवश्यकताओं के लिए उतना रुपया उधार नहीं मिल सकता जितना कि किसान चाहता है। उधार लेने वाले व्यक्ति पर विभिन्न

प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं, जिन्हें वह सहन नहीं कर सकता। उधार भी केवल बड़े-बड़े काश्तकारों और मामूली जमीदारों को ही मिल सकता है। कृषक को जितना ब्याज साहूकार को देना पड़ता है लगभग उतना अथवा कुछ उससे अधिक सहकारी समितियों को देना पड़ता है जिसमें कर्मचारियों को घूस और भेंट दोनों सम्मलित हैं।

इन्हीं कारणों से हमारे देश में सहकारी आन्दोलन को वह सफलता प्राप्त न हो सकी जैसी वास्तव में होना चाहिए थी।



पंच शील

"पूर्व और पच्छिम कभी नहीं मिल सकते"

—किपलिंग

"जहाँ चाह है वहाँ राह है"

शील शब्द का सामान्य अर्थ शिष्यटाचार्य से सम्बन्धित है और इसीलिए बौद्ध धर्म में मानव शिष्टाचार्य बनाने के लिए पाँच नियम बनाये। और उसी के द्वारा ये पाँच नियम प्राप्त हुए। मूल रूप में ये सिद्धान्त इस प्रकार हैं :

(१) अहिंसा, (२) अस्तेय, (३) सत्य, (४) अपरमाण, (५) ब्रह्मचर्य।

इन्हीं धार्मिक नियमों के आधार पर और पंच शील के सिद्धान्तों से प्रभावित हो कर सन् १९५४ के जून मास में वर्तमान युग की आवश्यकताओं के अनुसार भारत और चीन ने मिल कर बौद्धिक पंच शील को एक नया रूप दिया।

(१) अहिंसा के प्रति आधुनिक पंच शील का प्रथम सिद्धान्त यह ठहरा कि एक दूसरे के आन्तिरिक विषयों में किसी प्रकार का हस्ताक्षेप न करना हमारा धर्म है।

(२) एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता एवं प्रभ्रसत्ता के प्रति पारस्परिक श्रद्धा भाव रखना।

(३) समानता एवं पारस्परिक लाभ।

(४) अनाक्रमण।

(५) शान्तिमय सहअस्तित्व।

२२ जून सन् १९५५ को पंच शील के नवीन स्वरूप के प्रथम सिद्धान्त में थोड़ा परिवर्द्धन किया गया। भारत और सोवियत रूस ने पंचशील एवं शान्तिमय सह-अस्तित्व के सिद्धान्त पर स्वीकृति देते हुए इस प्रकार समझौता किया—किसी प्रकार के आर्थिक, राजनीतिक अथवा सैद्धान्तिक कारणों से दूसरे के आन्तरिक विषयों में

हस्तक्षेप न करना हमारा एक यात्र कर्तव्य होगा। इसी के आधार पर योरप के इंगलैड, युगोस्लाविया आदि देशों के साथ् भारत ने शान्तिमय सहअस्तित्व के सम्बन्ध में घोषणायें की।

यदि हम ध्यान पूर्वक अध्ययन करें तो ज्ञात होगा कि बौद्ध धर्म के पंचशील के अपेक्षा आधुनिक पंच शील अधिक व्यापक है और इसीलिए दोनों में कुछ अन्तर भी है। बौद्धधर्म ने पंच शील के नियम, व्यक्तियों के बीच पारस्परिक श्रेष्ठ व्यवहार एवं शिष्टाचार के लिए प्रतिष्ठित किए थे। किन्तु आधुनिक पंच शील भारत और चीन द्वारा राष्ट्रों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध एवं शान्तिमय व्यवहार के लिए स्थापित किए गये हैं। इस प्रकार बौद्ध पंचशील व्यक्तिपरक से बढ़कर राष्ट्र-परक बन गये हैं।

व्यक्तिगत अहिंसा को अब इस प्रकार व्यापक रूप दिया गया है कि एक देश द्वारा दूसरे देश को किसी प्रकार का आघात न पहुँचना चाहिए।

अस्तेय के अन्तर्गत एक देश द्वारा दूसरे देश की भूमि क्षेत्र आदि का अपहरण करने की कुप्रवृत का समाहार किया गया है।

(१) सत्य की व्याख्या, इस प्रकार हुई है कि परोक्षरूप से एक देश दूसरे देश में अपने प्रतिनिधियों द्वारा ठग चातुरी को प्रोत्साहन न देगा।

अप्रमाद शान्तिमय सहअस्तित्व के रूप में अपने उत्तरदायित्व को इस प्रकार बता रहा है कि इस नियम का पालन न करके एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के विनाश के साथ-साथ तृतीय महायुद्ध द्वारा स्वयं भी नष्ट हो जायेगा। इसलिए शान्तमय सहअस्तित्व पारस्परिक भय, सन्देह, अत्याचार जैसे प्रमादों को दूर करने के कारण अप्रमाद का पर्याय बन गया है।

ब्रह्मचर्य, पवित्र आचरण का प्रतीक है इसके द्वारा सम्पूर्ण राष्ट्रों में पारस्परिक समानता की भावना उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है।

ये पंच शील २६ अप्रैल सन् १६५५ को चीन और भारत के बीच एक संधि के रूप में प्रकाशित हुए। इन्डोनेसिया की बगडग .कानफ्रेन्स में इन सिद्धान्तों में परिवर्द्धन हुआ। शान्ति मय सह-अस्तित्व का सिद्धान्त विश्व व्यापक बन रहा है, और बहुतेरे देशों ने इसे मान लिया है कि पंच शील जैसी वस्तु विश्व प्रिय बनने योग्य है। ऐसे देशो में चीन, इन्डोनेसिया ब्रह्मा, कम्बोडिया, अफगानिस्तान, सउदी अरब, युगोस्लाविया, लाईबेरिया, पोलैंड और सोवियत रूस हैं। अन्तर्राष्टीय सम्पर्क उत्पन्न करने के लिए इन पाँच सिद्धान्तों को विस्तृत करने का विचार है। यदि रूस और भारत जैसे दो देश मैत्रिक रूप में साथ-साथ काम करने के लिए तैयार हो सकते हैं तो कोई कारण नहीं मालूम होता कि शान्ति मय सह-अस्वित्व के लिए सभी देश क्यों न तैयार हो जाँय जब की रूस और भारत की राजनैतिक आदर्शों और आर्थिक व्यवस्था में बड़ी बिभिन्नता हो। सोवियत, ब्रह्मा नेताओं का भारत में सफल आगमन इस बात का प्रमाण है कि डो बारनर का विचार और किर्पलिंग का यह कहना "पूर्व, पूर्व है और पच्छिम, पच्छिम" ये दोनों कभी नहीं मिल सकते नितान्ता गलत है।

पंच शील के सम्बन्ध में कुछ सन्देह उत्पन्न हो गये हैं जिन्हें दूर करना अति आवश्यक है। पीबुल सग्राम थाई लैंड के प्रधान मंत्री ने पंचशील माननें से इन्कार कर दिया। और उन्होंने संकेत किया कि पंच शील जैसी वस्तु मान लेने के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मान को धक्का लगेगा। यदि हम संयुक्त राष्ट्र संघ के आदर्शों और ध्येय को दृष्टि में रखें तो प्रतीत होगा कि पंचशील के आदर्श उससे विभिन्न नहीं हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के जेनरल सेक्रेट्री हमारस्कजोयल्ड ने २ फरवरी सन् १६५६ को बंलौर में भाषण देते हुए कहा कि उन्हें पंचशील का अध्ययन करते समय संयुक्त राष्ट्र संघ के आदर्शों के पुनरस्वीकृति का अनुमान हुआ। साथ ही साथ यह भी कहा कि पंचशोल सिद्धान्त स्वीकृत करने का यह अर्थ नहीं है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के विपरीत किसी दूसरे संघ की स्थापना हो रही है।

यह भी कहा जाता है कि शान्तिमय सहअस्तीत्व व्यवहारिक रूप में असम्भव

है। 'ए काल टू ग्रेटनेस' में अदालाय स्टेवेन्सन, इस प्रकार लिखते हैं, "भूत काल में संधर्ष करने वाले वर्ग आज वर्तमान काल में साथ-साथ रह रहे हैं।" उदाहरण स्वरूप रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टेन्ट, मुसलमान और ईसाई धार्मिक विचारों में विभिन्नता रखने पर भी साथ-साथ रहते हैं। इन उदाहरणों को सामने रखते हुए हम कह सकते हैं कि साम्यवादी और असाम्यवादी देश भी शान्तिमय सहअस्तित्व रख सकते हैं। जैसा खुरस्चीव ने स्वयं कहा है कि सहअस्तित्व आवश्यक है।

इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक दो शक्तिशाली दलों में बड़ी गहरी खाई बन गयी है और इसे एक दिन में पाट देना असम्भव जान पड़ता है। इन दोनों शक्तिशाली दलों में आणुयिक शक्ति श्रेष्ठता की एक अँधा धुँध दौड़ हो रही है। इसके अतिरिक्त इस बात पर भी विचार करना है कि भूत काल में संयुक्त राष्ट्र चार्टर में भी शान्तिमय सह-अस्तित्व और अंहिसा पर बड़ा जोर दिया गया। लीग आव नेशन के काबिनेन्ट में भी अनाक्रमण और अत्याचार के विरोध का दावा किया गया तो भी विश्व में न तो शान्ति हो सकी और न युद्ध ही बन्द हो सके। यदि युद्ध समाप्ति के लिए शान्तिमय समझौते की आवश्यकता है और यह उसी समय सम्भव है जब एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की भावनाओं का सम्मान करे।



हवाई यातायात

मैंने भविष्य की एक झाँकी देखी, मुझे विश्व का एक रोचक दृश्य
दिखाई दिया और सबसे अधिक आश्चर्यजनक दृश्य यह था
कि
वायु-मडल वायुयानों से भरा पड़ा था
और
हवाई उड़ाके ब्यापारिक गाँठे ले-ले कर उतर रहे थे।

—टेनिसन

अपने देश की कथाओं के पन्नों पर हम उड़नखटोले देख चुके थे जिनमें अप-सरायें उड़ती थीं। अलिफलैला की कहानियों में उड़ते हुए तख्त और कालीन भी देख चुके थे। हवाई किले बनाना, हवा बाँधना और हवा में उड़ना सब कुछ जानते थे। हम यह सब कुछ करने में चाहे जितने ऊँचे उड़े हों, परन्तु वास्तविक रूप में हम हवा में उड़ने से उस समय तक अनिभिज्ञ और पृथक से ही रहे, जब तक अन्य देश इस मैदान से आगे नहीं बढ़ गये।

राइट भाइओं, मोन्टगोल लैंगले निर्गेसर आदि उड़ाकों ने इस दिशा में जो सफ-लता दिखाई उसके कारण योरोपीय देशों में वायुयानों ने यातायात में बड़ी सुविधा पैदा की।

योरोपीय देशों में यद्यपि प्रथम महायुद्ध के पश्चात् से ही वायु-सेनाओं का वि-कास होने लगा था, किन्तु हमारे देश में जब उच्च शिक्षा पर पूँजीपतियों तथा बुर्जुआ वर्ग का अधिकार रहा है तब फिर भला वायुयानों में उड़ने की ट्रेनिंग और हवाई क्लबों पर किस भाँति यह अधिकार न रहा हो और यही कारण है कि हमारे देश में सन् १६२८ से पहले क्लबों और पाइलेट ट्रेनिंग का अभाव रहा है।

सन् १६२८ ई० में ब्रिटिश राज्य की ओर से देश के प्रसिद्ध स्थानों पर कुछ हवाई अड्डे बनाये गये और हवाई क्लब खोले गये। सन् १६१६ ई० में एक अँग्रेज

कम्पनी, इम्पिरियल एयर वेज की देख-रेख में कोआपडन करॉंची एयर सर्विस का उद्घाटन हुआ और एक वर्ष के भीतर इसके पग देहली तक बढ़े। बृटिश गवर्नमेन्ट ने देहली और करॉंची के बीच एक वर्ष के लिए हवाई डाक का ठेका भी कर लिया जो समय बीतते ही सन् १६३१ में टूट भी गया।

सन् १६३३ में 'ट्रान्स कान्टी नेन्टल एयर वे लिमिटेड' के नाम से एक कम्पनी का करॉंची में उद्घाटन हुआ, जिसमें भारत गवर्नमेंट २५ प्रतिशत, यूनाइटेड किंगडम २५ प्रतिशत और बृटिश एयर वेज लिमिटेड ५० प्रतिशत की साझेदार थी। अब इस सर्विस का फैलाव लंदन, करॉंची सर्विस से सिघांपुर और आस्ट्रेलिया तक हो गया। करॉंची, सिघांपुर की श्रृंखला इंगलैंड आस्ट्रेलिया की श्रृंखला के साथ सप्ताह में एक बार सम्बन्धित हो गयी और यही श्रृंखला कलकता ढाके के बीच और करॉंची लाहौर के बीच सप्ताह में दो बार सेवा करने लगी।

देश के भीतर हवाई यातायात का प्रारम्भ सन् १६३२ से हुआ जब टाटा एयर-लाइन लिमिटेड स्थापित हुई और देहली इसका केन्द्र बनी। टाटा कम्पनी ने प्रारम्भ में केवल एक सीट का सिलसिला जारी किया सन् १६३३ में जब इंडियन नेशनल-एयर वेज लिमिटेड कम्पनी स्थापित हुई तो १६३६ ई० तक यह श्रृंखला बम्बई द्वारा कोलम्बो तक पहुँच गयी और इस कम्पनी ने लंदन आस्ट्रेलिया सर्विस में साझा कर लिया इसी वर्ष एयर सर्विस आफ एंडिया लिमिटेड स्थापित हुई जो बम्बई और काठियावाड़ के बीच सेवा करती रही। इस कम्पनी ने बड़ी सच्ची सेवायें कीं और भार बरदारी का ७० प्रतिशत भाग इससे लाभ उठाता रहा। किन्तु १६४० में आर्थिक दशा बिगड़ जाने के कारण यह कम्पनी टूट गयी। १६३८ ई० में हवाई-डाक स्कीम का उद्घाटन हुआ जिसे बृटिश साम्राज्य की हवाई सेवाओं की एक सामूहिक कम्पनी समझना चाहिए।

हिन्तुस्तान टाटा एयर लाइन की वार्षिक आयु साढ़े चार लाख रुपया रही जो बम्बई और करॉंची से समुद्री डाक ले जाती थी। इंडियन नेशनल एयर वेज की

वार्षिक आय साढ़े तीन लाख रही, जो कराँची और लाहौर के बीच सरकारी डाक पहुँचाती थी।

द्वितीय युद्धकाल (१६३६-१६४५) के प्रराम्भ में दो भारतीय कम्पनियाँ एम्पायर एयर मेल स्कीम की देख-रेख में बराबर काम करती रहीं, और बराबर उसका श्रमिक पाती रहीं। सन् १६४२ में जब जापान इस अखाड़े में कूद पड़ा और भारत एक प्रकार से रण-क्षेत्र समझा जाने लगा, उस समय सरकार ने दोनों कम्पनियों की यथा शक्ति सहायता की और कहा कि वे अपनी राहें और बढ़ा दें। यहाँ तक कि सरकार ने उन्हें हवाई जहाजों के लिये ऋण भी दिया। अन्त में इन दोनों कम्पनियों का मिश्रण हो गया और वार टाइम ट्रान्सपोर्ट कमांड के रूप में सेवा करती रहीं। भारत और सीलोन के बीच इनकी सेवायें सीमित रहीं कम्पनी के वायुयान चाहे खाली हों या भरे प्रत्येक दशा में भारत सरकार उन्हें पूरा किराया देती रही।

द्वितीय महायुद्ध के समाप्त होने पर सम्पन्न वर्ग ने अनुमान किया कि व्यवहारिक दृष्टि से हवाई धन्धा बड़ा लाभदायक है। बहुतेरे पूँजीपतियों ने वायुयान खरीद लिए और इस प्रकार १६५० ई० के अंत में एयर ट्रान्सपोर्ट लाइसेंसिंग बोर्ड ने बारह कम्पिनियों को लाइसेन्स दिये। ऐयर इण्डिया इण्टर नेशनल लिमिटेड के साथ १६४८ में साझा कर लिया, जिसमें भारत सरकार ४६ प्रतिशत और शेष टाटा कम्पनी का साझा था एक प्रबंधक संघ बनाया गया और उसका एक विशेष निर्देशक नियुक्त हुआ जिसे हवाई उड़ान के सम्बन्ध में विशेष अधिकार दिये गये। इस कम्पनी ने बम्बई लंदन सर्विस का काम सप्ताह में तीन दिन आरम्भ किया और नवीन शैली के चार सीट वाले वायुयानों से काम लिया। थोड़े समय में कम्पनी ने जेट प्लेन से काम लेना प्रारम्भ कर दिया। सन् १६५० तक यह काम पूर्वी अफरीका बम्बई, अदन, नरोंबी तक बढ़ गगा। मई सन् १६४६ में भारत एयर वेज लिमिटेड ने कलकत्ता, बैंकाक, हांगकांग और टोकियो तक हवाई उड़ान की शृंखला बढ़ा दी।

भारतीय-वायु यातायात की उन्नति का अनुमान निम्नांकित आँकड़ो द्वारा किया जा सकता:—

वर्ष	कुल यात्रा (हजार मीलों में)	यात्रियों की संख्या (हजारों में)	सामान का यातायात हजार पौंडों में)	डाक (हजारपौंड में;
१९४७	९,३६२	२५५	५०४८	१४०५
१९४८	१२३०९	३४१	११०४८	१५३८
१९४९	१५०९८	३५७	२२५००	६०३२
१९५०	१८०९६	४५३	८०००७	८३५६
१९५१	१९४९८	४४९	८७६६५	७२८२
१९५२	१९५६२	४३४	८६०३८	८३७७
१९५३	१९२०२	४०४	८४८२०	८८४६
१९५४	१९७९८	४०२	८६४००	१०६७४
१९५५	२०७४०	४५२	९२२०९	११११२

अंतर्राष्ट्रीय हवाई उड़ान के सम्बन्ध में कई कठिनाइयाँ पड़ती हैं जो हवाई उड़ान की समस्यायें कही जाने लगी हैं। इनमें सब से पहले पंचम स्वतंत्र यातायात के प्रतिबन्ध की समस्या है। भारतीय कम्पनियों के अतिरिक्त पंद्रह विदेशी कम्पनियाँ काम करती हैं और भारतीय कम्पनियों को इनसे यह शिका-यत है, उपर्युक्त प्रबंध द्वारा विदेशी कम्पनियाँ अनुचित लाभ उठाती हैं। भार-बरदारी और यात्रियों की अधिक संख्या ले लेती हैं।

सन् १९५० में हवाई यानायात जाँच समिति की स्थापना की गई। समिति का विचार था कि हवाई यातायात के राष्ट्रीयकरण से विशेष लाभ सम्भव है। हवाई यातायात की दशा दिनों-दिन बिगड़ती जा रही थी, अतः समिति के सुझाव के बिपरोत सरकार को हवाई यायायात को राष्ट्रीयकरण करने पर बाध्य होना पड़ा।

इस जाँच समिति का विचार कि है पूर्वी और पश्चिमी विदेशी सेवा के लिए केवल एक कम्पनी होना चाहिये और यह पश्चिमी सेवा के लिए कुछ कठिन न होगा जो कुछ अंश में सरकार से सम्बधित भी है, एक ऐसी साप्ताहिक सेवा शाखा प्रारम्भ कर देना जो भारत के पार बैंकाक सिंघापुर बम्बई और कलकत्ता होती हुई जाय इस

प्रकार भारतीय शाखायें कुछ मात्रा में उस हवाई भार-बरदारी को ले सकेंगी। जो दक्षिणी-पूर्वी एशियाई देशों की भार-बरदारी सम्भालती हैं।

भारतीय हवाई उड़ान का एक महत्त्वपूर्ण विकास रात्रि हवाई सेवा का संचालन है। भारत के चार मुख्य नगर कलकत्ता, बम्बई देहली और मद्रास के बीच रात्रि हवाई सेवा का प्रचलन हुआ। भारतीय समुद्र पार हवाई शृंखला के लिए सरकार ने ठेका स्वीकृति किया।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में हवाई यातायात के विकास की समुचित व्यवस्था की गई थी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में प्रस्तुत यातायात के विकास पर ३०·५ करोड़ रूपये के व्यय की व्यवस्था की गई थी। इतना सब कुछ होने पर भी सरकार को अब भी हवाई यातायात में घाटा उठाना पड़ रहा है।



कृषि योजना

उत्तम खेती, मध्यम बान ।
निषिद्ध चाकरी भीख निदान ॥

कृषी ही हमारे देश अथवा राष्ट्र की आय का सब से बड़ा साधन है।

ओस्वाल्ड स्पिंगलर कृषकों को इतिहास-हीन वर्ग बताते हैं । यह आख्यान किसी अन्य देश के सम्बन्ध में ठीक हो या न हो, पर हमारे देश के कृषकों के लिये बिल्कुल ठीक है । न जाने कितने राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक, परिवर्तन होते रहते हैं और हो चुके हैं—पर ये सब नगरों की चहारदीवारियों से ही टकराते हैं,नागरिक ऐसे परिवर्तनों को जन्म देते हैं और वे ही इनसे प्रभावित होते हैं, इनके लाभ और हानि उन्हीं तक सीमित रह जाते हैं और ग्राम ! जैसे थे वैसे ही रह जाते हैं । ग्रामीण प्रगति की राहों पर कौन कहे, दिनों दिन पिछड़ते ही जाते हैं ।

यहाँ पर ग्राम और ग्रामीणों का इतिहास नहीं देना है पर इतनी बात तो निश्चित है, कि बृटिश-सामराज्य काल में कृषक और अन्य ग्रामीण; जमींदारों, तालूकेदारो, साहूकारों और महाजनों के पंजों में फँसे रहे और उनकी उँगलियों के इशारों पर नाचते रहे । न तो राजाओं और तालुकेदारों ने उनकी ओर कोई ध्यान दिया और न स्वयं सामराज्य ने कोई परवाह की । वे धरती के छोटे-छोटे टुकड़ों को छाती से लगाये अन्न पैदा करते रहे जमींदारों, महाजनों, साहूकारों के लिये और स्वयं भाग्य के पुजारी कृषक लंघन करते रहे । ऐतिहासिक दृष्टि से १६०० तक बृटिश-सरकार ने इनके लिये कुछ न किया और जो कुछ किया वह केवल इतना कि तकाबी साख-ऐक्ट स्वीकृत किया । उस समय से अँग्रेजी सरकार ने सिंचाई और मोहरी-व्यवस्था की ओर कुछ ध्यान अवश्य दिया । प्रथम महायुद्ध काल में भी थोड़ा-बहुत ध्यान दिया गया । इस दशा में यदि किसान और अन्य ग्रामीण आधुनिक परिवर्तनों

और संस्कृति से अनभिज्ञ रहे, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं । "टाल्सटाई के शब्दों में (किसान) स्वयं अपने आप को भी नहीं पहचानता ।" यही कारण है कि किसान, जो कुछ कर सकता है, वह केवल जमींदार अथवा सरकार की आज्ञा से; वह जो कुछ भी कर सकता है केवल हाकिमों के प्रभाव से। ऐसी दशा में कृषि-योजना, जिसे भारत के समस्त ग्राम-क्षेत्र की योजना कहना चाहिये, एक बड़ी जटिल समस्या है। यह केवल एक कृषि समस्या ही नहीं है, वरन् ग्रामीण जनता में वह जागृत और चेतना पैदा करने की समस्या है,जो ऐतिहासिक हालतों ने निर्जीव कर दी है। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है, कि किसान के हाथ-पाँव भी उसके अपने नहीं। वह दूसरों के कहने पर उन्हें उठाता है, उन्हें चलाता है और वह भी दूसरों के लिये। वह राजनीतिक अखाड़े में भी दूसरों के हाथों का एक खिलौना बना रहा है।

इतनी बात जान लेने पर हमें एक बात और न भूलना चाहिये, कि भारत देश छोटी मात्रा पर खेती करने वाला एक देश है। देश की जन संख्या का तीन चौथाई भाग धरती के छोटे-छोटे टुकड़ों को छाती से लगाये है। और यही उनकी जीविका का एक मात्र सहारा है। ये टुकड़े चाहे भरपेट अन्न दे सकें या न दे सकें फिर भी वे उन्हीं से लिपटे रहेंगे और यह यदि असम्भव नहीं तो भी बड़ा कठिन है, कि वे कोई दूसरा धंधा कर सकें अथवा उनकी प्रवृत्ति किसी दूसरे धंधे की ओर फेरी जा जके ऐसी दशा में यह बात स्पष्ट है कि कृषि-योजना छोटी मात्रा-कृषि पर आधारित होनी चाहिये और इसकी पुष्टि आधुनिक वैज्ञानिक कृषि-उत्पादन साधनों से करनी चाहिये। ऐसा करना मानों एक बहुत बड़ा आन्दोलन करना है, पर हमारे यहाँ के किसानों से ऐसी आशा रखना बेकार है और विशेषतः ऐसी दशा में जब वे प्राचीन परम्पराओं पर मर मिटने को तैयार हों।

कृषि-योजना का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक उत्पादन और कच्चा माल पैदा करना है, जिसकी हमारे यहाँ बड़ी कमी है। यह समस्या केवल ऐसी कृषि-योजना द्वारा ही नहीं सुलझायी जा सकती, जो एक मात्र सरकार की देख-रेख में काम कर रही हो, वरन् बाजारों की सुविधा देने से। कारण यह है कि हमारे यहाँ का किसान इतना ढीला-ढाला है, कि वह बिला प्रेरणा के कोई काम कर ही नहीं सकता। सरकार द्वारा बहुत होगा तो केवल इतना ही कि वह कुछ काम करने को कहेगी और कुछ छोड़

देने को और इसे आप बालू की भीत समान समझें, जिसकी कोई नींव न होगी। यदि कोई ऐसा साधन हो, जिससे किसानों में कुछ जागृति पैदा हो सके। फिर सरकार उन्हें सहारा देती रहे और देख-रेख करती रहे। इसमें संदेह नहीं, कि ऐसी दशा में सरकार को बहुत धन लगाना पड़ेगा और इसकी प्राप्ति के लिये कर-प्रणाली का क्षेत्र विस्तृत हो जायगा इस प्रकार प्रथानुसार भूमि लगान तो बढ़ाना ही पड़ेगा, इसके अतरिक्त कुछ नये सुधार-कर भी लगाये जायेंगे। १९४७ से लेकर आज तक कृषि व्यय बढ़ गया, लाभ-सीमा कम हो गयी। यदि ऐसी दशा में सरकार की ओर से नये-नये कर लादे जायें ताकि योजना-व्यय की पूर्ति हो सके और योजना-कार्य भली-भाँति चल सके, तो सम्भव है कि किसान योजना का विरोधी बन जाये।

कृषि-योजना का प्रारम्भ महा युद्ध काल के बीच १९४३ से होता है, जब युद्ध अवधि के बीच अन्य के अभाव का अनुमान किया गया; योजना १५ वर्ष में औद्योगिक आय ५०० प्रतिशत बढ़ाना चाहती है और कृषि आय १३० प्रतिशत। योजना का एक ध्येय यह भी है कि योजना काल में भारत से विदेशी बाजारों में यहाँ का अन्न न जाने पाये। ऐसा होने से हमारी आर्थिक दशा अनिश्चित सी बन जायेगी! इम्पीरीयल कौंसिल आव अग्रीकलचरल रीसर्च द्वारा जो योजना बनाई गयी थी उसके लिए एक हजार करोड़ रुपया घोषित किया गया। परन्तु कार्यरूप में उसकी ओर कोई ध्यान न दिया गया, जो कुछ हो सका वह केवल 'गवर्नमेन्ट मानीटरी फन्ड' के रूप में। इसके अतिरिक्त सरकार ने एक विशाल सामुहिक नदी-घाटी योजना बनाई। जिनमें से बहुत सी योजनाएँ पूरीं हो चुकी हैं और उनकी प्रतिक्रिया क्या होती है इसकी अभी प्रतीक्षा है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि वृद्धि के लिये क्या साधन किये गये थे उनका वृतान्त निम्नांकित तालिका से प्रकट है।

कृषि	१९५०-५१	१९५५-५६
(१) अन्न (दस लाख टनों में)	५२·७	६१·६
(२) रुई (लाख गाँठों में)	२९·७	४२·२
(३) जूट ,, ,,	३३·००	५३·९
(४) गन्ना (दस लाख टनों में)	५·६	६·३

(५) तिलहन ,, ,,	५·१	५·५
सिंचाई तथा शक्ति		
(६) बड़ी मात्रा में सिंचाई (दस लाख एकड़ों में)	८·५	
(७) छोटी मात्रा की सिंचाई ,, ,,	५०	११·२
(८) विद्युत-शक्ति (१० लाख कीलोवाट में)	२·३	३·५

योजना के लिए ३६१ करोड़ रुपये की स्वीकृत थी जिसमें से १८४ करोड़ रुपया कृषि के लिये और १०० करोड़ से ऊपर सामुदायिक प्रयोजानाओं और ग्राम-सुधार के लिये, २२ करोड़ पशुपालन, दूध आदि के लिये, १२ करोड़ बनों और भूमि-सुधार के लिये।

कृषि-योजना प्रदेशीय सरकार के हाथ में है। केन्द्रीय सरकार केवल महत्त्व पूर्ण बातों में उसकी सहायक है। केन्द्रीय सरकार केन्द्रीय ट्रैक्टर व्यवस्था की पूर्ति, घास चारा वृद्धि व्यवस्था, भूमि परिवर्तन व्यवस्था और सामुहिक सहकारी कृषि की देख-रेख करती है।

सन् १९५०-५१ में अन्न, रूई, जूट, गन्ना, तिलहन उत्पादन की वृद्धि का एक विस्तृत कार्य-क्रम बनाया गया। सन् १९५२ में प्रदेशीय सरकार ने अनुमान किया कि उस कार्य-क्रम में अन्न उत्पादन वृद्धि के साधनों पर व्यय की मात्रा कम रखी गयी है, इसलिए ३० करोड़ रुपया और बढ़ाया गया। सामुदायिक प्रयोजानायें गहरी कृषि की उन्नति के लिये समझना चाहिये। इनका मुख्य ध्येय मानव-शक्ति द्वारा समस्त ग्रामीण जीवन स्तर ऊँचा करने पर केंद्रित रहा है। सिंचाई और जल-विद्युत-शक्ति भी इन्हीं सामुदायिक-योजनाओं पर आधारित हैं और ऐसी आशा की जाती है कि इन प्रयोजनाओं द्वारा ८·५ मिलियन एकड़ भूमि में अधिक सिंचाई हो सकती है और १·१ मिलियन किलोवाट जल-विद्युत-शक्ति बढ़ सकती है। उन प्रयोजनाओं के अतिरिक्त जो पूरी हो चुकी हैं या जिनका कार्य अरम्भ हो चुका है, अन्य प्रयोजनायें भी इसमें सम्मिलित हैं, कोसी, कोहना, कृष्णा, चम्बल और रिहन्ड इन पर लग-भग २०० करोड़ रुपये व्यय का अनुमान है।

योजना आयोग इस सम्बन्ध में अपना विचार इस प्रकार प्रकट करता है कि भारत में कृषि दशा पर दृष्टि रखते हुए उसकी ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता

है। कृषि प्रगति में उत्पादन, कृषकों का जीवन विकास और उनकी अन्य समस्यायें सामाजिक रूप-रेखा, आर्थिक दशा का विकास आदि सभी कुछ सम्मिलित हैं। कृषि योजना का मुख्य ध्येय यह है कि तीव्र परिवर्तनों द्वारा आर्थिक असंतुलन दूर किया जाय। सहकारी आन्दोलन केवल एक व्यक्तिगत व्यवस्था न समझकर, उसे आर्थिक कार्यों के लिये एक मात्र साधन समझना चाहिये।

अन्न उत्पादन सम्बन्ध में कृषि आयोग का विचार है कि जिस भाँति भी हो सके बाहर से अन्न मँगाने की आवश्यकता न पड़े इसलिए जिस प्रकार से भी हो सके अन्न उत्पादन की बृद्धि बढ़ाई जाय, मूल्य और भाव के उतार-चढ़ाव का निर्माण भी होना चाहिए। कम और अधिक भाव कन्ट्रोल द्वारा नियत किया जा सकता है। यदि भाव नियत कर दिया जायगा तो उससे उत्पादन करने वालों को संतोष रहेगा।

धन और आय के असंतुलन को दृष्टि में रखते हुए कमीशन का विचार है कि राष्ट्रीय आर्थिक माँगों को सामने रखते हुए यह आवश्यक है कि श्रमिकों और कृषकों का व्यक्तित्व सुरक्षित रह सके और इसीलिए यह आवश्यक है कि भूमि में इतना विशाल असंतुलन न रहे जितना आजकल है, और इसीलिए आयोग ने किसानों की ये श्रेणियाँ कर दी है :–(१) मध्यम, (२) उत्तम, (३) लघु, (४) लगानदार कृषक, (५) भूमिहीन श्रमिक; ऐसी दशा में यदि किसी एक वर्ग के अत्याचार से दूसरे वर्ग की हानि हो तो उसकी रोक-थाम करना प्रथम कर्त्तव्य है।

कृषि श्रमिकों के उन सामाजिक और आर्थिक त्रुटियों को दूर करना आवश्यक है जिनके कारण उनकी हालत बिगड़ रही है। इसीलिए सिंचाई और खेती की प्रगति का सुझाव रक्खा गया है जिससे श्रमिकों को काम मिलने में कमी न रहे। भूमि-सुधार द्वारा ऐसी सम्भावना है कि भूमि-हीन कृषक श्रमिकों को या तो कुछ भूमि मिल जाय या उन्हें काम की कमी न रहे और यही कारण है कि भूमि-सुधार और भूमि-हीन कृषक श्रमिकों के पुनर्वास के लिए केन्द्रीय सरकार ने दो करोड़ रुपये स्वीकृत किया है।

कुटीर-उधोग-धंधों और खादी की प्रगति की व्यवस्था भी इस योजना में सम्मिलित

है । पिछड़ी जातियों की सहायता और कृषक श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए "मिनिमम वेजेज एक्ट" का प्रचलन किया गया ।

कृषि योजना के कार्य-क्रम के दो भाग हैं :- (१) प्रदेशीय सरकार से विचार विमर्ष के पश्चात् यह निश्चित किया गया है कि योजना के अन्तर्गत १२५ करोड़ रूपये की लागत से ६ मिलियन टन अधिक खादान्न उत्पन्न किया जाय और (२) योजना आयोग द्वारा, इस ध्येय से कि योजना के अन्तर्गत १०६ मिलियन टन अधिक खादान्न उत्पन्न किया जाय एक पूरक कार्य-क्रम बनाया गया है । निम्न सारिणी से योगिक (अधिक) कार्य-क्रम के सामान्य स्वभाव का आभास होता है :—

	करोड़ रूपयों में
(१) छोटे पैमाने पर सिंचाई	३०
(२) ट्यूबवेलों का निर्माण	६
(३) राष्ट्रीय विकास संगठन	३
(४) गवर्नमेंट मानीटरी फन्ड का पूरक पारित १९५२-५३	१०
(५) सामुदायिक योजना	९०

दो अन्य पैमानों का वर्णन इसमें किया जा सकता है । प्रथम योजना के अन्तिम-चरण के उत्पादन-शक्ति को अत्याधिक बढ़ाने का तथा द्वितीय, योजनान्तर्गत कृषि राजस्व की आर्थिक पैमाने पर व्यवस्था । सन् १९५५-५६ में सरकार एवं सहकारी आन्दोलनों द्वारा कृषकों के लिए १०० करोड़ रूपये की लघु-अवधि के राजस्व की व्यवस्था की गयी तथा इसके योग में करीब २५ करोड़ एवं ५ करोड़ मध्यम एवं दीर्घ अवधि की राजस्व की व्यवस्था की गयी ।

योजना की सफलता पर निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है । यहाँ तक कि योजना, आयोग के भी विचार योजना के सफलता के प्रति मिश्रित नहीं हैं । कारण यह है कि यह योजना एक विशाल योजना है । यह योजना केवल एक कृषि योजना ही नहीं है वरन् इसके अन्तर्गत नदी घाटी योजना, विद्युत-शक्ति योजना एवं राष्ट्रीय-

प्रसार संगठन आदि का समावेश है। यह योजना आशिंक रूप से कृषि-योजना है परंतु मानव-जीवन के समस्त पहलुओं पर प्रकाश डालती है। पृथ्वी पर बढ़ती हुई आबादी एवं भारत के किसानों की दिमागी-गुलामी की भावना को ध्यान में रखते हुये यह अनुमान किया जाता है कि इस योजना को सफलता मिलने में कम से कम एक पीढ़ी का समय लग जायगा। आशा यह की जाती है कि योजना का कार्य-क्रम सुधार रूप से चलता रहा तो भविष्य में अवश्य सफलता प्राप्त होगी।



प्रथम पंचवर्षीय-योजना

कोई योजना त्याग एवं बलिदान बिना सफल नहीं बन सकती।

पराधीनता की शृंखलाओं में बंदी भारत १५ अगस्त सन् १९४७ को मुक्त हुआ, और अब स्वतंत्रता का सुख अनुभव करने का उसे अवसर मिला। सम्मान, हर्ष और गौरव; इस स्वतंत्रता ने क्या कुछ नहीं दिया। यह सुख अनुभव करने के लिये, यदि हमारी कल्पना इतना ही सोचने तक सीमित रह जाती है कि साज और वीणा की झंकार पर हमारे मन नाच उठें, तो विश्वास कीजिये कि हमारा यह गौरव कुछ ऊँचा न बना रह सकेगा, और यदि हम इतना कह कर ही चुप बैठे रहते हैं कि—

नव अशोक पल्लव के बंधनवार बँधाओ,
जय भारत गाओ, स्वतंत्र जय भारत गाओ।

तो हम अपने कर्त्तव्य-पालन से मुक्त नहीं हुये। हमें विश्वास रखना चाहिये कि स्वतंत्रता सुख अनुभव करने के लिये हमारे उत्तरदायित्व कुछ और भी हैं; अर्थात इसकी स्वाधीनता के चरम लक्ष्य की सफलता जन-जन के सुख एवं सम्पन्नता में निहित है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रतिभा का पूर्ण विकास तभी कर सकता है, जब उसकी सामाजिक, राजनीतिक, और इनसे बढ़कर आर्थिक शक्तियाँ सुदृढ़ हों; साथ ही साथ उसका जीवन-स्तर भी ऊँचा बन सके। दरिद्रता और बेकारी के भयंकर अभिशाप से छुटकारा पा सके और वह ऊँचे स्वरों में कह सके।

धन्य आज का स्वर्ण दिवस, नवलोक जागरण;
नव संस्कृति आलोक करे जन वितरण।

नव जीवन की ज्वाला से दीपक हों दिशि क्षण;
नव मानवता में मुकुलित धरती का जीवन ॥

इन्हीं उद्देश्यों को सामने रखकर, पं० जवाहर लाल नेहरू ने सन् १६४६ में एक योजना कमीशन का निर्माण किया, जिसके फलस्वरूप योजना कमीशन ने जुलाई सन् १६५० में पंचवर्षीय-योजना प्रस्तावित की।

इस पंचवर्षीय-योजना का कार्य-काल १६५१ से १६५६ तक रहा है।

योजना का मूल-उद्देश्य जन साधारण का जीवन-स्तर ऊँचा और सुन्दर से सुन्दर बनाना रहा है और इसीलिये कृषक वर्ग की ओर अधिक से अधिक ध्यान दिया गया। साथ ही साथ उत्पादन-वृद्धि के साधनों की ओर विशेष ध्यान दिया गया, जिसमें कृषि, सिंचाई, खाद तथा वर्त्तमान खोजों से पर्याप्त नये ढंग के यंत्र-शक्ति आदि वस्तुयें सभी सम्मिलित हैं। सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक न्याय का पूर्णतः पालन करना इस योजना के मुख्य उद्देश्य रहे हैं।

कुल व्यय का अनुमान लगभग २,०६६ करोड़ रुपये का था, जो निम्नांकित साधनों से पर्याप्त किया जाना तय किया गया :—

	(करोड़ रुपयों में)
(१) वित्त के साधनों में, आन्तरिक साधनों द्वारा	१,२५८
(२) घाटे के बजट से	२६०
(३) विदेशी सहायताओं द्वारा	१५६
(४) विदेशी संयोगवश सहायतायें, वित्तकरों आदि द्वारा	३६५

इस प्रकार कुल योग २०६६ करोड़ रु० का अनुमानित किया गया था।

योजना-प्रस्ताव द्वारा स्वीकृत कुल व्यय सर्वप्रथम आवश्यकतानुसार इस प्रकार विभाजित किया गया :—

		(करोड़ रुपयों में)
कृषि तथा सामूहिक प्रयोजनाएँ	......	३६१
जल-साधन	......	१६८

सिंचाई तथा विद्युत-योजनायें	......	२६६
विद्युत	......	११७
मार्ग तथा वाहन-विभाग	......	४६७
उद्योग-धंधे	......	१७३
समाज-सेवा	......	३४०
पुर्नवास	......	८५
विबंध	......	५२

इन सबसे अनुमान कर सकते हैं, कि प्रथम पंचवर्षीय-योजना के मूल उद्देश्य इस प्रकार रहे हैं :—

(१) राज्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न करेगा, जिसमें राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय का पूर्ण पालन हो।

(२) सभी नागरिकों के लिये, चाहे वे पुरुष हों या स्त्री, समान रूप से पर्याप्त जीवन निर्वाह के साधन उपलब्ध कराने के प्रयत्न करना और उनके विकास के लिये समुचित अवसर दिये जायें।

(३) आर्थिक प्रणाली की कार्य-व्यवस्था एवं उत्पत्ति के साधनों में केन्द्रीय-करण द्वारा कोई ऐसा असंतुलन न उत्पन्न कर सके, जिससे समाज के हित में आशंका हो।

(४) समाज के भौतिक साधनों के स्वामित्व का ऐसा संतुलित विवरण किया जाय, जो सामूहिक हित कर सके।

योजना में प्राथमिकता का क्रम इस प्रकार रहा है :—

(१) शरणार्थियों तथा बेघर वालों के लिये पुर्नवास का प्रबन्ध सबसे पहले करना।

(२) कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने वाली उद्योग-प्रणाली के समुचित विकास पर ध्यान देना।

इस सम्बन्ध में इतना बता देना आवश्यक है, कि कृषि देश का सबसे बहुमूल्य धन है और यही हमारे देशवासियों की जीविका का एक मात्र साधन है और

राष्ट्रीय आय का सबसे मुख्य और विशाल साधन भी यही है। यही कारण है कि इस योजना में कृषि विकास और उन्नति का विशेष प्रयास किया गया था। हमारे देश का भौगोलिक क्षेत्र ८११० लाख एकड़ है। जिसमें से १६६० लाख एकड़ छोड़कर शेष धरती का विभाजन इस प्रकार है :—

बन	६३	लाख	एकड़
प्रयोग्यात्मक कृषि क्षेत्र	२६६	"	"
बैन की हुयी भूमि	५८	"	"
अनुपयोगी कृषि भूमि	९८	"	"
बंजर भूमि	९६	"	"

इस भूमि से ७८ प्रतिशत अन्न, १७ प्रतिशत व्यापारिक फसलें, ११ प्रतिशत बाग और सुगन्धित मसालों को पैदावार होती है। ब्रह्मा के पृथक हो जाने और सन् १९४७ के देश विभाजन ने अन्न में लगभग ८ लाख को कमी कर दी। इसकी पूर्ति करने के लिए बाहर से गल्ला मँगाना पड़ता है। सन् १९५१ में ४७ लाख टन अन्न बाहर से मँगाया गया जबकि १९५३-५४ में इससे कुछ कम बाहर से मँगाना पड़ा और पैदावार ९८ प्रतिशत से १०२ प्रतिशत हो गयी।

इस सम्बन्ध में चाय, काफी और रबड़ की उत्पत्ति पर ध्यान देना आवश्यक है इनके खेत समस्त क्षेत्र के १०४ प्रतिशत क्षेत्र पर फैले हैं और अधिकतर देश की उत्तरी-पूर्वी घाटियों और दक्षिणी-पश्चिमी समुद्री तटों पर पाये जाते हैं। इनसे १० लाख से अधिक परिवारों को जीविका मिलती है और वार्षिक आय ८० करोड़ रुपया है। पिछले १० वर्ष से इस उपाय में कोई अधिक बृद्धि नहीं हुई थी पर पंच-वर्षीय-योजना काल में ४३ प्रतिशत की बृद्धि हुई। मसालों, काली मिर्च, इलायची आदि से १९५२-५३ में लगभग २ करोड़ रुपये विदेशी सिक्कों में प्राप्त हुए जब कि द्वितीय महायुद्ध से पूर्व केवल ३ लाख वार्षिक ही मिलता था।

ग्राम-पंचायतों, साख समितियों क्रय-विक्रय समितियों, कृषि औद्योगिक सहकारी समितियों ने सहकारी आन्दोलन को सहारा अवश्य दिया, पर उतनी उन्नति नहीं हो सकी, जितनी होनी चाहिये थी। औद्योगिक कुटीर-धंधों और छोटी मात्रा के धंधों में इस

प्रकार उन्नति हुई कि सन् १६४६ में ८१ से सन् १६५३ में १०४ हो गयी। छोटी मात्रा के धंधे १६४६ में ६५ से १६५२ में ६६ हो गये। कुटीर-उद्योग-धंधों के सम्बन्ध में १६५०-५१ में औद्योगिक स्कूलों की संख्या में अधिक वृद्धि हुई।

सिंचाई और जल-विद्युत प्राप्ति करने में बड़ा प्रयास किया गया। भाखड़ा-नगंल, दामोदर घाटी, हीराकुंड, तुंगभद्रा, काकरा पारा, कोसी, रिहिन्द आदि, प्रयोजनायें इसके सजीव उदाहरण हैं।

(३) यह योजना प्राथमिकतानुसार चतुर्थ क्रम से भौतिक एवं शिल्प साधनों के विकास में योग देने वाली योजनाओं की पूर्ति करने आता है; साथ ही साथ रोजगार तथा उपभोग की वस्तुयें उत्पन्न करने वाले उद्योगों को प्रोत्साहन देती।

(४) लोहा इस्पात, भारी रसायनिक पदार्थ आदि का उत्पादन करने वाले आधार-उद्योगों के उत्पादन क्षमता की वृद्धि करना।

(५) वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था के वे दोष दूर करना, जो विभिन्न राज्यों में आर्थिक अवनति के स्तरो में अंतर पैदा करते हैं।

यातायात साधनों में जो प्रगति हुई है, उसका अनुमान इन आँकड़ों से किया जा सकता है :—

	१६५१	१६५२
पूर्व कालीन रेल पटरियाँ...	५४·१६८ कि०	५४·१६८ कि०
नई बनायी हुई ,,...	...	५०२
योग...	...	५४,७००
रेलगाड़ियों पर लादा गया माल...	१२७मि०टन	१३०मि०टन२.४ प्र०
,, ,, द्वारा ढोया हुआ माल...	४५.७वि०टन	४७.२वि०टन१.१ प्र०
नई बनायी हुई सड़कें...	...	३८६ कि० मीटर
सुधारी गई सडकें...	...	१४००० ,, ,,
राष्ट्रीय मार्ग...	...	२४१५ ,, ,,
राज्य मार्ग...	...	११५८५ ,, ,,
विद्युत...	५.६ कि० वाट	६.२ कि० वाट

इसी प्रकार अन्य विभागों के बारे में हम अनुमान कर सकते हैं। खनिज पदार्थों, सिंचाई, जन-सेवा, पुर्नवास, यातायात, डाक, तार, टेलीफोन, स्वास्थ्य, शिक्षा, सभी विभागों में कुछ न कुछ परिवर्तन हुए हैं, कहीं अधिक कहीं कम और यह भी प्रतीत होता है, कि हमें जितनी प्रगति करनी चाहिए थी, उसको देखते हुए हमारी सफलतायें बहुत सीमित सी रही हैं; फिर भी बहुत से क्षेत्रों में यह प्रगति उल्लेखनीय है। इस योजना का व्यापक प्रभाव इस बात से प्रकट होता है कि पिछले पाँच वर्ष में वास्तविक राष्ट्रीय आय में लगभग १८ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस बीच में प्रति व्यक्ति की आय में ११ प्रतिशत और उपभोग व्यय में ९ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

इतना सब कुछ होने पर भी इसमें कुछ त्रुटियाँ अवश्य रही हैं भारत में जीवन का मान दंड संसार से अब भी बहुत नीचा है। जन-साधारण के भोजन के विषय में कुछ उल्लेख करना उनकी हँसी उड़ाना है; यही दशा कपड़े की है। घरों की अब भी कमी है, शिक्षा सम्बन्धी सुविधायें अपर्याप्त हैं बिजली और इस्पात का प्रति व्यक्ति उपभोग, अमेरिका के उपभोग का केवल १।७३, १।१२० है इन सब से बढ़कर बेरोजगारी तथा अर्ध बेरोजगारी व्यापक रूप से पायी जाती है।

यह सब कुछ समझ लेने पर, हमारे लिये किसी ऐसे नतीजे पर पहुँचना सरल है कि हम इस योजना पर कोई मत प्रकट कर सकें। सांख्यिकीय ज्ञान और साधनों के अभाव देखते हुए इस योजना से बढ़कर कोई योजना बनाना सम्भव न था, इस योजना का मुख्य ध्येय कृषि और उद्योग-धंधो, का विकास रहा है। ऐसी आशा की जाती थी कि योजना का समय समाप्त होने पर जनता अधिक धनी और सुखी होगी और आर्थिक दशा सुधर जायेगी। कच्चे माल और विशेषतः भोज्य पदार्थ के लिए देश को हाथ फैलाना न पड़ेगा। योजना ने यथाशक्ति वैज्ञानिक प्रगतिशील साधनों का प्रयोग करने में वेपरवाही नहीं की। वैज्ञानिक खोजों, टेक्निकल ट्रेनिंग आदि के लिए यथाशक्ति प्रयास किया गया जिसका प्रभाव कुछ समय पश्चात् में ज्ञात होगा।

प्रथम पंचवर्षीय योजना पर इस प्रकार कड़ी आलोचना की जाती है कि राजस्व की प्राप्ति बड़ी सरल समझी गयी और जनता से इतनी बड़ी आशा की गयी जितनी न करनी चाहिए थी। इस सम्बन्ध में दो बातें कही जाती हैं।

(१) केन्द्रीय बजट, प्रदेशीय बजट और रेल विभाग, १६० करोड़ रुपये १७० करोड़ और १७० करोड़ रुपये का आधिक्य क्रम पाँच साल में पूरा नहीं कर सकते थे जैसी की योजना ने आशा की। जनता के कर-देय-शक्ति का ह्रास पहले ही हो चुका था। सरकार और रेलवे विभाग की आय उतनी नहीं हो सकती थी जितना की होना चाहिये। इसका यह अर्थ हुआ कि पंचवर्षीय योजना नियति नीति के अनुसार काम न कर सकी और (२) योजना का अनुमान था कि १९५१-५६ के बीच यौगिक आय का २० प्रतिशत और १९५६-६८ के बीच ५० प्रतिशत पूँजी के निर्माण में व्यय करेगी। भारत जैसे गरीब देश में, जहाँ बहुसंख्या में लोगों की आमदनी इतनी कम है कि वह अपनी आवश्यकतायें पूरी नहीं कर सकते, ऐसा सोचना कि यौगिक आय में कोई वृद्धि हो सके गलत है। यदि यह घटित होता तो भी अगर कुल राष्ट्रीय आय सन् १९५६ तक १०,००० करोड़ बढ़ जाती और व्यक्तिगत आय सन् १९७७ तक दूनी हो जाती तो भी योजना के इस अनुमान की पूर्ति नहीं हो सकती थी। इन आलोचनाओं में कुछ सत्यता अवश्य है पर ये बुनियादी नहीं हैं।

कोई योजना जनता के त्याग बिना सफल नहीं बन सकती और प्रथम पंचवर्षीय योजना की यह त्याग माँग कुछ अधिक अवश्य थी। योजना को आय के सम्बन्ध में जैसी कुछ आशा थी वह पूरी न होने से योजना की प्रगति धीमी रही।

इनके अतिरिक्त योजना के सम्बन्ध में कुछ गम्भीर आलोचनायें हैं। (१) योजना ने उद्योग की अपेक्षा कृषि को अधिक महत्त्व दिया। केवल इस आधार पर कि जो परियोजनायें हाथ में थीं वे पूरी हो जायेंगी और औद्योगीकरण करने के लिए वही परियोजना में पुष्ठ आधार होंगी।

इसका अर्थ यह हुआ कि भारतीय उद्योगों का इतना विकास हो चुका था जितना कृषि का, यह सोचना कहाँ तक ठीक था?

बात ऐसी नहीं है कि कोई भी, जो देश की दशा जानता है, वह अच्छी तरह समझता है कि वर्त्तमान कृषि, कच्चा माल, शक्ति साधन आदि औद्योगिक विकास करने में बड़ी सुविधा प्रदान कर सकते हैं। हाँ! एक बात अवश्य है जिसकी ओर योजना आयोग ने ध्यान नहीं दिया और वह यह कि जब तक यह आगामी औद्योगीकरण

की बुनियादें मजबूत करने के लिए कृषि का विकास करें उस समय तक विश्व की दशा ऐसी बदल जाय जो भारत में औद्योगीकरण करने के लिए अधिक कठिनाइयाँ पैदा करें और ऐसी दशा में जब योजना के सामने आर्थिक विकास का प्रश्न था तो उसे एक संतुलित विकास अपने सामने आवश्यक था।

योजना औद्योगिक विकास को व्यक्तिगत साहस के हाथ में देती है। इसमें कोई हानि नहीं हैं क्योंकि भूतकाल में व्यक्तिगत साहस ने कुशल पूर्वक औद्योगिक विकास किया। परन्तु इसके विपक्ष में यह आलोचना की जाती है कि व्यक्तिगत साहस के हाथ में औद्योगिक विकास का कार्य तो सौंपा गया परन्तु उन्हें साधन सुलभ नहीं किये गये। योजना द्वारा औद्योगिक विकास के लिये नियति की गई पूँजी भारतीय औद्योगिकों की दृष्टि से काफी न थी। इसके अतिरिक्त उद्योग-धंधों को केवल पूँजी की ही आवश्यकता नहीं, उन्हें कुछ और सुविधायें मिलना भी आवश्यक हैं जैसे कर से मुक्ति, डीप्रीसीयेशन एलाउन्स आदि। दुर्भाग्यवश प्रथमपंचवर्षीय-योजना में इन सब सुविधाओं का कोई महत्त्व न था।

प्रथम पंचवर्षीय-योजना में दीर्घ-अवधि परियोजना पर अधिक जोर दिया गया। इसमें सन्देह नहीं कि आर्थिक योजनाओं में दीर्घ-अवधि परियोजनाओं पर अधिक जोर दिया जाता है सोवियत संघ दीर्घ-अवधि परियोजनाओं का सबसे अच्छा उदाहरण है। पर भारत की परिस्थितियाँ उससे बिलकुल पृथक हैं, और इसीलिए दीर्घ अवधि परियोजनाओं की अपेक्षा लघु-अवधि परियोजनाओं पर अधिक जोर देना चाहिए था और ऐसी दशा में प्रति एकड़ उपज शीघ्रता से बढ़ जाती और भोज्य पदार्थ में देश स्वालम्बी हो जाता, और बेकारी की समस्या भी हल करने में सहायक होता।

ऐसी दीर्घ-अवधि परियोजनाओं में एक त्रुटि यह भी है कि सामान की पूर्ति तो दीर्घ काल में होगी जबकि जनता को क्रय-शक्ति अभी ही बढ़ रही हो।

किसी योजना की सफलता उसकी सुव्यवस्था और निपुण कर्मचारियों पर आधारित है। पंचवर्षीय योजना चलाने के लिए कोई विशेष सुव्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दिया गया। कुछ औद्योगिक और नदी घाटी परियोजनाएँ ऐसे कारपोरेशन के हाथ में हैं जिन पर सरकार का अनुशासन बहुत कम रहा है जिसका फल यह हुआ

कि जनता का धन व्यर्थ व्यय हुआ। स्कीमों में परिवर्धन तो हुआ परन्तु उत्पादन में उतनी बढ़ती न हो सकी जितनी आशा की जाती थी।

इन त्रुटियों के होते हुए भी इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रथम पंचवर्षीय योजनायें देश की आर्थिक समस्यायें सुलझाने के लिए एक बड़ा साहसी प्रयास थीं। प्रारम्भ में योजना की प्रगति बहुत धीमी रही। लेकिन यह एक ऐसा प्रयास रहा है जिससे कृषि और उद्योग, उत्पादन, व्यक्तिगत आय की वृद्धि हो सकती है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रथम पंचवर्षीय योजना और आगामी अन्य योजनायें देश की आर्थिक दशा में परिवर्तन अवश्य कर देंगी और देश को धनी और शक्तिवान बना देंगी।

—o—

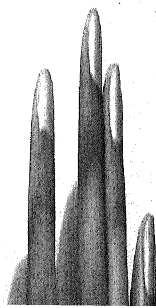
द्वितीय पंचवर्षीय योजना

[१९५६-१९६१]

मंज़िल हज़ार सख्त हो हिम्मत न हारिये।

यह अरण्य झुरमुट जो काटे अपनी राह बना ले,
क्रीत दास यह नहीं किसी का, जो चाहे अपना ले।
जीवन उनका नहीं युधिष्ठिर, जो उससे डरते हैं।
वह उनका, जो चरण रोप निर्भय होकर लड़ते हैं।

—दिनकर



पं० जवाहर लाल नेहरू ने ठीक ही कहा है, कि "जीवन प्रवाह निरंतर जारी रहता है, और उसी भाँति योजना और विकास का प्रवाह भी समाप्त नहीं होता। जो योजनाएँ राष्ट्रीय जीवन-प्रवाह का नियमन करतीं हैं निरन्तर जारी रहने वाली प्रक्रियाएँ हैं।"

प्रथम पंच वर्षीय योजना प्रगति यात्रा के पथ में पहला चरण था, जो भरपूर उठ चुका है; द्वितीय पंच वर्षीय योजना उसी प्रगति की ओर दूसरा पग है।

प्रथम पंच वर्षीय योजना ३१ मार्च सन् १९५६ को पूरी हुई; किन्तु हमारे प्रधान मंत्री के शब्दों में "हमारी इस यात्रा की ओर दूसरा पग उठाने के लिए बहुत पहले से ही तैयारी की जा रही थी।"

अप्रैल १९५४ में योजना आयोग ने राज्य सरकारों से अनुरोध किया, कि वे ग्रामों, तहसीलों, और जिलों के लिए पंचवर्षीय विकास कार्यक्रम तैयार करें और

ऐसा करते हुए कृषि उत्पादन, ग्रामोद्योग और सहकारिता पर विशेष रूप में ध्यान दें। यह अनुभव किया गया कि स्थानीय योजनाओं के साथ जनता का सम्पर्क होने से राष्ट्रीय प्रयत्नों में जनता और अधिक भाग लेगी। दूसरी ओर आयोग ने योजना के व्यापक अंगों का अध्यन भी प्रारम्भ कर दिया। मार्च १९५१ में इन अध्यनों के परिणाम को प्रोफेसर पी० सी० महलानवीस ने योजना के मसविदे को एक ढांचे के रूप में संकलित किया, साथ ही साथ "दूसरी पंचवर्षीय योजना" के लिए एक स्थायी ढांचा भी तैयार किया गया।

सच पूछिये तो प्रथम पंचवर्षीय योजना अपनी राह से उन काँटों और झाड़ियों को दूर करने का प्रयास था, जो हमारे प्रगति-पथ में रुकावटें पैदा कर रहीं थीं। इस योजना ने चाहे सफलतायें कम दी हों, पर अनुभव बहुत दिये। ऐसे अनुभव, जो प्रगति की द्वितीय मंजिल तक पहुँचने में सहायता कर सकेंगे।

यही कारण है, कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना का दृष्टिकोण बहुत कुछ बदला हुआ है और इसीलिये योजना काल (१९५६-१९६१) में हमारे आगे बढ़ने का बुनियादी निर्णायक तत्त्व सामाजिक हित है, न कि भौतिक लाभ। राष्ट्रीय आय और आर्थिक विकास के लाभ समाज के उन वर्गों को अधिक से अधिक प्राप्त हों, जो अपेक्षाकृत अधिकारहीन हैं।

इस व्यापक दृष्टिकोण के अनुसार योजना के उद्देश्य इस प्रकार बनाये गये हैं—

(१) राष्ट्रीय आय में इतनी वृद्धि करना जिससे देश के रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो;

(२) मूल और भारी उद्योगों के विकास पर जोर देते हुए देश का तेजी से औद्योगीकरण;

(३) रोजगार के अवसरों का अधिक विस्तार; और

(४) आय और सम्पत्ति की विषमताओं का निराकरण तथा आर्थिक अधिकारों का पहले से अधिक सन्तुलित वितरण।

ये सब उद्देश्य परस्पर सम्बद्ध हैं और इस प्रकार की रहन-सहन को ऊँचा उठाना अधिक उत्पादन पर निर्भर है। अधिक उत्पादन के लिये तेजी से औद्योगीकरण करना जरूरी है और औद्योगीकरण तेजी से हो, इसके लिए मूल उद्योग में पूँजी लगाने से उपभोग्य वस्तुओं की माँग बढ़ती है। बड़ी हद तक बेरोजगारी की समस्या का हल इस प्रकार हो सकता है कि उपभोग्य वस्तुओं का उत्पादन सुसंगठित ढंग से किया जाए और ऐसे कार्य किए जायँ जिनमें श्रम की बढ़ोतरी हो। बेरोजगारी की समस्या इस प्रकार हल करनी है कि आय के बढ़ते हुए स्तरों पर अधिक रोजगार दियो जा सके।

योजना के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार को समाज के आर्थिक जीवन में अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण भाग लेना है और अप्रैल १९५६ में पास किए गए भारत सरकार के औद्योगिक नीति विषयक एक प्रस्ताव द्वारा यह सम्भव हो गया है। इस प्रस्ताव में सार्वजनिक क्षेत्रों का विकास करने और बढ़ाने में सरकार के दायित्त्व तथा भाग लेने पर ज़ोर दिया गया है, ताकि इसमें मूल तथा व्यापारिक महत्त्व के समस्त उद्योग और लोकोपयोगी सेवाएँ आ जाएँ।

नए प्रस्ताव में उद्योगों की दो अनुसूचियाँ दी गई हैं—पहली अनुसूची में १७ उद्योग सम्मिलित हैं, जिनका भविष्य में विकास करने के लिए एक मात्र सरकार उत्तरदायी होगी। दूसरी अनुसूची में सामाजिक महत्त्व के १२ उद्योग गिनाए गए हैं, जिन्हें सरकार धीरे-धीरे अपने अधिकार में ले लेगी। जहाँ दूसरी अनसूची के उद्योगों का सम्बन्ध है, वहाँ तक नए उद्योगों की स्थापना में साधारणतः सरकार ही पहले करेगी। किन्तु आशा की जाती है कि सरकार के इस प्रयत्न को पूरा करने में निजी क्षेत्र भी अपना योगदान देगा।

नई औद्योगिक नीति विषयक प्रस्ताव में छोटे मात्रा तथा कुटीर-उद्योगों के महत्व पर फिर से जोर दिया गया है।

दूसरी योजना एक प्रगतिशील सामाजिक तथा आर्थिक दर्शन पर आधारित है। इसलिए इस योजना का उद्देश्य आर्थिक तथा सामाजिक विषमताओं को घटाते हुए देश का विकास करना है।

आवश्यक वित्तीय साधनों को एकत्र करने मात्र से ही आर्थिक नीति का कार्य पूरा नहीं हो जाता, किन्तु उसका उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि वह योजना की आवश्यकताओं के अनुसार समस्त सम्भव उपायों द्वारा उपभोग के एक ढाँचे को प्रोत्साहित करें और वास्तविक साधनों का उपयोग करें।

द्वितीय पंचवर्षीय-योजना पहली योजना में आरम्भ किए गए विकास प्रयत्न का ही एक अटूट रूप है। किन्तु अनिवार्यतः प्राथमिकताओं में हेर-फेर हुआ है।

पहली योजना के लिए कुल २,०६९ करोड़ रु० को (जो बाद में २,३५६ करोड़ रु० कर दी गई) व्यवस्था की गई थी। इसकी तुलना में द्वितीय योजना काल में केन्द्र और राज्य सरकारों की विकास योजनाओं पर कुल खर्च ४,८०० करोड़ रु० होगा। विकास की मुख्य मदों पर इस राशि के वितरण को व्यवस्था तथा पहली और दूसरी योजना के व्यय की तुलना इस प्रकार की गई है :—

	पहली पंचवर्षीय योजना		दूसरी पंचवर्षीय योजना	
	कुल व्यय करोड़ रु०	प्रतिशत	कुल व्यय करोड़ रु०	प्रतिशत
१	२	३	४	५
१. कृषि और सामुदायिक विकास	३५७	१५·१	५६८	११·८
[क] कृषि	२४१	१०·२	३४१	७·१
कृषि कार्यक्रम	१९७	८·३	१७०	३·५
पशु पालन	२२	१·०	५६	१·१
बन-विकास	१०	०·४	४७	१·०

१	२	३	४	५
मछली उद्योग	४	०.२	१२	०.३
सहकारिता	७	०.३	४७	१.०
विविध	१	—	६	०.२
(ख) राष्ट्रीय विस्तार और सामुदायिक विकास योजनाएँ	९०	३.८	२००	४.१
(ग) अन्य कार्यक्रम	२६	१.१	२७	०.६
गांव पंचायतें	११	०.५	१२	०.३
स्थानीय विकास कार्य	१५	०.६	१५	०.३
२. सिंचाई और बिजली	६६१	२८.१	९१३	१६.०
सिंचाई	३८४	१६.३	३८१	७.९
बिजली	२६०	११.१	४२७	८.९
बाढ़-नियन्त्रण तथा अन्य योजनाएँ, शोध आदि	१७	०.७	१०५	२.२
३. उद्योग और खनिज	१७९	७.६	८९०	१८.५
बड़े और मध्यम उद्योग	१४८	६.३	६१७	१२.९
खनिज विकास	१	—	७३	१.५
ग्राम और छोटे उद्योग	३०	१.३	२००	४.१
४. परिवहन और संचार	५५७	२३.६	१,३८५	२८.९
रेलें	२६८	११.४	९००	१८.८
सड़कें	१३०	५.५	२४६	५.१
सड़क परिवहम	१२	०.५	१७	०.४
बन्दरगाह और गोदियां	३४	१.४	४५	०.९
जहाज़रानी	२६	१.१	४८	१.०
आन्तरिक जलमार्ग परिवाहन	—	—	३	०.१
नागरिक विमान परिवहन	२४	१.०	४३	०.९

१	२	३	४	५
अन्य परिवहन साधन	३	०.१	७	०.१
डाक और तार	५०	२.२	६३	१.३
अन्य संचार साधन	५	०.२	४	०.१
प्रसारण	५	०.२	६	०.२
५. **समाज सेवाएँ**	५३३	२२.६	६४५	१६.७०
शिक्षा	१६४	७.०	३०७	६.४
स्वास्थ्य	१४०	५.६	२७४	५.७
आवास	४६	२.१	१२०	२.५
पिछड़े वर्गों का कल्याण	३२	१.३	६१	१.६
समाज कल्याण	५	०.२	२६	०.६
श्रम और श्रम कल्याण	७	०.३	२६	०.६
पुनस्संस्थापन	१३६	५.८	६०	१.६
शिक्षित बेकारों के लिए विशेष योजनाएँ	—	—	५	१.१
६. **विविध**	६६	३.०	६६	२.१
योग	२,३५६	१००.०	४,८००	१००.०

इससे यह स्पष्ट होता है,कि दूसरी योजना में उद्योगों, खाद्य-पदार्थों, परिवहन तथा संचार साधनों के विकास पर पर्याप्त जोर दिया गया है। दूसरी योजना के कुल खर्च का लगभग आधा भाग इनके विकास पर व्यय किया जायगा।

औद्योगिक साधनों से राष्ट्रीय उत्पादन (करोड़ रुपयों में)

(१९५२-५३ के मूल्यों के आधार पर)

	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	प्रतिशत वृद्धि १९५१-५६	प्रतिशत वृद्धि १९५६-६१
१. कृषि और तत्सम्बन्धी कार्य	४,४५०	५,२३०	६,१७०	१८	१८
२. खनिज पदार्थ	८०	९५	१५०	१९	५८
३. कारखाने	५९०	८४०	१,३८०	४३	६४
४. व्यापार, परिवहन और संचार	१,६५०	१,८७५	२३००	१४	२३
५. छोटे व्यवसाय	७४०	८४०	१,१८५	१४	३०
६. निर्माण या तामीर	१८०	२२०	२९५	२२	३४
७. पेशे और नौकरियां (सरकारी नौकरियां शामिल करके)	१,४२०	१७,००	२,१००	२०	२३
८. समस्त राष्ट्रीय उत्पादन	९,११०	१०,८००	१३,४८०	१८	२५
९. प्रति व्यक्ति आय (रु०)	२५३	२८१	३३१	११	१८

ऊपर दी गई तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है, कि अगले पाँच वर्षों में राष्ट्रीय आय में लगभग २५ प्रतिशत वृद्धि होने की आशा है। किन्तु उपभोग के औसत स्तर में लगभग २१ प्रतिशत की ही वृद्धि होगी, क्योंकि घरेलू उत्पादन के बहुत बड़े भाग को बचाने तथा उसके विनियोग करने की आवश्यकता होगी।

दूसरी योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के व्यय को पूरा करने के लिए निम्न प्रकार से व्यवस्था की गई है।

घरेलू साधन	करोड़ रुपये	करोड़ रुपये
(१) चालू राजस्वों में से बचत ...	...	८००
(क) कर की वर्त्तमान दरों के आधार पर ...	३५०	...
(ख) अतिरिक्त करों से ...	४५०	...
(२) जनता से ऋण के रूप में ...	...	१२००
(क) बाजार से ऋण ...	७००	...
(ख) छोटी बचतें ...	५००	...
(३) बजट के अन्य साधनों से ...	...	४००
(क) विकास कार्य-क्रम में रेलों का भाग ...	१५०	...
(ख) भविष्यनिधि तथा अन्य जमा खाते ...	२५०	...
(४) विदेशों से ...	...	८००
(५) घाटे का बजट बनाकर ...	...	१२००
(६) कमी—जो स्वदेश में ही नये साधनों द्वारा पूरी करनी होगी ...		४००
	कुल योग ...	४,८००

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि योजना पर जो व्यय किया जाना है, उसका लगभग आधा भाग घरेलू साधनों अर्थात् कर, ऋण तथा अन्य बजट सम्बन्धी साधनों से पूरा किया जाएगा। शेष का ५० प्रतिशत भाग घाटे का बजट बनाकर और ३३ प्रतिशत विदेशी सहायता से प्राप्त किया जाएगा।

पाँच वर्षों की अवधि में सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय किए जाने वाले कुल ४८०० करोड़ रू० में से लगभग १,००० करोड़ रुपया चालू व्यय का है, जो शिक्षा, स्वास्थ्य, वैज्ञानिक, शोध, राष्ट्रीय विस्तार आदि मदों पर खर्च किया जाएगा।

सार्वजनिक तथा निजी, दोनों क्षेत्रों को मिलाकर, यदि विचार किया जाए, तो द्वितीय योजना काल में अर्थ व्यवस्था में लगभग ६,२०० करोड़ रु० का विनियोग किया जाएगा। इस राशि में से १,१०० करोड़ रु० दूसरी योजना में भुगतान संतुलन के घाटों को पूरा करने के लिए आवश्यक होंगे। इस प्रकार

५,१०० करोड़ रु० का सवाल रहता है जिसे घरेलू बचतों से पूरा करना होगा। यह कमी निजी बचतों से ही पूरी करनी होगी। इस समय समाज की बचत की दर लगभग ७ प्रतिशत है। इस दर को द्वितीय योजना काल की समाप्ति तक लगभग १० प्रतिशत तक बढ़ाना होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि द्वितीय योजना काल में राष्ट्रीय आय २५ प्रतिशत बढ़ जाती है तो अतिरिक्त आय के लगभग २० से २५ प्रतिशत का विनियोग करने की आवश्यकता होगी। इस लक्ष्य को प्राप्त करना आसान नहीं है क्योंकि अधिकाँश अतिरिक्त आय का काफी बड़ा भाग कम आय वाले स्तरों पर होगा। इसीलिए योजना आयोग ने यह सुझाव दिया है कि द्वितीय योजना काल में लोगों को समझा-बुझाकर, कर की विभिन्न दरों द्वारा तथा उचित नियन्त्रणों द्वारा अनावश्यक वस्तुओं के उपभोग को रोकने के लिये अधिक से अधिक प्रयत्न किए जाने चाहिए।

विदेशी विनिमय साधन

चूँकि दूसरी योजना की विनियोग लागत बहुत अधिक है और इसमें मूल उद्योगों के विकास पर बल दिया गया है, इसलिए विदेशी विनिमय साधनों पर इस योजना का बहुत अधिक भार पड़ेगा। सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों के विकास कार्य-क्रमों के लिए आवश्यक मशीनें, गाड़ियाँ, लोहा, स्पात, तथा अन्य धातुओं के आयात पर, २,१५० करोड़ रु० व्यय होने का अनुमान है। ऐसा अनुमान है कि ५ वर्ष की अवधि में भुगतान सन्तुलन में कुल घाटा लगभग १,१०० रु० होगा। इसमें से कुल घाटा पौंड पावने में से २०० करोड़ रु० निकाल कर पूरा करने का विचार है। निजी क्षेत्र से १०० करोड़ रु० और मिलने की सम्भावना है। इसका अर्थ यह है कि ८०० करोड़ रु० की विदेशी सहायता कि आवश्यकता होगी। पिछली योजना के लिए प्राप्त विदेशी सहायता में से ६४ करोड़ रु० बचे हुए हैं जिनका उपयोग नहीं किया गया और भिलाई तथा दुर्गापुर में स्थापित किये जाने वाले इस्पात के कार-खानों के लिए ७६ करोड़ रु० ऋण के रूप में प्राप्त किए गए हैं। परिणामतः केवल ६३० करोड़ रु० ऐसे रह जाते हैं जिनके लिए व्यवस्था करनी होगी।

इस रूप-रेखा से नितान्त स्पष्ट है कि इस योजना का प्रमुख उद्देश्य जन-समाज के रहन-सहन का स्तर ऊँचा करना, बेकारी की समस्या सुलझाना, आर्थिक तथा असंतुलन दूर करना है।

इस योजना की सफलता के बारे में नाना प्रकार के भ्रम और शंकाये हैं। शंकाबुओ का कहना है कि इसकी रूप-रेखा बड़ी विस्तृत है, जिसके लिये बड़ी धन-राशि की आवश्यकता है और विश्वास नहीं होता कि इतनी बड़ी धन-राशि कहाँ लगाई जायगी और कहाँ से आयेगी। अत्याधिक कर लगाने की नीति व्यक्तिगत बचत को निरोत्साहित कर रही है। डर है, कि कहीं अनुमानित व्यक्तिगत पूँजी भी राज्य को अपनी सार्वजनिक पूँजी में सम्मिलित न करना पड़े। यदि ऐसा हुआ तो योजना की सफलता की आशा नहीं के बराबर है। यह सत्य है कि विदेशी सहायता से मिलने वाला धन अधिकाँश रूप में प्राप्त हो सकेगा; पर यदि विदेशों की ओर आशा न लगाकर हम अपनी आन्तरिक शक्ति पर निर्भर रहें तो कहीं अच्छा है।

सबसे बड़ा भय अर्थ व्यवस्था के असंतुलन हो जाने का है। इस योजना में हम बड़ी मात्रा के उद्योग-धंधों पर अधिक जोर दे रहे हैं पर इन कारखानों द्वारा उत्पादित कल- पुर्जों के लिये आवश्यक वस्तुओं के उत्पादनार्थ मशीनी कारखानों पर हमारा ध्यान कम है। आर्थिक नीति को संतुलित करने के लिये ऐसी योजना बनाना आवश्यक है जिससे उत्पादन की खपत भी हम स्वयं कर सकें।

इस योजना द्वारा देश ने समाजवादी ढंग की सामाजिक व्यवस्था स्थापन करने का ध्येय अपनाया है और वह भी सँसदीय लोकतंत्र साधनों को दृष्टि में रखकर जैसा कि श्री गुलजारी लाल नन्दा के इस आख्यान से स्पष्ट है "भारत में योजना का उद्देश्य रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठाना मात्र ही नहीं है, इसका ध्येय देश में ऐसी लोकतंत्र व्यवस्था बनाना है जो हमारी आवश्यकताओं को पूरी करती हुई हमारे अपने व्यक्तित्त्व को प्रतिबिंबित कर सके। स्वतंत्र और सामाजिक न्याय के आधार पर हम ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते हैं जिसके अन्तर्गत व्यक्ति

एवं समुदाय को अधिकतम स्वतंत्रता प्राप्त हो।

यह सब कुछ उसी समय हो सकता है जब हम रकम उचित रीति पर व्यय करें। जनता का सहयोग एवं सरकार की सावधानी की अत्यन्त आवश्यकता है। योजना उसी समय सफल बन सकती है जब हमारा दृढ़ विश्वास हो कि :—

"मंजिल हजार सख्त हो हिम्मत न हारिये।"



व्याख्यात्मक

निबन्ध

"जो तोको काँटा बुवे, ताहि बोय तू फूल"

—कबीर

'कबीर' ने अहिंसावाद की पुष्टि में एक संदेश दिया—जो तुम्हारे लिये काँटे बोये, तुम उसके लिये फूल बोओ, अर्थात् जो तुम्हारे साथ बुराई करे, उसके साथ भलाई करो। ऐसा क्यों? उन्हे विश्वास था, कि जो जैसा करता है, उसका फल उसे वैसा ही मिलता है, इसी बात पर उन्होंने कहा है कि—

तोको फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरसूल।

यह आदर्श उस भारत के एक कवि का है, जहाँ 'अहिंसा परमोधर्मः' पर विश्वास था और सैद्धान्तिक रूप में शायद आज भी हो; आज हिंसा से बढ़कर दूसरा और कोई पाप नहीं समझा जाता; जहाँ "नेकी कर दरिया में डाल" वाली कहावत का प्रचलन है।

मध्ययुग ही की क्या बात, एशिया के प्रत्येक युग के कवियों और साहित्यकारों ने इस आदर्श का प्रचार किया है। यह नहीं कहा जा सकता कि स्वयं इस आदर्श को किस सीमा तक कार्य रूप में परिणत कर सके, या केवल प्रचार ही करते रहे, हमें इससे कोई विशेष प्रयोजन नहीं, पर एशिया की लगभग प्रत्येक भाषा में कवियों द्वारा ऐसे संदेश मिलते रहे हैं। फारसी भाषा का विश्व विख्यात कवि "सादी" तो इस आदर्श को कार्य रूप में परिणत करने वाला भी था और प्रचारक भी। "हाफ़िज़" यह आदर्श इन शब्दों में हमारे सामने रखता है—"किसी का दिल मत तोड़ो और जो चाहे करो, क्योंकि हमारे धर्म में इससे बढ़ कर और कोई दूसरा पाप नहीं।"

उत्तर वैदिक धर्म हो, या सूफी मत, जैन धर्म हो, या बौद्ध धर्म, सभी अहिंसा का प्रचार करते चले आये हैं; पर ईसाई मत ने जिस ज़ोर-शोर से यह आदर्श हमारे सामने रक्खा, शायद दूसरे किसी मत ने ऐसा नहीं किया। महात्मा ईसा का कथन था, "यदि कोई तुम्हारे सीधे गाल पर थप्पड़ मारे, तो बायाँ गाल उसकी ओर बढ़ा दो।" ऐसी शिक्षाएँ, "नेकी का बदला नेकी, और बुराई का बदला बुराई" के विश्वास पर तो चलता ही रहा; पर यहाँ एक दूसरी प्रकृति अपना काम कर रही थी, और वह भी बुराई और पाप को भलाई तथा पुण्य द्वारा मिटाने का सामान्य विश्वास। यदि कोई व्यक्ति किसी के साथ बुरा व्यवहार करता है, और वह उसके साथ उसके स्थान पर उसके साथ अच्छा व्यवहार करता रहे, तो अन्त में बुराई करने वाला स्वयं बुराई छोड़ देगा। न जाने कितनी कहानियाँ और कविताएँ इस आदर्श के प्रचार के लिये लिखी गयीं, पर कदाचित विक्टर ह्यूगो का विश्व विख्यात नाटक "बिशप्स कैन्डिल स्टिक्स" इस सिद्धान्त की अत्यन्त सफल साहित्यिक अभिव्यक्ति है, "एक अपराधी एक पादरी के घर में रात को घुस आया, पादरी ने उसे खाना दिया, सोने के लिये बिछौना और पलंग। पर अपराधी उसके घर से उसके बहुमूल्य शमादान चुराकर भाग गया, और पुलिस द्वारा पकड़ कर उसी पादरी के पास लाया गया। पादरी चाहता तो उसे दंड दिला सकता था; पर उसने यह कहकर अपराधी को छुड़ा लिया—"अरे! यह तो हमारे मित्र हैं और यह शमदान तो मैंने ही इन्हें भेंट किये थे......" अपराधी लज्जित होकर पादरी से क्षमा प्रार्थी तो हुआ ही, साथ ही साथ भविष्य में ऐसे बुरे काम न करने की प्रतिज्ञा किया। इस प्रकार "जो तोको......"का आदर्श उसे एक भला व्यक्ति बना देता है।

ए० जी० गार्डिनर ने अपने एक सुन्दर लेख, 'आन सेइंग प्लीज़' में भी इसी बात पर ज़ोर दिया है कि कोई तुम्हारे साथ व्यवहार करने में पशुता बर्तता है, तो तुम उसकी पशुता का उत्तर मनुष्यता द्वारा दो। उसे 'लिफ्ट मैन' से इसीलिये विरोध था, कि उसने 'पैसेंजर' के बुरे व्यवहार का उत्तर उसे लिफ्ट से ढकेल कर

दिया; यदि वह "पैसेंजर" की कठोरता का उत्तर अपने सज्जनोचित व्यवहार द्वारा देता, तो उसकी घोर विजय होती।

एक प्रसिद्ध अंग्रेजी विचारक लार्ड चेस्टर फील्ड का भी यही विचार है कि नम्र व्यवहार मानव की कठोरता दूर करने में बड़ा सहायक होता है।

यह तो हुई ऐसी बातें और कहावतें जो सदा प्रचलित रहेंगी, पर अपना तो विश्वास है, कि समय परिवर्तन के साथ-साथ मानव भी परिवर्तित हो चला है, न जाने "बिशप्स कैन्डिल स्टिक्स" के अपराधी की भाँति कितने अपराधी इस संसार में होंगे, आप जरा उन्हें खाना-पीना कराके और 'केन्डिल स्टिक' के समान वस्तुएँ चुरा ले जाने पर पुलिस से मुक्ति दिलाइये और देखिये उनमें से कितने अपराध न करने की प्रतिज्ञा करते हैं, और कितने आपके आभारी होते हैं ?

जो कुछ महात्मा कबीर ने कहा अपने स्थान पर बिलकुल सत्य है, किन्तु यह कथन प्रत्येक व्यक्ति के लिये लागू नहीं हो सकता। इसके पोषक बनने के लिए, हमें बड़े सोच-विचार और सावधानी से काम लेना होगा।

—*—

"जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग"

—रहीम

रहीम कवि ने एक दावा किया, एक सामान्यता स्थिर की और उसकी पुष्टि एक उदाहरण द्वारा कर दी। हमें इससे कोई प्रयोजन नहीं, कि उनके बाह्य निरीक्षण में ही कोई त्रुटि है, या स्वयं यह बात ही गलत है। उन्होंने एक उदाहरण देकर अपना दावा इस प्रकार सिद्ध कर दिया।

"चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग"

तात्पर्य यह निकला, कि जिस प्रकार चन्दन के वृक्ष से नाग लिपटे रहते हैं, पर उसमें उन का विष व्याप्त नहीं होता है, उसी प्रकार उत्तम प्रकृति वाले व्यक्तियों पर कुसंगत का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बात अपनी जगह पर ठीक हो सकती है। एक सयय था जब मध्ययुग के नीतिज्ञ और दार्शनिक इस बात को मानते थे, और इसी का प्रचार करते थे। ईरान का विश्व व्याख्यात नैतिक कवि शैख़ सादी इसी बात को उलटकर इस प्रकार कहता है "भेड़िये का बच्चा सदा भेड़िया ही रहेगा, चाहे वह मनुष्यों की संगति में ही क्यों न बढ़ा अथवा पला हो।" उसके कहने का मतलब यह है; कि बुरा व्यक्ति कभी भला नहीं हो सकता, चाहे वह भले और सज्जन व्यक्तियों की संगति में ही क्यों न रहे।

दोनों के कहने का तात्पर्य यह है, कि भला या बुरा व्यक्ति जन्म से ही भला या बुरा होता है, और भले या बुरे वातावरण का कोई प्रभाव उस पर नहीं पड़ता।

उत्तम प्रकृति वाले व्यक्तियों पर कुसंगति का और दुष्ट प्रकृति वाले व्यक्तियों पर सुसंगति का कोई प्रभाव नहीं होता। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं, कि वे लोग वंश परम्परा और जन्म गत संस्कारों की महत्ता के पोषक हैं। उनका कहना है, कि फूल की सुगंधि मिट्टी को सुगंधित कर देती है, पर मिट्टी की दुर्गंधि फूल को दुर्गंधित नहीं बना सकती। पकंज की सुन्दरता पर कीचड़ की छाया नहीं पड़ती; वह सुन्दर ही रहता है, और कहीं से भी कुरूप नहीं होने पाता। कुछ मनोवैज्ञानिक भी ऐसे ही आदर्शों का साथ देते दिखायी पड़ते हैं। फ्रान्सिसगाल्टन बड़े जोरों में कहता है कि जन्मगत संस्कार मनुष्य के व्यक्तित्व को शत प्रतिशत रूप से बनाते हैं।

प्राचीन साहित्य में न जाने कितनी कहानियों द्वारा यह बात पुष्ट की गयी है कि साँप का बच्चा साँप ही होगा, डाकू का डाकू और सज्जन का सज्जन।

रहीम और उनके समान कल्पना में उड़ने वाले न जाने कितने कवि और कहानीकार ऐसे विचार पकाते रहे, किन्तु आज का मनोवैज्ञानिक कुछ और ही अनुभव करता है; वह केवल कल्पना ही नहीं करता, वह जो कुछ कहना चाहता है, पहले उसे अनुभव की कसौटी पर परखता है। नीत्शे, एक प्रसिद्ध दार्शनिक, तो किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का सारा भार समाज, संगति और वातावरण ही के सिर रखता है। विन्थ्रॉप डी० लेन अपनी पुस्तक "क्राइम" (अपराध) में लिखता है कि उसने बहुत से अपराधियों की जीवनी सुनी, और उनका गहरा अध्ययन किया; जिसके बाद वह इस नतीजे पर पहुँचा, कि उन अपराधियों को अपराध के लिये बाध्य करने वाली वस्तु केवल उनकी संगति और वातावरण ही था, और जन्मगत संस्कार का उसमें कोई हाथ न था।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि वास्तव में व्यक्ति को बनाने में जन्मगत-संस्कार वंश परम्परा, सामाजिक परम्परा और वातावरण सभी का महत्त्वपूर्ण भाग है। बालक की शारीरिक और आकारगत विशेषतायें उसके जन्मगत संस्कार ही पर निर्धारित हैं। काला वर्ण और पुरुष आकृति कोई वातावरण नहीं बदल सकता। वंश परम्परा के द्वारा हमें बहुत सी ऐसी बीमारियाँ और शारीरिक आन्तरिक

विकृतियाँ मिलती हैं, जिन्हें प्राय; कोई भी वैद्य या डाक्टर ठीक नहीं कर सकता। बालक की भाषा, व्यवहार और कुछ आदतों का उत्तरदायित्त्व सामाजिक परम्परा पर होता है। इसी प्रकार मानव की व्यवहारगत, स्वभावगत और बुद्धिगत बहुत सी विशेषताओं का पूर्ण—उत्तर दायित्त्व वातावरण पर ही निर्भर है। उपर्युक्त किसी भी तत्त्व का महत्त्व व्यक्ति को बनाने में अद्वितीय होता है।

रहीम कवि की उक्ति एकांगी है। उन्होंने व्यक्तित्व बनने में उत्तरदायी बहुत से तत्त्वों में से केवल एक—जन्मगत संस्कार या वंश-परम्परा—को ही पूर्ण श्रय दे दिया है। अतः उनके साथ आज के सामान्य व्यक्ति का सहमत हो सकना अत्यन्त कठिन है।

"दुख में सुमिरन सब करैं, सुख में करै न कोय"

—(कबीर)

महात्मा कबीर का यह कथन इतना सरल है, कि जिस का अर्थ समझने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। यह कथन जितना प्रसिद्ध है उससे अधिक लोक प्रिय। मनुष्य विलासता का उपासक है, और जब तक वह सुखी रहता है, तब तक परमात्मा को ऐसा भूला रहता है कि उस का नाम तक नहीं लेता इसके विपरीत जब उसके सामने दुखों और कष्टों की भयानक मूर्त्ति आती है तो उसकी आँखें खुलती हैं और तब वह राम-नाम भजने लगता है।

कवि ने मानव प्रकृति का अध्यन किया और वह इस परिणाम पर पहुँचा कि मानव जाति में जहाँ और बहुत सी त्रुटियाँ हैं वहाँ एक त्रुटि यह भी है, कि वह विलासता का दास है और इस दासता में वह ऐसा व्यस्त हो जाता है कि भगवान को भी भूल जाता है। हमारा दैनिक निरीक्षण है कि जब तक बच्चे खेलते-कूदते रहते हैं तो अपनी माताओं को भूले रहते हैं, परन्तु तनिक भी ठेस लगी ! बस, माँ को पुकारने लगे। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सुझाव उसमें बड़ा होने पर भी शेष रहता है।

मानव-जाति कि इस त्रुटी का उल्लेख भी धार्मिक पुस्तकों में किया गया है कहीं इस प्रकार कहा गया है कि मनुष्य जब तक समपन्न और सुखी होता है तो वह अपने आप तक को भूल जाता है और जब दुख की भयकंरता में फँसता है तो रोता-गिड़ गिड़ाता है और कहीं इस प्रकार कहा गया है कि जब मनुष्य के पास लक्ष्मी

होती है तो उस में निरंकुशता पैदा होने लगती है और धन दौलत में फूल कर घमंड और ऐंठ पैदा हो जाती है।

सम्पन्नता और शासन से जहाँ बहुत से लाभ हैं, वहाँ सब से बड़ी हानि यह है कि मनुष्य सहानुभूति और मानवता की भावनाएें खो बैठता है अपने तुच्छ अस्तित्व को हो सर्वोपरि समझने लगता है वरन् अपने जन्म दाता ईश्वर के सुमिरन से मुख मोड़ लेता है।

यदि हम धार्मिक कथाओं और विश्व इतिहास के पन्ने उलटते हैं तो होता है कि सृष्टि के आरम्भ से आज तक किस-किस प्रकार मनुष्य भोग विलास में पड़ कर ईश्वर को भूल जाता है कष्ट और दुखों में उसी का सुमिरन करता है। कंस और हिरण्यकश्यप हो के उदाहरण लीजिये जो अपनी शान और शक्ति के सम्मुख ईश्वर का एश्वरीय शक्ति भुला बैठे, जो अपने बल और अभिमान के सामने दैवी बल के चमत्कार भूल बैठे और अपने आपको, सर्व शक्ति मान, महाबली वीर, साहसी और यहाँ तक कि अपने को ही भगवान कहलाने लगे। किन्तु जब कंस को श्रीकृष्ण से पाला पड़ता है तो सारी ऐंठ और अकड़ सारा सम्मान और गौरव मिट्टी में मिल जाता है और हिरण्यकश्यप का समस्त अभिमान प्रह्लाद की भक्ति चूर-चूर कर देती है। प्रह्लाद की अटल भक्ति उसे स्थान-स्थान पर शिक्षा देती है कि देख मानव बल से अधिक शक्तिशाली दैवी बल है। भोग विलास में फसँ कर, दौलत के नशे में चूर हो कर उसे नहीं भूलना चाहिए। उर्दू के विख्यात कवि हाली ने महात्मा कबीर के इस कथन का समथर्न इस प्रकार किया है:

जब मायूसी दिलों पर छा जाती है,
दुशमन से भी नाम तेरा जपवाती है।

हमें अपने दैनिक जीवन में भी इस प्रकार का अनुभव होता है कि स्वस्थ्य व्यक्ति संयोग बस ही ईश्वर का नाम लेता है पर जब वह व्यक्ति चारपाई पकड़ लेता है पोड़ा से चिल्लाता है तो हे राम! हे राम!! ही की रट रहती है। मौलाना हाली ने इस कथन का भी सर्मथन इस प्रकार किया है:

सुख में आता नहीं ख्याल कभी,
दुख में अल्लाह याद आता है।

यह कथन शत प्रतिशत चाहे ठीक न हो पर मानव जाति की अधिक मात्रा पर यह कथन लागू होता ही है कि वे सुख में परमात्मा का सुमिरन नहीं करते और यह भूल जाते है कि—

"जो सुख में सुमिरन करे, दुख काहे को होय"

—:०:—

"पराधीन सपनेहु सुख नाहीं"

—तुलसीदास

कथन का अर्थ नितांत स्पष्ट है, कि किसी व्यक्ति को पराधीनता में कभी सुख नहीं मिल सकता। पराधीनता और स्वाधीनता का संघर्ष आदि काल से चला आ रहा है और यह नीति दर्शन की एक समस्या बन गई; एशियाई देशों की ही बात नहीं है, विश्व के सभी देशों में इसकी ओर ध्यान दिया गया है और पराधीनता की सभी ने निन्दा की है।

ऐसे कथन हमारा ध्यान उस आदि काल की ओर फेर देते हैं, जब शासकों, राजाओं, बादशाहों और सम्पन्न व्यक्तियों ने गरीबों को दासता की जंजीरों में जकड़ रखा था। तब विश्व में दास-प्रथा थी, जब मिश्र देश के फ़रायना-शासकों की एक पागलों सी बड़ और धुन पूरी करने के लिये पिरामिडों की स्थापना हुई। और उनकी इस आकांक्षा पूर्ति के लिये ऐसे पराधीन व्यक्ति, जिन्हें दास कहा जाता था, केवल जौ की आधी रोटी और एक आँड़ी प्याज पाकर रात दिन, पशुओं की भाँति काम किया करते थे। तनिक भी चूक जाने पर कोड़े खाते। इंग्लैन्ड, इटली, यूनान, ईरान, अरब, अफ्रीका, चीन आदि कहाँ और किस देश में यह प्रथा नहीं थी! अपना देश भी अछूतों के सम्बंध में किसी विदेश से पीछे नहीं रहा है।

कवियों द्वारा ऐसी दंतकथाएँ सुनीं, इतिहास के पन्ने उलटे, पूर्वजों के आख्यान सुने ऐसी कहावतों का प्रयोग देखा और सुना। इन सब से बढ़कर स्वयं उनके निरीक्षण ने उनकी कल्पना में जागृत उत्पन्न की ओर उन्हें ऐसा कुछ कहना पड़ा। वे इब्राहीम लिंकन की भाँति इस प्रथा के सम्बंध में कोई प्रयोगात्मक पग न बढ़ा सके हों, पर ऐसी प्रथा के प्रति घृणा भाव पैदा करने में उनका बड़ा हाथ रहा है। सम्भव है कि उनके ये बोल ही इब्राहीम लिंकन जैसे, साहसी पुरुष को जन्म दे सके हों।

इस प्राधीनता का एक अँग और है, जो इस कथन में आता है। वह है चाकरी की धारणा। यद्यपि चाकरी को दासता तो नहीं कहा जा सकता; इसलिये कि इसका रूप दासता से बहुत भिन्न है, तो भी पराधीनता को दृष्टि में रखते हुये, दोनों की सीमायें एक दूसरे में समावेश करती ही दिखायी देती हैं। हमारे यहाँ तो एक आदेश कहावत के रूप में न जाने कब से चला आ रहा है :

उत्तम खेती, मध्यम बान,
निषिद्ध चाकरी, भीख निदान।

और इसके अनुसार याचकता और चाकरी में कितना अंतर रह जाता है, इसका अनुमान आप स्वयं कीजिये। चाकरी की पराधीनता भी कम सुखहरण नहीं है। इसके सम्बंध में एक लोक कहावत का भी प्रचलन है,

चाकर है तो नाचाकर, ना नाचे तो ना चाकर।

ईरान में इसी चाकरी की पराधीनता के सम्बंध में कहा जाता है बन्दिगी (चाकरी) बेचारगी। इसी देश के विश्व विख्याति नैतिक कवि शेख सादी का कहना है,

"किसी सुलतान की चाकरी का सुनहरा पट्का कमर में बाँधने से तो यह अच्छा है, कि ईंट गारा ढोने में चूने से हाथ जल जाँय।"

पराधीनता के अनेक अँग हैं। कुछ तो ऐसे हैं, जिन्हें हम पराधीनता समझते ही नहीं। संस्कृति की पराधीनता भी कम दुखद नहीं होती। विचारों की भी पराधीनता होती है और यही कारण है कि मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है।

चाहे जिस प्रकार की पराधीनता हो, मनुष्य सुखी नहीं रह सकता और उसकी आत्मनिर्भरता को गहरी चोट लगती है। उसका आत्मसम्मान शेष नहीं रह जाता। अपने देश में तो इस पराधीनता के प्रति घृणा पैदा करने के लिये इतने आख्यान और कहावतें हैं, कि शायद ही दूसरे देश अथवा भाषा में मिल सकें। अपने घरेलू जीवन ही में देखिये। घर की प्रौढ़ अबलायें बात-बात पर कहती हैं, "तब-तक करो बूता-बूता, जब तक अपना बूता" उर्दू के किसी कवि का कहना है, जो एकमात्र सत्य है।

मिले खुश्क रोटी जो आजाद रह कर,
गुलामी के वह नानो हल्वे से बेहतर

और इसीलिये कवि ने गम्भीरता पूर्वक सोच विचार के पश्चात्, हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित कराया है और स्पष्ट कह दिया है कि—

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं

—०—

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

—कबीर

ऐसे तो कथन का अर्थ बहुत कुछ बड़ा सरल सा जान पड़ता है और इसका प्रथम रूप हमारे सामने इस भाँति आता है, जो हम अपने दैनिक जीवन ही में देखते हैं, जब कोई वृद्ध व्यक्ति खिन्न हो जाता है, तो बड़े उत्साह से बोल पड़ता है "पौरुष हार गये, पर अभी मन नहीं हारा," और बात यहाँ तक बढ़ा देता है जो युवावस्था के व्यक्तियों के लिये एक चुनौती, चैलेंज और अलटीमेटम हो जाता है।

दूसरा उदाहरण जरा मनोरंजक है, पर कथन का अर्थ स्पष्ट करने में कम सहायक नहीं। सुनिये ! जब किसी बूढ़ी स्त्री को लाल पीले, भड़कीले, चमकीले कपड़े अथवा आभूषण पहने युवा महिलायें देखती हैं, तो कह देती हैं—

"शरीर मरने पर है, पर मन नहीं मरा।" ऐसे अनेकों अवसर आते हैं, जहाँ ऐसा कुछ कहा जाता है और सब का अर्थ यही निकलता है, कि व्यक्ति की समस्त मनोवृतियों का मरना और जीना; हारना और जीतना उसके मन की हार और जीत पर आधारित है।

कथन का एक दूसरा रूप देखिये। इसके लिये आपको इतिहास के पन्नों का सहारा लेना होगा। अहमदनगर की सुलताना चाँद बीबी मुगल सम्राट अकबर के मुकाबिले में विजय न पा सकीं, पर जीवन के अंतिम क्षण तक युद्ध करती रहीं, केवल इसलिये कि उनका मन नहीं हारा था। इसलिये आज हम उनके हार जाने पर भी उनको वही सम्मान देते हैं जो किसी विजयी को।

इसके अतिरिक्त शाहजादा मुराद, जो सुलताना चाँद बीबी से युद्ध करने गया था और रसद कम होते देखकर सेना को लौट जाने की आज्ञा दे दी थी, यद्यपि सेना विजय पा रही थी, तो भी भाग खड़ा हुआ, उसको हम पराजय कहते हैं और कायर कहकर पुकारते हैं। सुलताना को अजय और वीर रमणी कहते हैं। क्यों? केवल इसीलिये कि सुलताना का मन नहीं हारा था और शाहजादा मुराद का मन हार मान चुका था।

बलिदान की धरती राजस्थान में मेवाड़ के महाराणा प्रताप, जो मुगल सम्राट अकबर की सेना पर विजय न पा सके और अपनी जन्म-भूमि को पराधीनता से मुक्त न कर सके, तो भी हम उन्हें विजयी ही समझते हैं, केवल इसलिये कि वे जीवन के अंतिम क्षणों तक मुकाबिला करते रहे। सेना और साथी न होने पर केवल अकेले। कारण यही कि उनका मन विजयी था उसने हार न मानी थी। आज भी हम उन्हें वह सम्मान और श्रद्धा अर्पित करने के लिये तैयार रहते हैं, जो किसी बहुत बड़े विजयी व्यक्ति को।

अनुमान ऐसा होता है, कि कवि की दृष्टि में कथन के ये रूप नहीं थे, वरन् वह कुछ और कहना चाहता है, और उसका एक प्रमुख रूप हमारे सामने रखना चाहता है। जब हम इसकी दूसरी पंक्ति इसके साथ जोड़ दें, तो इसका स्वरूप कुछ स्पष्ट होने लगता है—

परमातम को भी पाइये मन ही के परतीत

जीवन की सफलता में किसी व्यक्ति के 'मन' का बहुत बड़ा हाथ है और इसकी बड़ी प्रतिष्ठा भी है। मनोविज्ञान में 'अहम' और उससे बढ़कर 'सोहम' का जो स्थान है, उस पर प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं। शास्त्रों में मन की एक झाँकी देखिये—

मनः पूतं समाचरेत्

मन का पवित्र होना इसीलिये आवश्यक ठहराया गया, कि जीवन की सफलताएँ बहुत कुछ इसी पर आधारित मानी गयी हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व बनाने और

बिगाड़ने में सोहम की चेतना और शिथिलता का बहुत बड़ा हाथ है । यह आदर्श प्रायः बहुत सी भाषाओं में काव्य रूप में मिलता है । ईरान का विश्व विख्यात कवि शेख सादी भी 'मन' ही को सब कुछ मानता है—"तवंगरी बदिलस्तन बमाल" । वह कहता है जिसकामन धनी है वही धनवान है । माल दौलत के ढेर मनुष्य को धनी नहीं बनाते । अरबी भाषा में प्रसिद्ध है कि "दंड देने से पहले उसके मन की अभिरुचि देखो ।"

यहाँ तक तो 'मन की महत्ता का बखान है; परयदि हम इसपंक्ति पर ध्यान दें, तो ऐसा ज्ञात होता है, कि कवि इस बात पर जोर देना चाहता है, कि किसी व्यक्ति को थोड़ी सी असफलता से हारकर न बैठ जाना चाहिये । लगातार एक लगन के साथ काम करते रहना चाहिये । दिखावे के काम का ढोंग न रचाना चाहिये । जभी तो उसने एक स्थान पर कहा है—

कर का मनका छाँड़ि के, मन का मनका फेर

और एक दूसरे दोहे में लगन से काम करने के लिये इस प्रकार उभारता है—

जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ
मैं बौरी ढूँढन गयी रही किनारे बैठ ।

'गहरे पानी पैठ कर ढूँढना मन की जीत है और किनारे बैठ रहना 'मन' की हार है ।

यह दशा केवल संसारिक कार्यों तकसीमित नहीं है, वरन् परमात्मा तक पहुँचने और उसे पहचाने में भी मन का हाथ है । यदि मन लगाकर और सच्चे दिल से उसे पाने का प्रयास किया जाय, तो वह अवश्य मिलेगा । 'रहीम' ने तो नितांत स्पष्ट कह दिया है—

'रहिमन' मनहि लगाई के देखि लेउ कित कोई,
नर को बस करना कहाँ, नारायन बस होई ।

उर्दू के एक सूफी कवि दर्द ने यही विचार ज़रा हेर-फेर से इस प्रकार प्रकट किया है—

पहुँचा जो आपको तो पहुँचा खुदा के तईं
मालूम अब हुआ कि बहुत मैं भी दूर था।

और एक दूसरे कवि ने तो इस 'मन' और 'परमात्मा' की गुत्थी इस प्रकार बड़ी सरलता से सुलझा दी है—

दिल के आईने में है तसवीरे यार
जब जरा गरदन झुकायी, देख ली।

कथन का तात्पर्य बिलकुल सही है कि किसी व्यक्ति की सफलता,-असफलता, आशा,-निराशा, संतोष,-असन्तोष सुख,-दुःख आदि बहुत कुछ उसके मन की भावनाओं पर ही निर्भर हैं।



हानि-लाभ, जीवन,-मरन, जश-अपजश, विधि हाथ

—तुलसीदास

ऐसे कथनों की पृष्ठ-भूमि मानव के स्वयं अनुभवों से अधिक उसके धार्मिक विश्वासों और विचारों द्वारा बनी है। सामयिक युग की कुछ विचार धाराओं और कुछ मतों को छोड़कर प्राचीन काल से आज तक जितने धर्म, मत, और धार्मिक मार्ग चले आ रहे हैं, सभी ने किसी न किसी रूप में मानव को भाग्यवादी बनाने का प्रयत्न किया है; और उसे भाग्य के सामने विवश होने का प्रयास किया है। चीन का थाऊ धर्म हो अथवा केफ्यूशस की शिक्षाएँ या अपने देश का बौद्ध धर्म, जैन धर्म अथवा वैदिक धर्म। अरब का इस्लाम धर्म हो या ईरान का ज़रतुश्त (पारसी)धर्म। फलस्तीन का ईसाई धर्म हो, या यहूदी मत; विश्व के सभी धर्म इस पर विश्वास रखते हैं; कि मानव शक्ति से बढ़र एक सब से बड़ी शक्ति भी है, जिसके हाथ में मानव का सब कुछ है। अग्नि पुजारी पारसी धर्म ने पुण्य और पाप के लिए अलग-अलग एजद और अहरमन की दो शक्तियों में विश्वास रखना अनिवार्य समझा। हमारे देश में सुर और असुर इन दोनों से कुछ-कुछ समानता रखते हैं। कई धर्मों ने इसी विचार की पुष्टि पूर्व-जन्म-संस्कार में विश्वास द्वारा की। कुछ धर्मों ने भाग्य, तकदीर, मुकद्दर आदि से मानव के मस्तिष्क में यह विचार बिठाया कि वह इनसे नितान्त विवश है। उसकी करनी, उसका यश, उसकी कीर्ति सब कुछ विधाता के हाथ में है। जो कुछ कर्म में लिख गया है वह अमिट है। अंग्रेजी भाषा में तो इसी के प्रर्यायवाचक बहुत सी प्रसिद्ध कहावतें हैं।

धार्मिक विचार धाराओं के अतिरिक्त ऐसे कथनों के नेपथ्य में कुछ दार्शनिकों की विचार धाराएँ भी हैं। अफलातून की विचार-धारा इन सब में प्रमुख है। पूर्व जन्म-संस्कार में विश्वास रखने, अथवा वैराग्य और सूफी मत के उपासकों की विचार-धाराओं ने इस विश्वास को जन साधारण तक पहुँचाया—

"करम गति टारे नाहिं टरै" का नारा एक ओर सुनायी दिया—

मकसूम में लिखा जो है, पहुँचेगा आपसे,
फैलाइये न हाथ न दामन पसारिये!

के स्वर दूसरी ओर से सुन पड़े और—

'तदबीर कुनद बन्दा, तकदीर जनद खन्दा!' तीसरी ओर से। आप को थोड़ा सा गम्भीर अध्यन करने पर ज्ञात होगा कि दसों दिशाओं से ऐसे ही कुछ स्वर सुनायी दे रहे हैं और विश्व के लगभग समस्त साहित्यों में ऐसे उदाहरण पर्याप्त हैं।

मानव के स्वयं अनुभवों का, यद्यपि अधिक हाथ न सही फिर भी कुछ न कुछ तो उसका हाथ अवश्य है। मनुष्य ने देखा आज जो उसका शासक है कल दूसरे शासक ने उसका सिर उड़ा दिया। इस प्रकार भौतिक गौरव और मान्यता की क्षण-भंगुरता उसकी आँखों में फिर गई, मनुष्य अनेक यत्न करने पर भी कभी-कभी असफल रह जाता है, उसकी इस असफलता ने उसके मन में यह विचार बिठा दिया कि हानि और लाभ, सफलता और असफलता उसके हाथ नहीं है।

गरीबों की बात छोड़िये, वह तो मरते-जीते रहते ही हैं, बड़े-बड़े राजा शहन्शाह और सुलतान जिन्हें चिकित्सा की सारी सुविधायें पर्याप्त हैं कभी-कभी एक क्षण में मर जाते हैं। समस्त वैद्य और हकीम देखते के देखते रह जाते हैं। सिकन्दर महान को युवावस्था और उसका स्वास्थ्य देखकर कौन कह सकता था कि वह दो चार दिन के ज्वर से मर जायगा। जलती हुई चिता में भक्तप्रह्लाद फूंक दिया जायगा और उसके प्राण बच जायँगे। ऐसी अनेकों घटनायें देखकर मानव ने विश्वास किया है, कि उसका जीवन-मरण सब कुछ भगवान के हाथ है।

महात्मा बुद्ध की धर्मपत्नी यशोधरा, और लक्ष्मण की धर्मपत्नी उर्मिला ने कम तप नहीं किया। विरह व्यथा का जो सहन इन दोनों ने किया और इन्होंने जो बलिदान किया वह सीता जी से कुछ कम न था, पर जो यश सीता जी को प्राप्त हुआ वह इन दोनों को नहीं हम अपने दैनिक जीवन में देखते हैं कि बहुतेरे व्यक्ति, बिना योग्यता और बुद्धि वह यश प्राप्त कर लेते हैं जो, बहुतेरे योग्य और बुद्धिमानों को प्राप्त नहीं होता। ऐसी दशा में मानव के मन में यह भावना दृढ़ हो जाती है कि यश और अपयश की समस्या सुलझाना उसके हाथ में नहीं वरन् विधि के हाथ में है।

अपने अनुभवों से अधिक धर्म और दर्शन शास्त्रों द्वारा इस विश्वास ने मानव-जीवन में प्रौढ़ता प्राप्त की। रीति और संतवाद ने इसे और अधिक सहारा दिया। फलस्वरूप काव्य और साहित्य ऐसे आदर्शों से भरे पड़े हैं, जहाँ मानव नितांत विवश प्रतीत होने लगा है—

कबीर क्यों मैं चिन्त हूँ मम चिन्तैं क्या होय,
मेरी चिन्ता हरि करैं, चिन्ता मोहि न कोय।

समस्त भाषाओं का काव्य साहित्य इस विश्वास से भरा दिखायी देगा—

क्या फायदा फिक्रे कमो बेश से होगा।
हम क्या हैं जो कोई काम हम से होगा,
जो कुछ हुआ, हुआ करम से तेरे
जो कुछ भी होगा तेरे करम से होगा

—अनीस

ईरानी काव्य में इस भावना की एक झलक देखिये—

ई सआदत बजोर बाजू नीस्त
तान बख्शद खुदाय बख्शिन्दा।

इसी आधार पर एक सामाजिक कथन भी लीजिये—

छोड़ सब कामों को गाफिल भँग पी और डंड पेल।

और किसी ने यह स्वप्न देखा—

खुशबाश दमे कि जि :गानी इनम्त

—हाफिज

शायद यहीं से इपीकोरस के आदर्श का प्रचलन हुआ कि हाथ पैर डाल कर बैठे हो इसलिये कि—

" कर्ता धर्ता हर्ता राम "

पर उन्हें पूर्णरूप से विश्वास था।

इसमें संदेह नहीं कि ऐसे कथनों द्वारा आप बहुतेरे निराशा के शिकार व्यक्तियों को आत्म-हत्या से बचा सकते हैं। माता-पिता का इकलौता जवान बेटा बीमार होता है। वैद्य, हकीम और डाक्टर दवा करते-करते थक जाते हैं और मृत्यु उसे आ दबोचती है। माता-पिता का कलेजा फटने लगता है। संसार में उनके लिये अंधकार छा जाता है। ऐसी दशा में माता या पिता आत्म-हत्या की शरण लेना चाहते हैं और बिल्कुल तैयार हैं, फिर भी उन्हें कहीं से यह सुनाई दे जाय कि—

हानि लाभ, जीवन, मरण, जश, अपजश विधि हाथ

तो अवश्य ही उन्हें अपने विवश होने का तो अनुमान हो ही जायगा, साथ ही वह सोचेगें, कि वैद्यों और डाक्टरों की शक्ति से बढ़कर भी कोई एक महानशक्ति है, जिसके हाथ में जीवन और मरण है।

धन, सम्पति, मान, मर्यादा पर इतराने वाले अभिमानी पुरुषों के लिये भी ऐसे कथन कोड़ा बन सकते हैं।

पलायनवाद प्रवृति उत्पन्न करने और मानव को निकम्मा बना देने का जो तत्त्व ऐसे कथनों में है, उसकी कुछ झलक आप देख चुके हैं। ऐसी भावनायें राष्ट्र में जो मूढ़ता और शिथिलता पैदा कर देती हैं कि उनका उपचार कठिन हो जाता है। ऐसी ही दशा देखकर एक समय आया और कवियों को विचार धारा बदलनी पड़ी। तथा उन्हें यह कहना पड़ा कि—

हम कौन थे और क्या हो गये

उन्हें यह बताना पड़ा कि ऐसे कथनों का यह अर्थ नहीं कि हम हाथ-पैर समेट कर आलसी बन कर बैठ जायें। तुम अपना भाग्य स्वयं बना सकते हो। यश और अपयश

तुम्हारी कीर्तियों का फल है। भक्ति और वैराग्य से अधिक महत्ता राष्ट्र और जन सेवा की है। शिथिल होकर बैठ रहना पाप है। समय की बदलती हुई अनुभतियों के साथ अब तो कवि यहाँ तक कहने को तैयार हैं कि तुम जिधर को हवा हो, उधर पीठ न देकर हवा की धारा अपनी पीठ की ओर मोड़ दो तकदीर और तदबीर का आदिकाल से चला आता हुआ यह संघर्ष अब कवि इस भाँति सुलझा रहे हैं। अपने भाग्य की रेखायें तुम जैसी चाहो बना लो और उर्दू के एक कवि ने तो यहाँ तक कह दिया कि—

खुदा बन्दे से खुद पूछे, बता तेरी रजा क्या है !

इस प्रकार ऐसे कथनों ने जो पलायनवादी भावनायें पैदा करती थीं उन्हें मिटाने का प्रयास तो हो रहा है कांट, हीगल और नीत्शे के आदर्श माने जा रहे हैं, पर मनुष्य के जीवन में कभी-कभी ऐसे क्षण भी आ जाते है कि उसे मानना ही पड़ता है कि—

हानि लाभ जीवन मरण जस अपजस विधि हाथ

—:o:—

साहित्यिक तथा आलोचनात्मक निबन्ध

साहित्य संगीत कलानभिज्ञः साक्षात्पशुः पुच्छ-विषाण-हीनः

—भर्तृहरि

मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है।

—मैथिलीशरण गुप्त

इन निबन्धों के आधार सूत्र

हिन्दी साहित्य	···	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ।
हिन्दी साहित्य का इतिहास	···	पं० रामचन्द्र शुक्ल ।
हिन्दी साहित्य	···	डा० राम रतनभटनागर ।
हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद	···	विजय शंकर मल्ल एम० ए० ।
तरक्क़ी पसन्द अदब	···	अज़ीज़ अहमद ।
निबंध-कला	···	राजेन्द्र सिहँ गौड़ ।
राइज़ ऐंड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलइज्म	···	डा० रामरतन भटनागर ।
व्रजभाषा बनाम खड़ी बोली	···	डा० कपिलदेव सिहँ ।
भारतेंदु युग	···	डा० रामविलास शर्मा ।
साहित्य संदेश,		सरस्वती आदि की पुरानी प्रतियाँ ।

कहानी कला

अपने जीवन की पूर्ण-कला मेरे लिये किसी कविता से अधिक रोचक है।

—स्टीवेंसन

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते अपनी भावनायें दूसरों पर प्रकट करने और दूसरों के विचार सुनने ही में जीवन के आनन्द का अनुभव करता रहा है। यह उसकी शांति और संतोष का एक मात्र साधन भी बना रहा है। उसे ऐसी कला से हमेशा चाव और प्रेम रहा है, जो "आप बीती" हो या "जग बीती"। यही कारण है, कि मानव ने जिस दिन से भाषा द्वारा अपने भावों की अभिव्यक्ति आरम्भ की होगी, सम्भबत: उसी दिन से उसने कहानी कहना और सुनना प्रारम्भ कर दिया होगा। इससे नितांत स्पष्ट है, कि कहानी कहने और सुनने की परम्परा बहुत प्राचीन है, जिसका समय नियत करना, यदि असम्भव नहीं तो फिर भी अत्यंत कठिन है। रिचर्ड वर्टन ने बहुत ठीक कहा हैं।

> "कहानी संसार की सब से पुरानी वस्तु है; इसीलिए कोई आश्चर्य नहीं कि इसका प्रारम्भ उसी समय से हो गया हो, जब मनुष्य ने घुटनों के बल चलना सीखा था।"

मनुष्यता के विकास के साथ-साथ कहानी का स्वरूप भी परिवर्तित होता गया। आदि-काल में जब मनुष्य गुफाओं से रहता और जानवरों का शिकार करता था उस समय केवल जानवरों की कहानियाँ कहता रहा होगा। तत्पश्चात् समाज और सभ्यता का कुछ निर्माण हुआ, देवी, देवताओं की पूजा प्रारम्भ हुई। शरद ऋतु की रातों में बड़े बूढ़े आग के सामने बैठकर जंगली पशुओं और इसी सम्बन्ध में अन्य विषयक कहानियाँ बच्चों को सुनाया करते थे। मानव बुद्धि का विकास हुआ किंवदंतियों के आधार पर कहानियों का प्रचलन हुआ। अद्भुत यात्राओं, साहस कार्यों, जादू, मंत्रतन्त्र

सम्बन्धी कहानियों का प्रचलन हुआ। राजा और रानियाँ, अप्सरायें और उड़न खटोले, कहानियों के अंग बने। इसके पश्चात् कहानियो ने आधुनिक रूप ग्रहण किया।

कहानियों के रूप, समय और सभ्यता के विकास के अनुसार परिवर्तित होते रहे, पर कहानी-प्रेम जैसा था वैसा ही रहा, वरन् कुछ बढ़ता ही गया।

कहानी की परिभाषा दो-चार वाक्यों में देना कठिन है। इससे हम सब परचित हैं और कुछ न कुछ इसके सम्बन्ध में जानते ही हैं। इतनी बात समझने योग्य अवश्य है, कि साधारण और कलात्मक कहानी में क्या अंतर है, इसे किसी सीमा तक समझाया जा सकता है। अधिकांश कहानी-कारों का यह मत है कि आख्यायिका (कहानी) केवल घटना का नाम है, हम कितनी ही ऐसी कहानियाँ देखते हैं जिनमें केवल पात्र विश्लेषण और चरित्र-चित्रण ही होता है घटना का कहीं नाम भी नहीं होता; फिर भी वे कहानियाँ कही जाती हैं। मुंशी प्रेमचन्द ने शायद यही बात ध्यान में रख कर कहा है,

> "वर्त्तमान आख्यायिका का आधार ही मनोवैज्ञानिक है। घटनायें और पात्र तो मनोवैज्ञानिक सत्य स्थिर करने के लिये लाये जाते हैं। उनका स्थान नितांत गौण है।"

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कहानी एक घटना है, मनःस्थित अथवा वाह्य परिस्थिति है, जिसमें मनोवैज्ञानिक सत्य अथवा रहस्य का उद्घाटन सम्भव हो। विख्यात कहानी कार (पो) ने इसके साथ इतना और बढ़ा दिया कि "कहानी वह है, जो एक बैठक में पढ़ी जा सके।" बिषय और शैली की दृष्टि से कहानी का क्षेत्र इतना विस्तृत है, कि चार वाक्यों में उसकी परिभाषा नहीं दी जा सकती और न उसकी कोई परिधि बाँधी जा सकती है।

किसी घटना को कलात्मक रूप देने के लिए कुछ वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है और इसीलिए कलाकार ने कुछ पाबंदियाँ लगा दी हैं, जो कहानी के तत्त्व अथवा अंग कहे जाते हैं :—

कथानक—एक या अधिक भावनाओं तथा घटनाओं का क्रमिक अनुबंधन कथानक बनाता है। सच पूछिए तो कथानक ही एक प्रकार से कहानी है, जो कहानी कार की कल्पना के सहारे विकसित होती है। कहानी कार घटनाओं को कलात्मक बनाने के लिए कई राहों से ले जाता हुआ पाठक के सामने रखता है।

कहानीकार सर्व प्रथम कथानक का सृजन करता है, तथा पात्रों को घटनाओं की शृंखला में बाँधने का प्रयास करता है यह शृङ्खला साधारण या जटिल दोनों ही हो सकती है। साधारण कथानक में एक ही घटना या भावना का चित्रण होता है। जटिल कथानाक में एक अधिक घटनाओं और पात्रों की परिस्थितयों का चित्रण किया जाता है। कथानक की घटनायें एक दूसरे से संगठित होनी चाहिए।

प्रारम्भ—कहानीकार अपनी कहानी का प्रारम्भ कभी किसी पात्र के परिचय से साधारण रूप में कराता है; कभी वातावरण का भाव-चित्र खींचकर, और कभी दो पात्रों के कथोप-कथन द्वारा कराता है। कहानीकार इस सम्बन्ध में स्वतंत्र अवश्य है, पर इतनी बात भी जरूरी है, कि प्रारम्भ ऐसा रोचक हो कि पाठकों में उत्सुकता पैदा हो जाय।

घटना—किसी पात्र-परिचय के पश्चात् कहानीकार कोई घटना सामने रखता है और प्रमुख पात्र से इस प्रकार सम्बन्धित कराना चाहता है, कि उसके द्वारा घटना में एक खिचाव पैदा हो और वह आगे बढ़े। इसीके साथ-साथ आरोहकी झांकयाँ दिखाई देने लगती हैं, जहाँ पात्र की मानसिक व्यवस्था, उसकी स्थिति अथवा उसकी भावना का विकास दिखाया जाता है।

संघर्ष—इसी सम्बन्ध में दो पात्रों के बीच अथवा किसी पात्र और समाज या केवल एकही पात्र की भावनाओं में संघर्ष सा होने लगता है। चतुर कहानीकार इसी स्थान पर अपनी कहानी में ऐसी रोचकता उत्पन्न करने का प्रयास करता है, कि पाठक को जिज्ञासा पढ़ने की ओर तीव्र हो जाती है।

चरमस्थिति—संघर्ष द्वारा उत्पन्न की हुई जिज्ञासा की तीव्रता अथवा कहानी की रोचकता में एक क्षण के लिए रुकावट सी पैदा हो जाती है और पाठक के हृदय में कम्पन सा अनुभव होने लगता है। वह सोचने लगता है कि क्या हो रहा है या

क्या होगा, अभी वह इसी संकोच में होगा कि कहानीकार घटना को पराकाष्ठा (चरम सीमा) पर पहुँचा देगा। तुरन्त ही कहानीकार पाठक के हृदय को कम्पन्न अथवा संकोंच को इस प्रकार मिटाने का प्रयास करेगा कि कुछ परिणाम स्पष्ट होने लगेगा और वहीं से अवरोह की सीमा आरम्भ होने लगती है। जहाँ पाठक की उत्सुकता का समाधान होता है। तत्काल कहानीकार कथानक का भेद खोलता चला जाता है और उसका अंत दिखाता है। इन राहों की अंतिम अवस्था उपसंहार है। कहानीकार कभी-कभी तो सब कुछ स्वयं बता देता है और कभी-कभी पाठक पर भी छोड़ देता है। संक्षिप्त में यों समझिये, कि कथानक निम्नांकित राहों से गुज़रता है।

चरित्र-चत्रण—कहानी का द्वितीय महत्त्वपूर्ण अंग है। इसका यह अर्थ है, कि कहानी के पात्रों में कुछ ऐसे विशेष गुण पैदा कर दिये जायें, कि उनका विशेष अस्तित्व अन्य व्यक्ति पहचान सकें और उन्हें यह मालूम हो जाय, कि कौन क्या है। चरित्र-चित्रण की महत्ता जेम्स लिन के इस वर्णन से स्पष्ट हो जाती है—वह कहानी की परिभाषा इस भाँति करते हैं—

> "किसी पात्र के जीवन में सबसे महत्त्व पूर्ण अवसर को नाटकीय रूप से संक्षिप्त में प्रस्तुत करने का नाम कहानी है।"

चरित्र-चित्रण का उद्देश्य यह है कि कहानी के पात्रों की प्रकृति और उन के स्वभाव में ऐसे विशेष गुण पैदा कर दिए जाँय कि जिससे वे जीते-जागते व्यक्ति मालूम हों, और उनके चरित्र वास्तविक दिखाई देने लगें।

कहानीकार ऐसा करने के लिए कई विधियों से काम लेता है (अ) वर्णनात्मक विधि बहुत सामान्य और प्रिय समझी जाती है। कहानीकार अपने कहानी पात्रों का परिचय बड़े सरल ढंग से करा देता है,

> "जगत सिंह को किताबों से नफरत थी। वह सैलानी, आवारागर्द घुमक्कड़ नौजवान था। कभी अमरूदों के बागों में निकल जाता और बागवान के हाथ गालियाँ खाता, कभी नदी की सैर करता और कश्ती में बैठकर उस पार निकल जाता। उसे गालियों में मज़ा आता था। बैंड

बाजे का बहुत शौक था । उसके लिये कोई दिन नागा न करता । जगतसिंह को जब मौका मिलता घर से रूपया उड़ा ले जाता नक़द न मिले तो बर्त्तन निकाल ले जाने में भी उसे कोई संकोच न था...... ।"

[प्रेम चन्द]

ऐसा करने में कभी वह कहानी के पात्रों के नाम ही ऐसे रखता है जिन से उनके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है । उर्दू के प्रसिद्ध उपन्यासकार डा० नज़ीर अहमद तो ऐसा करने में बड़े निपुण समझे जाते हैं । मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों के नाम भी इसी के प्रतीक है ! रिपुदमन सिंह, हरिदास, अर्जुन, साथी, दयाल, गुब्बर आदि इसी प्रकार के नाम हैं ।

और कभी-कभी ऐसा करने में कहानीकार पात्र की सूरत-शक्ल, अवस्था आदि द्वारा चरित्र-चित्रण कराता है । मुंशी प्रेमचन्द जी ने रानी सारंधा में अनुरुद्ध सिंह का परिचय इस प्रकार दिया है ।

"इतने में दरवाज़ा खुला और लम्बे क़द का एक सजीला जवान अन्दर दाखिल हुआ ।"

"लड़की की सूरत बहुत प्यारी थी जो उसे देखता मोहित हो जाता ।"

वेश-भूषा द्वारा भी चरित्र-चित्रण किया जाता है और कभी-कभी तो पात्र का स्वभाव समझने में वह बड़ी सहायक बन जाती है । ....

"गाढ़े की ढीली मिरजई, घुटनों तक चढ़ी हुई धोती, सिर पर उलझा हुआ बड़ा सा साफ़ा, कन्धे पर चुनौटी और तम्बाकू का भारी बटुआ......"

[प्रेमचन्द]

सूरत-शक्ल और वेश-भूषा दोनों से मिला-जुला एक चरित्र-चित्रण देखिए:—

"ठुमका ठुमका बूटा, सफेद बालों में काली कंघियाँ (हेयर-क्लिप) लगीं जिनमें हीरे की तरह चमकते हुए सफेद नग जड़े थे जो महीन साड़ी के भीतर से पट वैजनियों की तरह रिम-झिम कर रहे थे । साँचे में ढली बाहें अच्छी गोल-मोल नाजुक कलाइयाँ जिनमें फँसी-फँसी चमकती हुई

हरे रंग की जापानी रेशमी चूड़ियाँ और बीच में नीम के फूल की बम्बई वाली चमकदार गिन्नी-गोल्ड चूड़ी जो रेशमी चूड़ियों में मिली हुई इधर-उधर एक के बाद एक, गले में पंचलड़ी जिसमें जुगनू की जगह याकूत का जड़ावदार-चाँद पहने हुए जलसे की रूह श्रीमती सरोजनी नाइडो उठीं...!"

(आग़ा हैदर)

कथोपकथन—इसके द्वारा भी कहानीकार अपने पात्रों को पाठक के सामने लाता है। और उसके बात करने के ढंग, उस की आवाज़ के उतार-चढ़ाव से भी उसकी प्रकृति का पता बताता है। मुंशी प्रेमचन्द ने प्याग का चरित्र उसकी और उसकी धर्मपत्नी के कथोपकथन से इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

प्याग—ला कुछ पैसे मुझे दे दे, दम लगा आऊँ

रुक्मिणी ने मुहँ फेर लिया और कहा,

रुक्मिनी—दम लगाने का शौक है तो काम क्यों नहीं करते ? क्या आजकल कोई बाबा नहीं है ।

प्याग—भला चाहती है तो पैसे दे दे। इस तरह तंग करेगी तो एक दिन मैं कहीं निकल जाऊँगा, तब रोयेगी।

रुक्मिनी—रोये मेरी बला। तुम निकल जाओगे तो मैं भूखों न मर जाऊँगी। अब भी छाती फाड़ कर कमाती हूँ तब भी छाती फाड़कर कमाऊँगी !

प्याग—तो यही फ़ैसला है।

पं० मोटेराम शास्त्री का चरित्र कथोपकथन द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

मोटेराम—.........अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम,
दास मलूका कह गये कि सबके दाता राम।

सोना—क्या कोई ताजी खबर है ?मुस्कराते हुए पूछा।

मोटेराम—(पैतरा बदलते हुए) ऐसा ताक कर मारा है कि चारो खाने चित। सारे घर का न्यौता है। सारे घर का ! वह बढ़-बढ़ कर हाथ मारूँगा कि देखने वाले दंग रह जायँगे।

सोना—कहीं पहले की तरह अब भी धोखा न हो। पक्का पोढ़ा कर लिया है ना ?

मोटेराम–(मूछों पर ताव देते हुए) ऐसा अशगुन मुँह से न निकालो। बड़े जप-तप के बाद यह शुभ दिन आया है जो तैयारियाँ करनी है कर लो।

इसके अतिरिक्त कभी-कभी कहानीकार पात्रों का चरित्र केवल ऐकशन और ताव-भाव द्वारा देता है ऐसा अधिकतर नाटकों में किया जाता है !

कहानी के कथानक की अंतिम मंजिल उसका उपसंहार है, जिसमें कहानीकार अपने पात्रों द्वारा घटित घटनाओं को पाठक के सामने कभी-कभी अपने ही शब्दों में साफ-साफ रख देता है और कभी पाठक की कल्पाना पर छोड़ देता है।

शैली—चरित्र-चित्रण तो कहानी के ढाँचे में जान डालने में सहायक होता ही है पर कहानीकार की शैली उसमें ऐसा रंग भरती है जिससे उस ढाँचे में आकर्षण और रोचकता उत्पन्न हो जाती है। कहानीकार की शैली ही पाठक को प्रभावित करती है। शैली ही कलाकार के अस्तित्व और व्यक्तित्व का परिचय देती है। कहानी रचना में कई प्रकार की शैलियाँ प्रचलित हैं।

[क] वर्णानात्मक

[ख] आत्म-कथन

[ग] नाटक-शैली

[घ] पात्र-शैली

[ङ] डायरी-शैली आदि

भाषा—कहानियों में ऐसी भाषा होनी चाहिए जो सजीव कही जा सके, जिस के द्वारा पात्र सजीव और चलते-फिरते दिखाई दें। भाषा के सम्बन्ध में निम्नांकित मत हैं (१) प्रसाद शैली—इनकी भाषा शुद्ध परमाजित है, जिसमें मुसलमान पात्र भी शुद्ध हिन्दी बोलते हैं। विदेशी पात्रों द्वारा भी इन्होंने साहित्यक भाषा का प्रयोग कराया है। इनकी भाषा में पाठक एक प्रकार की कृतिमता का अनुमान करता है। (२) सरल भाषा—जिसके प्रतिनिध प्रेमचन्द जी हैं। इनकी भाषा जितनी सरल और चमत्कार पूर्ण है उतनी ही जन भाषा में छिपे हुए साहित्यकता की गवाही देती है। (३) लाक्षणिक भाषा—जिसके प्रतिनिधि उग्र जी हैं। (४) रोचक भाषा–जिसके प्रतिनिध अज्ञेय और यशपाल आदि हैं।

हिन्दी में वीर काव्य

बद्दल न होय दल दच्छिन उमड़ि आयो,
घटा ये न होय इभ शिवा जी हँकारे के।
दामिनी दमंक नहिं खुले खग्ग वीरन के,
इन्द्र धनु नाहिं ये निशान हैं सवारे के॥

—भूषन

वीर-काव्यों द्वारा ही जातीय गौरव और राष्ट्रीय भावना की दीपशिखा प्रज्वलित होती है।

नहीं। इसके साथ यह बात भी है, कि इन काव्यों में वीरता को श्रृङ्गार से मिश्रत पाते हैं। वीसलदेव रासो में उसके शौर्य केवल संकेत मात्र हैं, अधिकांश श्रृङ्गार रस पूर्ण है। पृथ्वीराज रासो में युद्धों का कारण राजकुमारी संयुक्ता का विवाह था। ऐसी दशाओं में चारण साहित्य की वीर-गाथा साहित्य कहना अधिक उचित नहीं। यह साहित्य राष्ट्रीय साहित्य तो कहा ही नहीं जा सकता, इसलिए कि उसके मूल से राष्ट्रीयता की कोई भावना ही नहीं।

रासो शब्द संस्कृत शब्द रहस्य का विगाड़ा हुआ रूप है। रासो के मुख्य उद्देश्य काव्य नायक के जीवन के समस्त चरित्रों का वर्णन करना रहा है। ऐसी गाथाओं की भाषा पर स्थानीय प्रभाव बहुत रहता था। "डिंगल शैली पर की जाने वाली कविता तो बिलकुल उनके निवास स्थान की भाषा हुआ करती थी।" पिंगल की कविताओं का भी यही रंग था, पर उसमें अधिकाश सामान्य काव्य-भाषा का प्रयोग किया जाता था। प्रायः सभी काव्यों में राजस्थानी भाषा का पुट बहुतायत से मिलता है।

प्रबन्ध-काव्यों के रूप में मिलने वाली वीर-गाथाओं में सबसे पुराना काव्य दलपति विजय नामक कवि का रचा हुआ "खुमान रासो" है। खुमान चित्तौड़ गढ़ी के रावल थे। खुमान नाम के तीन रावल मिलते हैं और यह पता नहीं चलता कि किस खुमान की प्रशंसा की गयी है। पृथ्वीराज रासो दूसरा ऐसा प्रबन्ध-काव्य है। इसे राज-दरबारी कवि चन्द्र बरदाई ने रचा है इसकी जितनी प्रतियाँ मिलती हैं, वे एक दूसरी से बहुत विभिन्नता रखती हैं।

"पृथ्वीराज रासो" के जोड़-तोड़ में दो विशाल ग्रंथ कन्नौज के नरेश जय-चन्द की प्रशंसा में भी लिखे गये थे। एक है जयचन्द प्रकाश" और दूसरा है जय चन्द-जास चन्द्रिका"। पहले के लेखक हैं केदार और दूसरा मधुकर कवि द्वारा रचा गया है। ऐसे अन्य काव्यों में हम्मीर रासो की गणना की जाती है जिसे सारंगधर नामक भट्ट ने रचा था जो महाराज हम्मीर देव का समकालीन था।

वीर-गीतों के रूप में मिलने वाले दो ग्रंथ उल्लेखनीय है एक है नरपति नाल्ह का वीसलदेव रासो और दूसरा है "जगनिक कथित आल्हा।" इन दोनों में आल्हा

को जो लोकप्रियता प्राप्त है वह किसी अन्य वीर गाथा को प्राप्त नहीं हुई। जगनिक कालींजर के परमाल राजा का भट्ट था। उसने महोबे के दो प्रसिद्ध वीरों आल्हा और ऊदल के वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन किया है। इसकी लोकप्रियता के कारण मूल काव्य का पता ही नहीं चलता विभिन्न बोलियों में अब इसके विभिन्न रूप हो गये है इन वीर-गीतों का संग्रह आल्हा खण्ड के नाम से प्रकाशित हुआ है।

ऐसी वीर-गाथाएँ घटनात्मक न हो; ऐतिहासिक दृष्टिकोण से घटनाओं के संतुलन का अभाव हो; भाषा में भी गड़बड़ी हो, स्थानीय प्रभाव अधिक हो; काव्य का स्तर चाहे कितना ही नीचा क्यों न हो; पर यह बात तो माननी ही पड़ेगी, कि ऐसी दंत-कथाएँ अत्यन्त लोकप्रिय रही हैं और जन समाज में जाग्रति उत्पन्न करने का एक मात्र साधन भी। रासो कारों ने अपने आश्रय दाताओं के पराक्रमों को सीमा से आगे बढ़ा दिया हो कुछ चारणों ने निकम्मे आश्रय दाताओं की यथेष्ट प्रशंसा भी कर दी हो; पर इतना तो मानना ही पड़ेगा कि ऐसे काव्य अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त साधन रहे। भला कौन ऐसा होगा जो ऐसे बोल सुनकर जीवन की लालसा करेगा और रणभूमि में पीठ दिखाकर भाग खड़ा होगा।

बारह बरसि लौ कूकर जिएँ,
और तेरह लौ जियें सियार।
बरिस अठारह क्षत्री जीवें
आगे जीवन के धिक्कार

इतना सब कुछ होने पर भी हम इस काव्य को वीर-काव्य नहीं कह सकते जैसा हम पहले संकेत कर चुके हैं।

यों भी रासो प्रकार की वीर गाथाओं का जन्म मुसलमानों के आक्रमण से ही आरम्भ होता है; पर विशुद्ध वीर-काव्य का उत्थान तो मुग़ल साम्राट आलमगीर की राजनीति द्वारा हुआ होना ही समझना चाहिए। लगभग २५ वर्ष मुग़लो और मराठों की मुठभेड़ होती रही, ऐसी दशा में हिन्दू समाज की एक ऐसे नेतृत्व को आवश्यकता थी जो उनकी दबी हुई भावनाओं को उभार सके। उनकी परेशानियों को मिटा सके और उन्हें सुख शांति दे सके, ऐसी दशा में कवि, यदि कुछ नहीं कर सकता

तो इतना तो अवश्य कर सकता है, कि अपनी कविताओं द्वारा निराश समाज को आशा प्रदान कर सके। भावनाओं की दबी हुई चिनगारियों को दहका सके, यहीं से हिन्दी भाषा में वीर-काव्य का द्वितीय उत्थान (१६००-१८००) के बीच प्रारम्भ होता है। इसमें पाँच प्रकार की पद्धितयाँ मिलती हैं !

(क) शुद्ध वीर-रसात्मक कविता (ख) रासो पद्धति की वीर कविता (ग) देव-काव्य के रूप में वीर-कविता (घ) महाभारत जैसे वीर-काव्यों के अनुवाद रूप में वीर-कविता; और (ङ) दरबारी फुटकर कवियों की वीर-कविता।

प्रथम पद्धति पर चलने वाले प्रधान कवि भूषण, श्रीधर, लाल,सूदन और पद्माकर हैं। इन पाँचों में भी उदात्त भावनाओं से प्रेरित होकर कविता रचने वाले केवल दो ही हैं। भूषण और लाल। भूषण ने शिवाजी और क्षत्रसाल की प्रशंसा की है। शिवावावनी, क्षत्रसालदशक, शिवराज भूषण और कुछ फुटकर कविताएँ इनकी स्मृति हैं। भूषण के वीर-काव्य में राजनीतिक, साहित्यक, समाजिक और मानसिक सभी विचारों से उच्च आदर्श पाये जाते हैं। अलंकारिक भाषा होने के कारण उनकी कविता में स्वाविक सौन्दर्य का अभाव प्रतीत होता है। फारसी के बिगड़े हुए शब्दों का प्रयोग भी बहुत किया गया है।

भूषण भनत तहाँ सराज सिवा जी गरजा
तिनको तुरुक देख नेकहू न लरजा।

श्रीधर ने फर्रुखसियर और जहाँदाराशाह के युद्ध का वर्णन "जगंनामा" के नाम से किया है। इसके पश्चात् लाल कवि का नाम आता है जिनकी ख्यात क्षत्रप्रकाश नामक पुस्तक के कारण है। सूदन ने भरतपुर के महाराजा बदन सिहँ के पुत्रसुजान-सिहँ के युद्धों का वर्णन किया है। ग्रन्थ का नाम "सुजान-चरित्र" है। पद्माकर की "हिम्मत बहादुर विरुदावली" वीर-रस में एक अच्छी पुस्तक है।

इन कवियो ने शूर-वीर राजाओं और शासकों के युद्धो का वर्णन तो अवश्य किया है, पर इनकी प्रशंसा भी बड़ी धूम धाम से की है। ये कवि तो कहीं-कहीं उर्दू के "कसीदा कार' शायरों की पंक्ति में खडे दिखायी देते हैं और शायद इसीलिये

कहा जाता है कि बहुतेरे कवियों ने वीर रस की कविताएँ द्रव्यलोभ से ही की थीं। कितने ही श्रृङ्गारी राजाओं की झूठी प्रशंसा में भी ग्रन्थ लिखे गये हैं।

जो कविताएँ मुसलमान शासकों की शासन-नीति से प्रभावित होकर लिखी गईं और जिनमें पद्दलित जनता की दुखती रगों पर हाथ रखा गया है और जिनमें जनता की आह का प्रदर्शन होता है, ऐसी कविताएँ इस द्वितीय उत्थान की देन है। भूषण की शिवाबावनी ऐसी ही भावनाओं का प्रदर्शन करती है। इस काल की कविताओं में विद्रोह के नारे और आगे बढ़ने की ललकार तो नहीं पाई जाती, पर शासन-नीति के प्रति घृणा उत्पन्न करने का प्रयास अवश्य किया गया है।

वह समय ही ऐसा था कि एक शासक दूसरे शासक को दबाने का प्रयास करना ही राजनीति समझता था। यदि भूषण की शिवाबावनी, शिवाजी की प्रशंसा और मुग़ल शासक औरंगजेब की निन्दा पर सम्मलित हैं, तो दूसरी ओर यह भी हो रहा था कि (जिस पर आपको आश्चर्य होगा) बीजापुर का दरबारी कवि नुसरती औरंगजेब की मुग़ल सेना और शिवाजी और उसके सैनिको दोनों ही की निन्दा करता है। कारण यह है, कि जिस प्रकार मुग़लो और मराठों में संघर्ष होता रहा है, उसी प्रकार बीजापुर के सुलतान अली आदिलशाह और उसके सेनापति बहलोल खाँ से मुग़लों और मराठों दोनों से संघर्ष भी होता रहा और अपनी-अपनी जन्म-भूमि को पराधीनता से बचाने के लिए, जो कुछ कर सकते थे, करते रहे।

द्वितीय उत्थान के ऐसे कवि उन राज दरबारी कवियों और भाटों से विभिन्न हैं, जो अपने आश्रयदाता की झूठी प्रशंसा करते थे। ये कवि अपनेआश्रयदाता,शासकों के साथ-साथ रणभूमि में रहते थे और अपनी जातीय सेनाओं को अपने काव्य द्वारा प्रोत्साहित करते थे।

वीर-काव्य का तृतीय उत्थान उस समय हुआ, जब बृटिश साम्राज्य की शासन नीति प्रौढ़ बन चुकी थी, परन्तु भारतवासियों में एक प्रकार की जाग्रति भी उत्पन्न हो चुकी थी। काँग्रेस की स्थापना और राजनीति-हलचल उठ खड़ी होने से राष्ट्रीय चेतना अधिक मात्रा में बढ़ने लगी; इसीलिए वीर-काव्य की ओर अधिकाधिक ध्यान हुआ। ऐसी राष्ट्रीय कविताओं की झाँकियाँ हमें भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र की

"कवि बचन सुधा" के पन्नों पर ही मिलने लगती हैं ।देश की दयनीय परिस्थिति की इस प्रकार संकेत किया है; ।

सबैं सुखी जग के नर नारी, हे विधना, भारत ही दुखारी।
भारत दुर्दश लखी न जाई ।...

इस काल की कविताएँ ग्रन्थों के रूप में न लिखकर गीत रूप में लिखी गई हैं। ऐंसी कविताओं में वीरता और करुणा का समावेश है; अपनी पिछली मान मर्यादा खो जाने पर रुदन,पूर्वजों की वीरता और साहस की प्रशंसा,स्वयं अपनी दुर्दशा, आगे बढ़ने की आकाँक्षा, समाज-सुधार आदि ऐसी कविताओं के मूल उद्देश्य हैं ।

हम कौन थे ! क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी। [गुप्तजी]

पंडित गया प्रसाद त्रिशूल, पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, पंडित बालकृष्ण शर्मा "नवीन" बाबू मैथलीशरणगुप्त, पंडित गुलाबराय आदि प्रमुख कवि हैं ।

इन्हीं उद्दश्यों ने आगे चलकर आत्म सम्मान की जाग्रित, जीवन की समस्याओं का हल तथा विचारों में सत्य, अहिंसा और जन सेवा के रूप धारण किये—

मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ में तुम देना फेंक;
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जाते वीर अनेक ।

[माखनलाल चतुर्वेदी]

देश भक्ति और स्वदेश प्रेम की एक लहर स्नेह जी के शब्दों में देखिये—

जिसको न निज गौरव तथा,
निज देश का अभिमान है ।
वह नर नहीं नर, पशु निरा है
और मृतक समान है ।।

इसके बाद वीर-काव्य ने एक नया मोड़ अपनाया । किसी जातीय राजा अथवा जागीरदार का श्रय न लेकर, पूर्वजों की कीर्तियों को तो दुहराया ही जाता था । अपनी मान-मर्यादा मिट जाने का रोना भी रोया गया । भारतेन्द्र, और मैथिलीशरण गुप्त ऐसा कुछ कहकर जोश और उत्साह की लहरें पैदा करने का प्यास करते रहे—

हम कौन थे, क्या हो गये......... ।

पर अब काव्य लोकजीवन के समीपआता गया। शिक्षा प्रसार और राजनीतिक जाग्रित के कारण लोगों में देश-भक्ति का स्वरूप व्यंजित हो चला। देश-भक्ति की यह भावना पहले की अपेक्षा कुछ व्यापक हो चली। वीर-काव्य ने अब देश भक्ति, जनसेवा और प्रगतिवाद का रूप धारण कर लिया—

पशु बनकर नर पिस रहे जहाँ,नारियाँ जन रही हैं गुलाम;
पैदा होना फिर मरजाना, यह है लोगों का एक काम।
वह राजकाज जो सधा हुआ है इन भूखे कंगालों पर,
इन साम्राज्यों की नींव पड़ी है तिल-तिल मिटनेवालों पर।
वे व्यौपारी, वे जमींदार, जो हैं लक्ष्मी के परम भक्त,
वे निपट निरामिष सूदखोर पीते मनुष्य का ऊष्ण रक्त।

हाँ ! आज के कवियों में एक नवीनता की लहर अवश्य दौड़ रही है; पुरानी बातें दुहराने के अतिरिक्त बहुत सी नवीन शैलियाँ भी अपनाई जा रही हैं:—

नये रास्ते हैं, नयी मंजिलें हैं वह धरती को देखो नया रूप धारा...।

—ꕥ—

हिन्दी में उपन्यास रचना

वे किस्से और कहानियाँ, जो यर्थाथ वाद से दूर हों, उनकी गणना साहित्य में न करना चाहिये।

—जानसन

सफल कहानीकार वही बन सकता है, जो विभिन्न वर्गों के लोगों से मिले जुले, जो उसके वातावरण से बिल्कुल भिन्न हों।

—डिस्मांड मेकार्थी

हिन्दी में कथा, कहानी साहित्य की कमी नहीं रही। जातक और पंचतंत्र की कहानियों से तो समस्त सभ्य जगत भली-भाँति परिचित है रामायण और महाभारत की कथाएँ भी ऐसी नहीं जिन के परिचय कराने की आवश्यकता हो। एक लम्बे समय तक भारतवर्ष धर्म, नैतिकता, लोक चातुरी और भक्ति तत्व से चिमटा रहा। फिर एक समय आया कि वह राजा और रानियों अपसराओं और उड़नखटोलों के चमत्कार देखता रहा। इन्शाअल्लाह खाँ ने रानी केतकी की कहानी दी, लल्लू लाल ने माधवानल, प्रेम सागर, बैताल पच्चीसी आदि दी। गुलबकावली, तोता मैना आदि न जाने कितनी कहानियाँ लिखी गईं जो अय्यारी और तिलिस्म से ओतप्रोत हैं। फिर एक समय आया कि कथाकार ने अपने ही जैसे हाड़ और माँस से बने हुए व्यक्तियों के जीवन की कहानियाँ सुनाईं, और यही लम्बी चौड़ी कथायें घटते-घटते छोटी होने लगीं।

उपन्यास—इन्शाल्लाह खाँ की रानी केतकी की कहानी और मुंशी प्रेमचंद की दफतरी के बीच की एक श्रृंखला है। केवल इतना ही नहीं वरन् कथाकारों और उपन्यासकारों के दृष्टि कोण की विभिन्नता है। घटनाओं की योजना के लक्ष्य में भी अंतर है। उपन्यास के अपने तत्व है।

हिन्दो में उपन्यास रचना का आरम्भ भारतेन्द्र युग या उससे कुछ पहले ही से होने लगा। उस समय उपन्यास कार अपनी कहानियों के कथानक संस्कृत की कथाओं से लेकर अपनी शैली में लिख दिया करते थे। बंगला उपन्यासों के अनुवाद भी हुए।

ऐसा भी प्रयत्न किया गया है कि स्वप्न चित्र के रूप में उपस्थित घटनाओं को कहानी का रूप दे दिया जाय।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को सर्व प्रथम मौलिक उपन्यासकार माना जाता है और "पूर्ण प्रकाश और चन्द्र प्रभा' सर्व प्रथम उपन्यास कहा जाता है। इस युग के उपन्यासकारों के सामने सामाजिक सुधार की समस्याएँ थीं, अतएव मौलिक तथा अनूदित उपन्यास सभी में कोई न कोई सामयिक समस्या सुलझाने का प्रयत्न किया गया है, दीर्घ कालीन रूढ़ियों और परम्पराओं के विरोध में आवाज उठाई गई है। साथ ही साथ स्त्री शिक्षा और उन के अधिकारों की ओर भी ध्यान दिलाया गया है। भारतेन्दु बाबू की "पूर्ण प्रकाश और चन्द्र प्रभा" को पढ़िये तो ज्ञात होगा, कि चन्द्रप्रभा का विवाह ढुंढराज नामक एक वृद्ध से हुआ था। वृद्ध विवाह के दोषों को मिटाना उपन्यास का एक मात्र उद्देश्य है, नारी जाति के नवीन अभ्युदय का संदेश है। इस युग के उपन्यास उर्दू के प्रथम उपन्यास कार डा० नजीर अहमद के उपन्यासों से समानता रखते हैं। जो मध्यम श्रेणी के मुसलमानों की समस्याएँ अपने सामने रखते हैं।

श्री निवास दास का "परीक्षा गुरु," दूसरा उपन्यास है, और जिसका दूसरा संस्करण १८८६ में प्रकाशित हुआ। प० रामचन्द्र शुक्ल इसी को पहला मौलिक उपन्यास मानते हैं। निःसहाय हिन्दू, नूतन ब्रह्मचारी, सौ अजान और एक सुजान, बड़ा भाई और सास पतोह, दुर्गेश नंदिनी, पुष्पावती आदि इस युग के मौलिक और अनूदित प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

उपन्यास-रचना का द्वितीय उत्थान बड़ा विशाल रहा है। ऐसा प्रतीत होता है, कि गद्य-साहित्य में सारे लेखकों का ध्यान इसी ओर आकर्षित हो गया और सैकड़ों उपन्यास लिख डाले गये। इनमें सर्व प्रथम क्रम बंगभाषा अनूदित उपन्यासों का आता है और वह भी बंगला के प्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिम बाबू के उपन्यासों का।

बंकिमचन्द्र चटर्जी के उपन्यास अधिकतर ऐतिहासिक हैं, अथवा किसी न किसी प्रकार उनका सम्बंध ऐतिहासिक घटना से है। परन्तु वे ठीक अर्थ में ऐतिहासिक नहीं कहे जा सकते। उनके उपन्यासों की तुलना सर वाल्टर स्काट के उपन्यासों से

इस अर्थ में की जा सकती है, कि स्काट को वहाँ कहीं किसी स्काच परम्परा का सम्मान मिल जाता है वह उसे अपने उपन्यास का विषय बना लेते हैं या फिर उर्दू के उपन्यास कार अब्दुल हलीम शरर से तुलना की जा सकती है, उन्हें जहाँ कहीं इस्लामी इतिहास में कोई ऐसी घटना मिल गई, जिसमें इसाईयों, और मुसलमानों का संघर्ष हो, या मुसलमानों की मान मर्यादा का प्रश्न हो, वह उनके उपन्यास का कथानक बनने के लिए काफी है।

बंकिम बाबू के उपन्यासों से कथानक की रोचकता, पात्रों के चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विकास, और कल्पना की उड़ान मुख्य विशेषताएँ हैं, यह सब विशेषताएँ हिन्दी अनूदित उपन्यासों में बंगला उपन्यासों द्वारा आयीं।

पं० प्रताप नारायण मिश्र और पं० राधाकृष्ण गोस्वामी ने बंगला उपन्यासों का अनुवाद करना आरम्भ किया। तत्पश्चात् कार्तिक प्रसाद खत्री ने इला-प्रमीला, जया और मधुमालती; श्री रामकृष्ण वर्मा ने ठग वृतान्त माला, पुलिस वृतान्त माला, चित्तौर चातक और अकबर; तथा श्री गोपाल राम गमरी ने भानुमती, चतुर चंचला, देवरानी जिठानी, दो बहनें, नये बाबू, बड़ा भाई, तीन पतोहू आदि अनूदित उपन्यास दिये।

रेनाल्टस कृत 'लैला' और 'लंदन रहस्य' हिन्दी में अनूदित हुए। 'टाम काका की कुटिया' अँग्रेजी अनुवाद है। कुछ उपन्यास उर्दू, मराठी तथा गुजराती से भी अनुवाद किये गये। मौलिक उपन्यासों में इस उत्थान से पूर्व बाबू देवकीनंदन खत्री के दो उपन्यास कुसुम कुमारी, वीरेन्द्रवीर प्रकाशित हो चुके थे। तत्पश्चात चन्द्रकान्ता और चन्द्रकांता संतति दो उपन्यास प्रकाशित हुये, और इन्हीं के द्वारा हिन्दी उपन्यास रचना में ऐयारी, चातुरी और जासूसी उपन्यासों का द्वार खुलता है। ऐयारी के उपन्यास बड़े लोक प्रिय साबित हुये। लोग बड़े चाव से उन्हें पढ़ते थे।

ऐसे उपन्यासों का मूल लक्ष्य केवल घटना-वैचित्र्य रहा है; रस-संचार-भाव विभूत अथवा चरित्र-चित्रण नहीं रहा। ऐसे उपन्यास नाम मात्र भी उपन्यास कहे जाने योग्य नहीं हैं। ये केवल कथा, किस्से या अफसाने कहे जा सकते है, जिनके लिये कहा गया है,

"ख्वाब था जो कुछ भी देखा, जो सुना अफ़साना था।"

इसमें संदेह नहीं कि ये उपन्यास इतने रोचक हैं कि पाठक न तो कथानक के गठन और चरित्र के विकास की ओर ध्यान देता है और न उपन्यास तत्वों के अभाव का अनुमान करता है। वह आश्चर्य जनक घटनाओं में उलझ-उलझ कर, घबड़ा-घबड़ा कर, पीछे हट-हट कर, आगे बढ़ने के प्रयास में मग्न उपन्यास चाटता चला जाता है ऐसे दूसरे उपन्यासकारों में बाबू हरिकृष्ण जौहर का नाम उल्लेखनीय है।

ऐसे उपन्यासों की भाषा-शैली भी निर्मुक्त न थी। चलताऊ भाषा, उर्दू हिन्दी की खिचड़ी सी इनकी भाषा का रूप था। इससे यह न समझ लेना चाहिये, कि यह पद्धित राजा शिवप्रसाद के मत के समर्थन में चल पड़ी। ऐसे उपन्यासों की तुलना उर्दू के नीलीछतरी, पोली छतरी, बहराम की गिरफ्तारी प्रकार के उपन्यासों से की जा सकती है।

इस उत्थान-काल में सामाजिक उपन्यास रचना की ओर भी ध्यान दिया गया। पं० किशोरी लाल गोस्वामी ऐसे पहले उपन्यासकार माने जा सकते हैं। लीलावती लवंगलता, रुत णतपस्विनी आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। हरिऔधजी, और पं० लज्जाराम झा के नाम भी इस सम्बंध में उल्लेखनीय हैं। खिला फूल और धूर्त रसिक लाल प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

तृतीय उत्थान काल में उपन्यास शैली के क्षेत्र में आश्चर्य जनक परिवर्तन हुआ। यथार्थवाद चित्रण के साथ पिछला काव्य रंग मिटता गया। यथार्थवाद शब्द अँग्रेजी शब्द रियलिज्म का पर्यायवाचक गढ़ लिया गया है। इसका मूल उद्देश्य यह है, कि किसी वस्तु को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करना। न तो उसे कल्पना द्वारा रंगीन किया जाय और न किसी आदर्श के लिये उसमें काट-छाँट की जाय, सच पूछिये तो योरोप में यह "इज्म" आइडियलिज्म (आदर्श वाद) और रोमान्टिसिज्म(स्वच्छदता वाद) के विरोध में चला। हिन्दी उपन्यासकारों की यथार्थवादी प्रवृति बढ़ती गयी, जो प्रेमचन्द के उपन्यासों में विकसित रूप में पूरी होती दिखायी देती है। यही कारण है, कि इस काल के उपन्यास-कारों के वहाँ लम्बे-लम्बे दृश्य वर्णन, धाराप्रवाह

भाव व्यंजना पूर्ण भाषण, लच्छेदार भाषा, मुहाविरे और फबती हुयी कहावतों का अभाव मिलेगा, जिसका प्रचलन पहले था।

कथानक के स्वरूप और लक्ष्य के अनुसार सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों के अतिरिक्त हिन्दी में निम्नांकित उपन्यास मिलते हैं; परन्तु यह विभाजन ऐसा नहीं कि इसे एक मात्र तार्किक समझ लिया जाय। मानव की प्रत्येक समस्या उपन्यास और कहानी के कथा वस्तु के लिये काफी है :—

(१) घटना वैचित्र्य उपन्यास, अर्थात जासूसी और वैज्ञानिक चमत्कार दिखाने वाले बहुतेरे उपन्यास।

(२) मनुष्य के अनेक पारस्परिक सम्बन्धों की मार्मिकता पर प्रधान लक्ष्य रखने वाले उपन्यास, जैसे मु० प्रेमचन्द का सेवा सदन, गोदान; कौशिक की माँ, भिखारिणी; प्रतापनारायण श्रीवास्तव का विदा आदि।

(३) समाज के विभिन्न वर्गों की परस्पर स्थिति और उसके संस्कार आदि चित्रित करने वाले उपन्यास, जैसे मु० प्रेमचन्द का रंगभूमि, कर्म भूमि; प्रसाद जी का कंकाल आदि।

(४) अंतरवृत्ति अथवा शील वैचित्र्य और उसका विकास क्रम अंकित करने वाले, जैसे मु० प्रेमचंद का गबन, जैनेन्द्र कुमार की तपो-भूमि आदि।

(५) भिन्न-भिन्न जातियों और मतानुयायियों के बीच मनुष्यता का व्यापक सम्बंध पैदा करने वाले उपन्यास, जिन्हें मानवतावाद की देन समझना चाहिये, जैसे रमण-प्रसाद जी का रामरहीम आदि।

(६) समाज के पाषंड-पूर्ण कुत्सित पक्षों का उद्घाटन और चित्रण करने वाले, जैसे उग्रजी का दिल्ली का दलाल, बधुआ की बेटी आदि।

(७) वाह्य और आभ्यंतर प्रकृति की रमणीयता का समन्वित रूप में चित्रण करने वाले उपन्यास, जैसे मंगल प्रभात···।

राजनीतिक सुधारों के जो आंदोलन देश में चल रहे हैं, उनका आभास प्रेमचंद जी के उपन्यासों में मिलता है। यह भावना आधुनिक उपन्यासों में बहुत तीव्र हो चला है।

इसी बीच छोटी कहानी रचना का उत्थान हुआ, और साहित्यकार अधिकांश इसी ओर झुक गये। उपन्यास रचना की प्रवृत्ति दबती सी गयी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि लघु-कथाओं और एकांकी नाटकों का सामना उपन्यास न कर सकेंगे।

ऐसा प्रतीत होने लगा कि मु० प्रेमचंद के पश्चात हिन्दी उपन्यास कोई नवीन दिशा ग्रहण न कर सकेगा; पर सूर्य कांत त्रिपाठी निराला की निरूपा, बिल्लेसुर बकरिहा (१९४१) के प्रकाशन के बाद यह विचार एक भ्रम ही ज्ञात हुआ और निराला जी के उपन्यास बड़े महत्वपूर्ण दिखायी पड़े। जैनेन्द्र कुमार जैन (सुनीता, १९३६), (त्याग पत्र १९३७), (कल्याणी, १९४०) राहुल सांकृत्यायन(जय यौधेय,१९४४), (सिंह सेना पति, १९४५), (जीने के लिये १९४५), इलाचंद जोशी (संन्यासी, परदे की रानी १९४१), यशपाल (चक्कर क्लब १९४२), भगवती चरण वर्मा (टेढ़े-मेढ़े रास्ते १९४६), उपेन्द्रनाथ अश्क (सितारों के खेल १९४१), प्रेमचन्द के बाद के प्रमुख उपन्यासकार हैं।

तरुण उपन्यासकारों में राँगेय राघव, गंगाप्रसाद मिश्र, राधाकृष्ण, डाक्टर भारती आदि ने बड़ी क्षकि । के साथ प्रवेश किया है।

१९३६ के पश्चात् उपन्यास लिखने की शैली में बड़ा परिवर्तन हुआ है और-इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास भी हुआ है, जिसे देखकर ऐसी आशा होती है कि उपन्यासों का भविष्य अधिक उज्ज्वल रहेगा।

—:०:—

हिन्दी साहित्य पर अंग्रेजी भाषा का प्रभाव

मैं स्वयं अपने ही तक सीमित नहीं रह सकता
वरन् अपने वातावरण का एक अँग बन जाता हूँ।

—बाइरन

इँग्लिश का ग्रंथ समूह बहुत भारी है,
अतिविस्तृत जलधि समान देह धारी है।
संस्कृत भी सब के लिये सौख्यकारी है,
उनका भी ज्ञानागार हृदय हारी है ॥

इन दोनों में से अर्थ रत्न ले लीजै, हिन्दी के अर्पण उन्हें प्रेमयुत कीजै।

—महावीर प्रसाद द्विवेदी

यदि हम उन्नीसवीं शताब्दी से साहित्य का अध्ययन करें तो शीघ्र ही इस परिणाम पर पहुँचगे, कि हिन्दी काव्य एवं साहित्य पर अंग्रेजी भाषा के भावों के बहुत ही गहरे चिन्ह उजागर हैं। अंग्रेजी भाषा हिन्दी भाषा की रूपरेखा परिवर्तित करने में कहाँ तक प्रभावदायक हुई, उसका अनुमान सामान्य बोल-चाल से होता है; विशेषत: कालेज के विद्यार्थियों की तो यह दशा है, कि वे अपनी मातृ भाषा में एक वाक्य भी ऐसा नहीं बोल सकते, जो अंग्रेजी शब्दों से विहीन हो। पर इसे हम कोई वास्तविक प्रभाव नहीं कह सकते।

वास्तविक प्रभाव के चिन्ह ढूढ़ँने के लिए हमें फोर्टविलियम कालेज की ओर जाना होगा, और हमारी भाषा पर अस्थायी प्रभाव यहीं से पड़ते हैं। ४ मई सन् १८०० को लार्ड वेलजली ने फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की। जानगिल क्राइस्ट की अध्यक्षता में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने कर्मचारियों को हिन्दुस्तानी सिखाने के लिए पाठ्य पुस्तकें तैयार कराने की व्यवस्था की। इसी सिलसिले में पाश्चात्य विद्वानों की अभिरुचि भारतीय साहित्य का अनुशीलन करने की ओर हुई। संस्कृत साहित्य के अध्यन के फल स्वरूप पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान इस देश के साहित्य और संस्कृति की ओर आकर्षित हुआ; इसके साथ यह भी हुआ कि अंग्रेजी स्कूलों और कालेजों द्वारा हम लोगों को अंग्रेजी भाषा के अध्ययन का अवसर मिला।

जिसका नतीजा यह हुआ, कि हिन्दी लेखकों को इस बात की प्रेरणा मिली, कि वे अंग्रेजी साहित्य के रत्नों को अपनी भाषा में प्रस्तुत करें। आरम्भ में यह प्रयत्न अनुवादकार तक सीमित रहा, फल स्वरूप गोल्डस्मिथ के 'हरमिट' और 'डिज़र्टेड-विलेज' के अनुवाद 'एकंत वासी योगी' और 'ऊजड ग्राम' के नाम से क्रमशः प्रकाशित हुए। ग्रे की 'एलिजी' का अनुवाद विद्यारसिक ने किया। पोप की कविता रत्नाकर द्वारा अनुवादित हुई। इसी प्रकार वर्ड्स्वर्थ, वायरन, स्काट, लाँगफेलो, शेक्सपियर आदि की स्फुट रचानायें हिन्दी में ढाली गईं।

द्विवेदी जी के नेतृत्व मिलने पर और एक दीर्घ सम्पर्क के पश्चात् हिन्दी काव्य के भाव-पक्ष और कला-पक्ष में धीरे-धीरे एक युगांतर सा उपस्थित हो गया। इस युगांतर में सब से गहरा और सब से व्यापक प्रभाव रोमांटिक कवियों का है। उस चेतना की प्रथम झाँकी श्रीधरपाठक की कविताओं में दिखायी देती है। यही चेतना आगे चल कर मैथिलीशरण गुप्त, राय कृष्णदास, मुकुटधर पाण्डेय आदि की कविताओं में सरल उल्लास के साथ व्यक्त हुई। आरम्भ में इस रोमांटिक चेतना ने काव्य की रूढ़िगति परम्पराओं और रीतिकालीन नियम बद्धता का तीव्र विरोध किया। नायक नायिका भेद की श्रृङ्खलायें, अलंकार छंदों के बंधन और काव्य की रूढियाँ टूटने लगीं। सासिहत्य और जीवन के सीमित दृष्टि कोण में एक प्रकार की नवीन धारा का स्रोत उमड़ा।

भाव संवेदन का प्रभाव यह हुआ, कि कवि के भाव उसके अंतरस्पर्श से पुलकित हो उठे। राजा महाराजाओं, देवी-देवताओं के विलासमय कक्षों से हट कर कवि की दृष्टि जन साधारण पर पड़ी। लहलहाते खेतों में काम करने वाले किसान, गाँव की राहें, मैदानों में चरते हुए ढोर, शाम और सवेरा, भिखारी के स्वर आदि सब की ओर उस की निगाहें उठने लगीं, और वे सब उसे अपनी ही प्रतीत होने लगे।

कृषक वधूटी खेत काटती हँस-हँस कर, लेकर हँसिया।
गाती गीत, सुना दो मोहन प्रेम भरी अपनी बँसिया॥

—गुरु भक्त सिंह

प्रकृति सम्बंधी कविताओं पर तो अंग्रेजी पद्धित का यह प्रभाव और भी अधिक व्यापक हो जाता है

कौन हो तुम बंसत के दूत
विरस पतझड़ में अति सुकुमार
घन तिमिर में चपला की रेख,
तपन में शीतल मंद बयार।

अंग्रेजी कविता के सम्पर्क से हमारे काव्य की अभिव्यजना शैली में भी परिवर्तन हुआ। फलस्वरूप कुछ नवीन रूप-काव्य शैलियाँ ग्रहण की गई। आधुनिक गीत, (लीरिक) शोकगीत, (एलिजी) संबोधन गीत, (आड) चतुर्दशवती, (सानेट) पैरोडी का प्रचलन इसी प्रभाव की देन हैं।

इसी प्रकार गद्य पर भी प्रभाव पड़ा। उपन्यास, लघु-गल्प, एकांकी नाटक तो एक मात्र इसी प्रभाव की देन हैं।

हिन्दी नाटकों पर अंग्रेज़ी-नाट्य साहित्य का प्रभाव कई रूपों में पड़ा। अनुवाद कारों का युग भारतेन्दु युग से आरम्भ हुआ। सब से पहले हिन्दी में तोताराम वर्मा ने एडीसन के केटो का अनुवाद केटी वृत्तांत के नाम से सन् १८७६ में किया। तत्पश्चात् शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद प्रकाशित हुए।

अंग्रेजी नाटकों के सम्पर्क से हमारे यहाँ नाटक की कला रूपरेखा और अभिनय में बहुत से परिवर्तन हुए।

एकांकी नाटकों की उत्पत्ति विल्कुल अँग्रेजी की देन है। इस सम्बंध में डा० राम कुमार वर्मा, उपेन्द्र नाथ अश्क, भुवनेश्वर प्रसाद आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

रेडियो प्ले और प्रतीकवाद नाटकों की रचना भी इसी के अंतर्गत आती है। प्रत्येक वर्ष रेडियों प्ले लेखकों की प्रतियोग्यता का प्रबंध अखिल भारतीय रेडियों की ओर से हुआ करता है। इससे प्रत्येक वर्ष तीन चार उत्तम श्रेणी के रेडियो प्ले

लिखे जाते है। "काम देव की भूल" (१६५०) गिरती दीवार (सन् १६४२) अजहर अली फारुकी पैसा और परिछाईं (१६५६ डा० मोहम्मद हसन के उत्तम श्रेणी के रेडियो नाटक घोषित किये जा चुके है।

पंतजी की ज्योत्स्ना और प्रसाद जी की कामना प्रतीकवादी नाटकों की कोटि में रक्खी जा सकती हैं जो क्रमशः सेंची और फैन्टेसी से प्रभावित हैं '

हिन्दी उपन्यास के प्रथम उत्थान में जिन जादुई और साहसिक उपन्यासों की रचना हुई उन पर अँग्रेजी के टेरर नाविल का प्रभाव दिखायी देता हैं। 'रक्त मणडल' जैसे उपन्यास में टेरर नाविल और वेल्स की शैली का समावेस दिखाई देता है।

'शरलाक होम्स,' एडिकर वैसेस, कोपेन हेम, आदि की शैलियों ने हमारी भाषा में जासूसी उपन्यास दिए। हिन्दी में 'कुसुपुरी' की लखनऊ की कब्र, किशोरी लाल गोस्वामी का अगूँठी का नमूना आदि भी अँग्रेजी शैली से प्रभावित होकर लिखी गईं, जिन्हें हम प्रेमाख्यानक और ऐतिहासिक उपन्यास कहते हैं।

प्रकृतिवादी अथवा यथार्थवादी चित्रण की झाँकियाँ अँग्रेजी फ्रेन्च और रूसी उपन्यास कारों से ही मिलती हैं।

इस श्रृङ्खला की अंतिम कड़ी गल्प अथवा लघु कहानियाँ हैं, जो तोता मैना की मंज़िल से गुजरती हुई मनोवैज्ञानिक दिशा की ओर चलीं और जिनमें जीवनी की समस्याएँ ग्रहण करने की प्रवृति अँग्रेजी प्रभाव से पैदा हुई। कहानियों को विचार मूलक बनाना और उनमें मनोविश्लेषण तत्त्व की नियोजना आदि सब कुछ अँग्रेजी भाषा की देन है।

निबंध और आलोचना की रूप-रेखा परिवर्तित करने में अँग्रेजी शैली का बहुत बड़ा हाथ रहा है।

आधुनिक युग ने हमें कितने ही उच्च कोटि के निबंध कार दिए है उनमें प्रायः सभी समालोचनात्मक निबंधों से सम्बंध रखते है। पत्र पत्रिकाओं द्वारा भी हिन्दी का निबंध साहित्य काफी पुष्ट हो रहा है।

रेखा-चित्र, जीवनी, संस्मरण आदि सभी पर अँग्रेजी का प्रभाव पड़ा है और निबंधों के लिए पत्र पत्रिकाओं का माध्यम भी पश्चिम से ही आया है।

इस का यह अर्थ न समझना चाहिए, कि हम ने सब कुछ अँग्रेजी से ही लिया है। हमारे साहित्य की अपनी विशिष्ट निधि रही है, जो अपने स्थान पर बड़ी बहुमूल्य है। कोई साहित्य और समाज, जब दूसरे साहित्य और समाज के सम्पर्क में आता है, तो एक दूसरे को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकता। उसके लिए यही प्रगति है। "दीप से दीप जलता है" और यही हिन्दी साहित्य के साथ हुआ।

—: ❀ :—